नागार्जुन की रचनाओं में वर्ग-संघर्ष

DEPICTION OF CLASS-CONFLICT IN THE WORKS OF NAGARJUN

Thesis submitted
to the Cochin University of Science and Technology
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

by

एन. गिरिजा

N. GIRIJA

Supervising Guide
Dr. M. EASWARI
PROFESSOR, DEPARTMENT OF HINDI

Prof & Head of the Dept. **Dr. N. RAMAN NAIR**
Dept. of Hindi

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology

1991

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by N. GIRIJA under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. M. EASWARI
Professor
(Supervising teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology
COCHIN Pin.682022.
Date : 24.04.1991.

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, during the tenure of scholarship awarded to me by the Cochin University of Science & Technology. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science & Technology for this help and encouragement.

N. GIRIJA

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
COCHIN Pin.682022,
Date : 24.04.1991.

पुरोवाक्

पुरोवाक्

हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य में नागार्जुन की देन उल्लेखनीय है । उनका संपूर्ण साहित्य सर्वहारा जीवन का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता है । समाज के शोषित, पीड़ित, दलित वर्ग की सर्वांगीण प्रगति उनकी रचनाकारिता का परम ध्येय है । अपने उपन्यासों और कविताओं के ज़रिये वे परंपरा से प्रपीड़ित जनता में वर्ग बोध जगाते है और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये उन्हें संघर्ष के पथ पर अग्रसर कराते हैं । उनकी ज्यादातर रचनाओं का मूल स्वर उच्च-निम्न वर्ग के संघर्ष का है । इस प्रकार शोषण से जनता को मुक्त कराने का अपना दायित्व वे सालों से निभा रहे हैं ।

नागार्जुन की रचनायें साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की है । लेकिन महत्व के अनुसार इनका मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ है । उनकी जीवनी से परिचित करानेवाली एक ही मौलिक कृति अब तक प्रकाशित है - प्रकाशचन्द्र भट्ट का नागार्जुन जीवन और साहित्य । इसके अतिरिक्त

नरेन्द्र कोहली का "बाबा नागार्जुन", विजयबहादुर सिंह के रचित "नागार्जुन का रचना संसार" आदि भी इस महान कलाकार के अनोखे, व्यक्तित्व की झलक देती है। लेकिन नागार्जुन की कृतियों का सम्यक और परिपाक अध्ययन का श्रम अभी तक नहीं हुआ है। वे प्रगतिवादी कवि और उपन्यासकार है। लेकिन इस दृष्टि से उनकी कृतियों का मूल्यांकन नहीं के बराबर है। बाबूराम गुप्त के रचित "उपन्यासकार नागार्जुन" और अजय तिवारी के "नागार्जुन की कविता" आम तौर पर उनके उपन्यासों और कविता का अनुशीलन है। उनके विशाल रचना संसार के किसी भी पहलू पर स्वतंत्र अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। अतः इस शोध प्रबंध का मुख्य उद्देश्य इस उपेक्षित कलाकार के कृतित्व की एक पहलू को उजागर करना है। एम.फिल. की उपाधि के लिये मैं ने नागार्जुन के "बलचनमा" उपन्यास के वर्ग संघर्ष को विषय बनाया। इससे मन में उनके अन्य कृतियों के वर्ग संघर्षात्मक पहलू को खोजने की कुतूलता जाग उठी। यह शोध प्रबन्ध इसका परिणाम है। इस शोध प्रबंध के छः अध्याय है।

पहला अध्याय नागार्जुन के जीवनी का संक्षिप्त परिचय है। अन्य किसी भी रचनाकार के समान नागार्जुन का भी व्यक्तित्व उनके विभिन्न जीवनानुभवों और तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव से विकसित हुआ। दरभंगा जिले के सतलखा गाँव में जन्मे नागार्जुन का बचपन मातृ वियोग और पिता की दायित्वहीनता से दुःखपूर्ण था। अपने परिवेश से जीवन की प्रारंभिक अवस्था में ही सामाजिक विषमता से वे बखूबी परिचित हो गये। गाँव के संस्कृत पाठशाला से शुरू होकर काशी के संस्कृत विद्यापीठ तक व्याप्त विद्यार्थी जीवन ने नागार्जुन में सोयी पडी ज्ञानेच्छु और क्रान्तिकारी को जगा दिया।

संस्कृत के अतिरिक्त पाली में भी उन्होंने संयक ज्ञान प्राप्त किया जिससे सिंहल द्वीप में वे बौद्ध जैन धर्मों के निकट परिचय में आये। लोकप्रिय किसान नेता स्वामी सहजानंद के साथ उनका घनिष्ठ संबन्ध ने गाँव के गरीब किसानों की विभिन्न समस्याओं के प्रति उन्हें संयक जानकारी दी। बिहार के अंबारी जिले में संघर्षरत किसानों के नेतृत्व का भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। तभी से अभी तक वे पीड़ित, शोषित जनता के साथ दे आ रहे हैं। नागार्जुन हिन्दी साहित्य में बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। वे कवि है, उपन्यासकार है, गद्यकार अनुवादक और संपादक है।

दूसरे अध्याय में मार्क्सवादी सिद्धान्त और साहित्य में उसके प्रभाव पर अध्ययन किया गया है। चूंकि वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद का सबसे प्रमुख तत्त्व है इसलिये नागार्जुन की रचनाओं में वर्ग संघर्ष के अध्ययन के सिलसिले में इस सिद्धान्त का संयक परिचय प्राप्त करना अत्यन्त ज़रूरी है। अतः इस अध्याय में विषय की पृष्ठभूमि के तौर पर मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित वर्ग संघर्ष का स्वरूप, मार्क्सवाद का साहित्य पर प्रभाव और हिन्दी साहित्य में इसके आविर्भाव पर विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय में हिन्दी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का प्रतिपादन किया गया है। इसमें प्रेमचन्द से लेकर नागार्जुन तक के कुछ प्रतिनिधि उपन्यासकारों के उल्लेखनीय उपन्यासों को अध्ययन का विषय बनाया है।

चौथे अध्याय में नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का विस्तृत अनुशीलन हुआ है। "रतिनाथ की चाची" से लेकर "इमरतिया" तक के उपन्यासों में दृष्टव्य संघर्ष के विविध आयामों की चर्चा इसमें हुई है।

पाँचवाँ अध्याय हिन्दी कविताओं में वर्ग संघर्ष का विश्लेषण है । निराला से लेकर तृतीय सप्तक तक के उल्लेखनीय कवियों की कविताओं को आधार बनाकर इस विषय पर अध्ययन किया गया है ।

छठे अध्याय में नागार्जुन की कविताओं में वर्ग संघर्ष के पहलू पर विचार किया गया है । साम्राज्यवादी, सामन्तवादी पूंजीवादी तथा राजनीतिक शोषण के विरुद्ध शोषित वर्ग के संघर्ष का अध्ययन इसमें हुआ है ।

इस अध्ययन का निष्कर्ष उपसंहार में समाविष्ट है ।

प्रस्तुत शोधकार्य का प्रणयन कोचीन विज्ञान एवं प्राद्योगिकी विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के प्रोफसर डॉ.एम. ईश्वरी के दिशा - निर्देशन में संपन्न हुआ है । समय समय पर उनसे प्राप्त सहायताके लिये मैं चिर कृतज्ञ हूँ । विभागाध्यक्ष डॉ.एन. रामन नायर का प्रोत्साहन भी मुझे मिलता रहा, उनके लिये भी मैं आभारी हूँ । इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति केलिये जिन साथियों से और गुरुजनों से मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है उनका भी मैं सदा आभारी रहूँगी ।

एन. गिरिजा

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोची, पिन 682022

तारीख़ 24 04 1991.

विषय - सूची

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय 1 - 17

नागार्जुन : जीवन परिचय

जन्म - शिक्षा-दीक्षा - विद्रोही व्यक्तित्व का रूपायन - पारिवारिक जीवन और जीविकोपार्जन विशिष्ट व्यक्तियों से परिचय और उसका प्रभाव बौध-जैन दर्शनों का प्रभाव और नागार्जुन - वामपंथी आकर्षण और जेल यात्रा - साहित्यकार बनने की परिस्थितियाँ - राजनीतिक परिस्थिति - सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ साहित्यिक परिस्थिति - व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू - साहित्यकार की भूमिका में - कवि के रूप में - उपन्यासकार नागार्जुन - प्रबन्धकार की भूमिका में - निबंधकार नागार्जुन - बाल साहित्यकार के रूप में - संपादक नागार्जुन - अनुवादक की भूमिका में - निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय 18 - 63

वर्ग संघर्ष : सैद्धान्तिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में

पृष्ठ-संख्या

वर्ग और उसका स्वरूप - वर्गबद्ध समाज का
प्रथम रूप - दास प्रथा - असमानता का
दूसरा चरण - सामन्तवाद - शोषण का
आधुनिक रूप - पूंजीवाद - वर्ग संघर्ष -
वर्ग संघर्ष सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में -
हेगल का द्वन्द्ववाद - फायरबाख का
भौतिकवाद - मार्क्सवाद - मार्क्सवाद के
सैद्धान्तिक आयाम - द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद -
विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम -
विपरीतों की एकता - विपरीतों का संघर्ष -
परिमाणात्मक से गुणात्मक संतरण का नियम -
निषेध के निषेध का नियम - ऐतिहासिक
भौतिकवाद - अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत
सामाजिक जीवन के भौतिक आधार - श्रम -
पूंजी - उत्पादन शक्ति - वर्ग - वर्गों का
अन्त:संबन्ध और अन्तर्विरोध - वर्ग संघर्ष -
वर्ग संघर्ष में सामाजिक परिवर्तन - मार्क्स तथा
प्रमुख मार्क्सवादी विचारकों की साहित्यिक
मान्यतायें - मार्क्स के साहित्य संबन्धी विचार
लेनिन - ट्राट्स्की - माओ-त्से-तुंग -
प्लेखानोव - मक्सिम् गोर्की - क्रिस्तोफर
काडवेल - राल्फ फाक्स - एर्नस्ट फिशर -

पृष्ठ-संख्या

वर्ग संघर्ष साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में - भारत में मार्क्सवादी चिन्तकों का प्रवेश - भारत में मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित साहित्य का उद्भव और प्रगतिशील आन्दोलन - हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी चेतना की झलक - निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय 64 - 113

हिन्दी उपन्यास में वर्ग संघर्ष

प्रेमचन्द और उनका युग - प्रेमाश्रम - रंगभूमि - कर्मभूमि - गोदान - प्रेमचन्दोत्तर युग - सामाजिक परिवेश - यशपाल - दादा कामरेड - देशद्रोही - पार्टी कामरेड - मनुष्य के रूप - झूठा सच - राहुल सांकृत्यायन सिंह सेनापति जय यौधेय - विस्मृत यात्री - रांगेय राघव - विषाद मठ - हुजूर - अन्य प्रमुख जनवादी उपन्यासकार - नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - बलचनमा - नयी पौध - बाबा बटेसरनाथ - वरुण के बेटे - दुःखमोचन - कुंभीपाक - हीरक जयन्ती - उग्रतारा - इमरतिया - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

चौथा अध्याय 114 - 193

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग - संघर्ष

साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध जनसंघर्ष -
अंग्रेज़ी शोषण और अत्याचार का चित्रण -
शोषण के विरुद्ध जनसंगठन और संघर्ष -
निष्कर्ष - किसान - ज़मीन्दार संघर्ष -
ज़मीन्दारी शोषण और अत्याचार -
ज़मीन्दारी शोषण का शिकार गाँव का
गरीब कृषक वर्ग - ज़मीन्दारी शोषण के विविध
आयाम - शोषण और अत्याचार के विरुद्ध निम्न
वर्ग का जागरण - समाजवादी तथा साम्यवादी
आदर्शों से शोषित निम्नवर्ग का आकर्षण -
निम्नवर्गीय संगठन और किसान सभा का
प्रवर्तन - अत्याचारी ज़मीन्दारों के विरुद्ध
संगठित किसान और अन्य श्रमिक वर्गों का
संघर्ष - श्रमिक जागरण के दबाव का भ्रम -
कृषक जागरण और संघर्ष का सक्रिय पक्ष -
वर्ग संघर्ष से प्रगति - निष्कर्ष - मज़दूर-
पूँजीपति संघर्ष - मज़दूर संगठन और संघर्ष -
निष्कर्ष - सत्ता तथा नौकरशाही के विरुद्ध
आम जनता का संघर्ष - सत्ताधारी कांग्रेसियों
का भयानक शोषण - स्वातंत्र्योत्तर भारत का

पृष्ठ-संख्या

कांग्रेज़ी शोषण - सत्याधारी शोषण के विरुद्ध
उभरती नयी चेतना - नौकरशाही शोषण के
विरुद्ध जन संघर्ष - नौकरशाही अन्याय और
भ्रष्टाचार - अन्याय के विरुद्ध जनजागरण -
निष्कर्ष - शोषण विरुद्ध नारी का संघर्ष -
समाज में नारी का शोषण - विविध आयाम -
अनमेल विवाह - बहुविवाह वैधव्य -
वेश्यावृत्ति - निम्नवर्गीय नारी का शोषण
शोषण के प्रति जागरूक नारी - नारी
स्वतंत्रता के विभिन्न सोपान-जागरण का
प्रारंभिक चरण - दूसरा चरण - नारी
शिक्षा का प्रचार और उससे परिवर्तन -
शोषण के प्रति स्त्री की पहचान -
नारी स्वतंत्रता और समानता के स्वर -
नारी जीवन में प्रगति - निष्कर्ष - धार्मिक
शोषण के विरुद्ध संघर्ष - जाति प्रथा और
छुआछूत - रूढ़ियों और अंधविश्वासों का
प्रभाव - धर्म के वास्ते जनशोषण - धर्म और
रूढ़ियों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण -
निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय 194 - 250

हिन्दी कविताओं में वर्ग - संघर्ष

पृष्ठ-संख्या

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति
असन्तोष - श्रमिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति
शोषण के प्रति विरोध - शोषित वर्ग से
संवेदना और जागरण का सन्देश - श्रम पर
विश्वास और श्रमिक संगठन का प्रस्तुतीकरण -
वर्ग संघर्ष का आह्वान - वर्गहीन समाज की
परिकल्पना - युगधारा - सतरंगी पंखोंवाली-
प्यासी पथराई आँखें - खिचड़ी विप्लव देखा
हमने - तुमने कहा था - हज़ार हज़ार बाहों-
वाली - पत्रहीन नग्न गाछ - पुरानी जूतियों
का कोरस - रत्नगर्भ - ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी
तुम क्या - आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने -
भस्मांकुर ।

छठा अध्याय 251 - 324

नागार्जुन की कविताओं में वर्ग - संघर्ष

वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का विरोध -
शोषण पर विरोध - साम्राज्यवादी शोषण पर
विरोध - सामन्तवादी तथा पूंजीवादी शोषण
पर विरोध - राजनीतिक शोषण पर विरोध -
प्रथम कांग्रेज़ नेता का प्रजातंत्रीय शासन -
बदलती सत्ता की जनविरोधी नीति -
शोषित वर्ग से संवेदना - जनजागरण की
अभिव्यक्ति - साम्राज्यवादी शोषण के

पृष्ठ-संख्या

विरुद्ध जनजागरण - सामन्ती तथा पूंजीवादी
शोषण के विरुद्ध जागरण - राजनीतिक शोषण
के विरुद्ध जनजागरण - सांप्रदायिकता तथा
प्रान्तीयता के विरुद्ध शोषित जनता की
जागृति - परंपरा से शोषित नारी का
जागरण - संघर्ष का आह्वान -
साम्यवादी समाज की आकांक्षा ।

उपसंहार 325 - 332

पुस्तक - सूची 333 - 342

----o----

पहला अध्याय

नागार्जुन जीवन परिचय

पहला अध्याय

नागार्जुन जीवन परिचय

प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं का अध्ययन करते वक्त उसके व्यक्तित्व से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है । रचनाकार का व्यक्तित्व ही उसकी रचनाओं में अभिव्यक्ति पाता है । हर रचनाकार के व्यक्तित्व की विकास प्रक्रिया में उसकी परंपरा, पारिवारिक परिस्थिति, युगीन परिवेश, बौद्धिक और मानसिक स्तर आदि का योग उल्लेखनीय है । इन सभी के प्रभाव से साहित्यकार की स्वतंत्र जीवन दृष्टि जन्म लेती है । नागार्जुन का भी जीवन और साहित्य उनके युग की चेतना का अंग है । जीवन और युग चेतना के सम्यक पहचान के बिना उनकी कृतियों का सही अध्ययन संभव नहीं है । अतः नागार्जुन की रचनाओं के अध्ययन के संदर्भ में इन जीवनानुभवों की भट्टी में सेंके हुए उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का परिचय अनुपेक्षणीय है ।

जन्म

नागार्जुन का जन्म सन् 1911 में दरभंगा जिले के सतलखा गाँव में हुआ था । उनकी माता उमादेवी और पिता गोकुल मिश्र थे । अपने चार सन्तानों की मृत्यु के बाद नागार्जुन के पिता को वैद्यनाथ धाम जाकर दीर्घजीवी पुत्र की कामना से अनुष्ठान करने से ही यह पुत्र प्राप्त हुआ था । अतः पुत्र का नाम उन्होंने वैद्यनाथ मिश्र रखा । नागार्जुन नाम बाद में स्वीकार किया गया । अपने भाई-बहनों के समान यह पुत्र भी उन्हें ठगकर न चला जाय, इस विचार से माँ-बाप उसे ठक्कन नाम से पुकारते थे । माँ बचपन में ही चल बसी । नागार्जुन के पिता लापरवाह, घुमक्कड और दायित्वहीन स्वभाव के आदमी थे । प्रसिद्ध तरौनी प्रदेश ब्राह्मण पण्डितों के परिवार का अंग होने पर भी वे अल्पपठित थे । नागार्जुन का बचपन अपने पिता के साथ उत्तर बिहार के मिथिला प्रदेश में बीता ।

शिक्षा-दीक्षा

नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा तरौनी में संपन्न हुई । संस्कृत विद्यालयों और अंग्रेज़ी स्कूलों में पढनेवाले अपने चारों ओर के लडकों के संपर्क से शुरू में ही पढाई में उनकी रुचि जागृत हुई थी । आर्थिक कठिनाई से पिता ने वैद्यनाथ को अंग्रेज़ी स्कूल में न भेजकर संस्कृत पाठशाला में भर्ती कराया । संस्कृत पढाने से पिता का लक्ष्य यह था कि एक कौडी भी खर्च न करके पुत्र की पढाई मुफ्त में हो सकेगी । यही नहीं पढाई के दिनों में ही बेटा बाप की मदद भी कर सकेगा । पिता के इस स्वार्थ विचार से बालक नागार्जुन अपनी इच्छा के विपरीत संस्कृत पढने केलिए बाध्य बन गया । दुर्गापूजा के अवसर में गाँव के भूस्वामियों के यहाँ वे चण्डी-पाठ करने जाते थे और कुछ कमाते भी थे ।

इस प्रकार बचपन में ही अर्थाभाव उन्हें खूब अखरता था।[1]

संस्कृत के अतिरिक्त व्याकरण, दर्शन शास्त्र, ज्योतिष आदि में निपुणता नागार्जुन को विरासत में ही मिली थी। संस्कृत में प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद तेरह वर्ष की छोटी आयु में ही वे गाँव छोड़कर गये और काशी के गनौली संस्कृत विद्यालय में उन्होंने दो वर्ष बिताये। इसके बाद पचगछिया, काशी और कलकत्ते में रहकर पढ़ते हुए उन्होंने संस्कृत में आचार्य की उपाधि प्राप्त की। अपने अध्ययन-काल में ही उनकी रुचि कविता करने की ओर थी। संस्कृत कविताओं की समस्या-पूर्ति में वे हमेशा पुरस्कृत होते थे। संस्कृत के साथ उन्होंने पालि भाषा का भी अध्ययन किया।

विद्रोही व्यक्तित्व का रूपायन

ब्राह्मण होते हुए भी नागार्जुन को निम्न जातिवालों से मिलने जुलने का अवसर खूब मिला था। उनके साथ खेलने में किसीने उसे मना नहीं किया। निम्नजातिवालों के संपर्क ने बचपन में ही उन्हें सामाजिक असमानता से बखूबी परिचित कराया। यह परिचय उनके व्यक्तित्व को रूपायित करने में सहायक सिद्ध हुआ। अपनी छात्रावस्था में ही वे रूढियों और परंपरागत मान्यताओंके विरोधी हो गये। जीवन के प्रारंभिक दिनों में ही जो कुछ उन्हें अखरता था, उसी पर अड़िग रहने की निर्भीकता भी उनमें विद्यमान था।

पिता की दायित्वहीनता और घुमक्कडी वृत्ति बालक नागार्जुन के शैशव को बहुत अधिक कष्टमय बना दिया। माँ के प्रति पिता का निष्ठुर व्यवहार और माँ की मृत्यु के बाद विधवा चाची से पिता के अनैतिक संबंध के

---

1. पैदा हुआ था मैं / दीन-हीन अपाठित किसी कृषक कुल में
आ रहूँ पीता अभाव का आसव ठेक बचपन से
हम पर सीधे पडी है गरीबी भार। युगधारा - नागार्जुन, पृ.14

साक्षी होकर तेरह साल की छोटी उम्र में ही वे मानसिक तौर पर वैरागी हो गये । पिता के प्रति दमित क्रोध से पिता-पुत्र का संबंध अन्त तक अस्वस्थ ही रहा । मृत्यु के वक्त भी पिता ने पुत्र का नाम तक लेना इनकार कर दिया । नागार्जुन भी अपने पिता की रीतियों से सहमत नहीं हो सके । मातृवात्सल्य से वंचित अपने बचपन का स्नेहहीन, कठोर जीवन उनके व्यक्तित्व में विद्रोह उत्पन्न कर दिया था । जीवन में उन्होंने जो कुछ देखा, समझा वे सब अपने घर से ही थे । परिणाम: परिवार के परिवेश ने उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया ।

पारिवारिक जीवन और जीविकोपार्जन

सन् 1934 में नागार्जुन का विवाह अपराजिता देवी के साथ हुआ । पत्नी संपन्न घराने की बेटी थी । पत्नी के प्रति स्नेह होते हुए भी वे पूर्ण रूप से गृहस्थ नहीं बन सके । शादी के बाद तीन चार महीने पत्नी के साथ रहकर वे घर से निकले । फिर अनेक वर्ष उनका जीवन पर्यटन में बीता । सन् 1941 तक वे घूमते फिरते रहे । इस बीच पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, कठियावाड जैसे भारतीय प्रदेशों और सिंहल द्वीप में भी वे गये । लंबे पर्यटन के बाद गाँव लौटे नागार्जुन के लिये अर्थाभाव एक भीषण प्रश्न था । साहित्य रचना के सिवा उन्हें कुछ सूझता भी नहीं था । पत्नी और पिता के संरक्षण के लिये उन्होंने अपनी कविताओं को चौपडी के आकार में छपवाकर रेलगाडियों में बेचना शुरू किया । लेकिन इस बिक्री में मिलनेवाली थोडी सी रकम से जीविका चलाना मुश्किल हो गया तो वे लुधियाना गये । वहाँ जैन मुनि उपाध्याय आत्मारामजी ने उन्हें अपना सहायक बनाया । पिता की मृत्यु पर वे गाँव लौट आये और फिर पूर्णतया लेखन कार्य में लगे रहे । लेकिन घुमक्कडी वृत्ति वे छोड नहीं सके ।

---

1. आईने के सामने - सं. मोहन राकेश, पृ.18

विशिष्ट व्यक्तियों से परिचय और उसका प्रभाव

सन् 1934 में गाँव छोड़ने के बाद नागार्जुन को भारत तथा विदेश के अनेक स्थानों में घूमने का अवसर प्राप्त हुआ था । अपनी इन यात्राओं के बीच वे ऐसे अनेक महान व्यक्तियों के निकट संपर्क में आये जिनका बड़ा भारी असर उन पर पड़ा । उनकी यात्राओं का परम लक्ष्य भी ज्ञानवर्धन और देशाटन की लालसा की पूर्ति थी[1] । सिंहल द्वीप के जीवन में स्वामी केशवानंद, राहुल सांकृत्यायन जैसे धार्मिक आचार्यों का सत्संग बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रति ज्ञान और श्रद्धा बढ़ाने में सहायक हुआ । स्वतंत्रता आन्दोलन के अग्रणी नेता सुभाष चन्द्र बोस, भारतीय किसान नेता स्वामी सहजानंद सदृश राजनीतिक क्षेत्र के महान व्यक्तियों के संपर्क ने नागार्जुन के मन की विद्रोहात्मक भावना को जगाया । इस प्रकार बौद्ध दर्शन के साथ साथ प्रसिद्ध चिन्तक कार्ल मार्क्स के विचारों का भी प्रभाव नागार्जुन पर पड़ा । यही बाद में भूमिहीन किसानों के साथ खड़े होकर उनकी यातनाओं को साहित्यबद्ध कराने में उन्हें सक्षम बनाया था । इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त आदि तत्कालीन साहित्य-नायकों का भी सामीप्य उनको सहज उपलब्ध हुआ जो उनकी सर्जनात्मक वृत्ति को साहित्य जगत् की ओर प्रवृत्त कराने में बहुत सहायक हुआ । इस प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कर्मोन्मुख व्यक्तियों के परिचय से नागार्जुन के साहित्यिक जीवन को अधिकाधिक प्रेरणा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।

बौद्ध-जैन दर्शनों का प्रभाव और नागार्जुन

सन् 1936 में नागार्जुन सिंहल द्वीप गये । संस्कृत की जानकारी वहाँ उन्हें बहुत काम आयी । सिंहल के विद्यालंकार परिवेण नामक पुराने विद्यापीठ में बौद्ध सन्यासियों को संस्कृत के माध्यम से वे व्याकरण, दर्शन आदि पढ़ाने लगे

---

1. अन्नहीनम् क्रियाहीनम् - "थो-लिङ् महाविहार" निबंध - नागार्जुन

और वहाँ के आचार्यों से पालि भाषा के द्वारा उन्होंने बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया । बौद्ध धर्म और बुद्ध देव के महान आदर्शों से प्रभावित होकर उन्होंने सन्यास की दीक्षा ली और नागार्जुन नाम भी स्वीकार किया । बौद्ध दर्शन ने नागार्जुन के स्वभाव में पहले ही मौजूद सहानुभूति, करुणा, अहिंसा आदि गुणों को विकसित किया । दो वर्ष के लंका-जीवन में अनेक जैन सन्यासियों से उनका परिचय हुआ जिससे जैन-दर्शन का भी अध्ययन वे कर सके । बौद्ध-जैन धर्मों के प्रभाव ने नागार्जुन के व्यक्तित्व को अधिकाधिक चैतन्यपूर्ण बना दिया[1] ।

वामपंथी आकर्षण और जेलयात्रा

लंका सम समाज के क्रान्तिकारी नेताओं से मिल जुलकर लंका में रहते समय ही राजनीतिक दृष्टि संपन्न नागार्जुन वामपंथी विचारों से प्रभावित हुए । भारतीय किसानों के महान नेता स्वामी सहजानंद से वे निरन्तर पत्र व्यवहार करते रहे । स्वामी सहजानंद के संपर्क ने उन्हें भूमिहीन खेत मज़दूरों और गरीब किसानों के संघर्ष की ओर आकृष्ट किया । स्वामी सहजानंद को उन्होंने अपना मार्गदर्शक बनाया । उनके साथ रहकर नागार्जुन अपनी क्रान्तिकारी भावनाओं को रूप देने लगे । द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटीश सरकार भारतीयों का अभिमत पूछे बिना यहाँ की जनशक्ति और धनशक्ति दोनों का अपव्यय कर रही थी । इस अन्याय को देखकर नागार्जुन की विद्रोही चेतना चुप नहीं रह सकी । अन्य वामपंथियों और स्वयं सेवकों के साथ उन्होंने भी इसका नखशिख विरोध किया । युद्ध विरोधी परिपत्र छपवाकर वितरण करके नागार्जुन ब्रिटीश सरकार के विरूद्ध खड़े हो गये जिससे वे गिरफ्तार किये गये ।

---

1. "रत्नगर्भ" संग्रह की कवितायें - नागार्जुन

नागार्जुन की अगली जेल यात्रा किसान संघर्ष के सिलसिले में हुई थी । छपरा जिले के अमबारी में अत्याचारी भूस्वामी के खिलाफ वहाँ के खेतिहर खडे हो गये । महापंण्डित राहुल सांकृत्यायन के नेतृत्व में किसानों का संघर्ष हुआ । ज़मीन्दारों के पक्षधर तत्कालीन सरकार के सिपाहियों ने राहुलजी को गिरफ़्तार किया । फलत: आन्दोलन ज़ोर पकडा तो नागार्जुन ने किसानों के नेतृत्व का भार स्वयं अपने ऊपर ले लिया । किसान सभा के प्रमुख नेता पंण्डित कार्यानंद शर्मा, श्यामनंदन मिश्र आदि महान समाजवादी नेताओं के साथ नागार्जुन भी गिरफ़्तार किये गये । इस बार छपरा और हज़ारीबाग के सेंट्रल जेलों में उन्हें दस महीने रहना पडा । उसके बाद एक बार गुप्त रूप में परिपत्र छपवाने और वितरण करने के आरोप में आठ महीने तक वे भागलपुर सेंट्रल जेल में कैद किये गये ।

ब्रिटीश शासन काल में ही नहीं स्वतंत्र भारत में भी कई बार नागार्जुन को जेल जाना पडा । सन् 1948 में गाँधीजी की हत्या पर लिखी उनकी एक कविता जब्त की गयी । यह स्वतंत्र भारत में उनकी पहली जेल यात्रा का कारण बन गया । अपनी तूलिका से समय समय पर वे नेताओं का आक्रमण करते रहे और लगातार कारावास भुगते रहे । सन् 1975 में इन्दिरा गाँधी सरकार के विरूद्ध जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रान्ति आन्दोलन में भाग लेकर वे जगह जगह पर अपनी विद्रोही कवितायें सुनाने लगे । फलत: सन् 1975 की आपात् स्थिति में वे गिरफ़्तार किये गये और सन् 1976 एप्रैल तक बिहार में कैद रहे । अपने जेल जीवन के अनुभवों ने नागार्जुन को विभिन्न राजनीतिक दलों की सीमित दायरे से ऊपर उठाया और हक के लिये संघर्षरत मेहनतकश जनता के साथ रहने की आवश्यकता उन्हें अधिक महसूस होने लगी।[1]

---

1. बाबा नागार्जुन - नरेन्द्र कोहली, पृ.45

साहित्यकार बनने की परिस्थितियाँ

देश की तत्कालीन परिस्थितियों ने नागार्जुन के रचनात्मक व्यक्तित्व को अधिक परिपुष्ट किया । समय की पुकार सुनकर गद्य और पद्य दोनों विधाओं में अनेक कृतियों की रचना उन्होंने की है ।

राजनीतिक परिस्थिति

जब नागार्जुन का साहित्य क्षेत्र में पदार्पण हुआ तब भारत पराधीन था । देश की स्वतंत्रता के लिये राजनीतिक नेताओं द्वारा हिंसात्मक और अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहे थे । अंग्रेज़ों द्वारा भारत के गृह उद्योगों का विनाश और लगान का बोझ दरिद्र वर्ग को अधिक सताते थे । ज़मीन्दारी प्रथा के आविष्कार से अंग्रेज़ सरकार भारतीय किसानों के श्रम और धन दोनों का खूब शोषण कर रही थी । देश की तत्कालीन दु:स्थिति का प्रभाव नागार्जुन पर पड़ा । एक ओर अंग्रेज़ शासकों और दूसरी ओर देशी ज़मीन्दारों के शोषण में पिसनेवाली अपने देश के गरीब किसानों की दयनीय स्थिति ने उनके भावुक मन को झकझोर कर दिया । आज़ादी के पूर्व ही राज्यों में कांग्रेज़ी मंत्रिमण्डल स्थापित हुए । लेकिन देश के कांग्रेज़ी शासक भी जनहित के विरुद्ध ज़मीन्दारों के साथ होते देखकर नागार्जुन की क्रान्तिकारी भावना जाग उठी । शोषण औरऔद्योगिक अशान्ति भारत के गरीब किसान मज़दूरों को शोषक मालिकों के विरुद्ध खड़े होने के लिये बाध्य कर रही थी । मार्क्सवाद का प्रचार भारत में हो रहा था । कई जगह किसान और ज़मीन्दार के बीच संघर्ष हुए । इन घटनाओं ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित जागरूक कलाकार नागार्जुन को अत्यधिक सचेत बनाया । इसको उन्होंने अपनी कविताओं और उपन्यासों के रूप में शब्दबद्ध किया ।

1• हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ•नगेन्द्र, पृ•628-629

सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ

देश की राजनीतिक विसंगतियों के प्रभाव से सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी बडा अत्याचार हो रहा था[1]। अपने मिथिलांचल में प्रचलित बाल विवाह, अनमेल विवाह, अशिक्षा, वैधव्य आदि सामाजिक अभिशाप ढोनेवाली ग्रामीण स्त्रियों का दयनीय जीवन देखकर नागार्जुन का मन विचलित हो गया। छुआछूत, जातिपाँति, मूर्तिपूजा, बलि प्रथा, भूत प्रेतों पर विश्वास जैसे अनेकानेक अंधविश्वासों और अनाचारों में सोने जागनेवाले ग्रामीण जीवन को निकट से देखकर उनका विद्रोही मन गरज उठा और उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से इन अनाचारों की गंभीर आलोचना की। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक रीतियों ने नागार्जुन के साहित्यिक मन को युगानुरूप परिवर्तित किया और ये परिस्थितियाँ उनकी रचनाओं में साकार हो उठी।

साहित्यिक परिस्थिति

मार्क्सवाद के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद का प्रचलन होने लगा। सन् 1936 में भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। चिरसुषुप्त मानवता को जगाने और शोषित जनवर्ग को उच्चवर्ग के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिये प्रगतिवादी साहित्यकार अनवरत प्रयत्न कर रहे थे। तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति से प्रेरणा पाकर प्रबुद्ध कलाकार नागार्जुन ने भी प्रगतिवादी साहित्य परंपरा को अपनाया।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, पृ.628-629

स्वयं निम्नवर्गीय परिवार में जन्म लेकर नागार्जुन तरुणाई में ही सामाजिक विषमताओं से परिचित थे और इससे उनके व्यक्तित्व में एक विद्रोही भावना पहले ही उपस्थित थी। आडंबर और प्रदर्शन से बचपन से ही वे घृणा करते थे[1]। रहन सहन की सादगी और सरलता उनके आचरण में भी स्पष्ट परिलक्षित होती थी[2]। बडे शहरों और अपने गाँव में हर कहीं उनकी एक ही भूमिका रहती थी। अपनी छवि या "इमेज" बनाने का ख्याल उन्हें कभी नहीं आया। अत: उनका सही मूल्यांकन भी नहीं हुआ।

नागार्जुन जिन आदर्शों पर विश्वास रखते हैं, उन्हीं पर अडिग रहते हैं। वे सिद्धान्तत: मार्क्सवादी थे। मार्क्सवाद उनके लिये विचार है, दृष्टि है जिससे व्यक्ति और समाज का संबंध वे समझ सके। समाज में लगी सडांध पर सीधे प्रहार करनेवाले नागार्जुन के स्थायी मित्र कम हैं, आलोचक ही अधिक है। वे बातचीत में सरल है, विनोदप्रिय है। हर गलत बात का दृढ़ता से खण्डन करके नागार्जुन नये लेखकों को प्रेरणा देनेवाले रहे। अपने प्रति लापरवाह, किंतु समाज हित में सतत् चिन्तनशील नागार्जुन दलित वर्ग के प्रति अतीव संवेदनशील है। देश की आज की दु:स्थिति पर दु:खी वे युवा पीढ़ी पर विश्वास रखते हैं[3]।

शासक वर्ग से किसी शर्त पर समझौता करने के लिये नागार्जुन तैयार नहीं थे और हर अन्यायी सत्ता के बाद उनकी राजनीतिक चेतना बढ़ती ही गयी। अपने परिवेश की तिलतिल खबर रखनेवाली उनकी कवितायें भारत की राजनीतिक स्थिति का अच्छा खासा परिचायक है। उनके बारे में

---

1. नागार्जुन जीवन और साहित्य - प्रकाश चन्द्र भट्ट, पृ.30
2. एक शब्द विकलांग तो दूसरा है निकलांग मैं विकलांग तो नहीं, निकलांग अवश्य हूँ। कहीं भी मुझे रखो, दिख ही जाऊँगा अपने रूप में।
   नागार्जुन - मेरे बाबूजी - शोभाकान्त, पृ.160
3. बम भोलेनाथ - नागार्जुन, पृ.54

यह कहना अधिक उचित है कि "1947 से लेकर अब तक लिखी गयी नागार्जुन की कविताओं से देश का इतिहास लिखा जा सकता है'। [1]

साहित्यकार की भूमिका में

सन् 1930 के आसपास हिन्दी साहित्य जगत् में नागार्जुन का आगमन हुआ। अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा उन्होंने कविता, उपन्यास, निबंध आदि साहित्य की मौलिक विधाओं के साथ साथ अनुवाद और संपादन के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया। वे बंगला और गुजराती रचनाओं के अनुवाद करके साहित्य लोक में आये। सन् 1935 में उनकी पहली हिन्दी कविता "राम के प्रति" लाहौर के 'विश्वबन्धु' साप्ताहिक में छपी। इसी समय कुछ मैथिली कवितायें और उपन्यास भी प्रकाशित हुए। मैथिली में "यात्री" नाम से वे लिखते थे। एक सफल साहित्यकार के रूप में उनकी गिनती सबसे पहले हिन्दी साहित्य में हुई। उनकी अधिकांश रचनायें सोद्देश्य होती है। अपने समाज की विभिन्न समस्याओं को अपने ही अंचल के परिवेश में उपस्थित कराने का प्रयास उन्होंने किया। मार्क्सवादी दृष्टिकोण की सहायता से शोषण और अंधविश्वासों जैसे तमाम अनीतियों से मुक्त एक वर्गहीन समाज का मधुर स्वप्न उन्होंने देखा और उसका साक्षात्कार उनकी रचनाओं में हुआ है।

कवि के रूप में

एक कवि के रूप में नागार्जुन हिन्दी साहित्य में काफी लोकप्रिय हो गये हैं। प्रगतिवादी कवियों में उनका स्थान अन्यतम है। उनकी अधिकांश कवितायें दलितों के उद्धार और जागरण के लिये लिखी गयी है। वे सच्चे अर्थ में जनकवि है।

---

1. नागार्जुन फक्कड़पन के 75 साल - विष्णु खरे - नवभारत टाइम्स जून 22, 1986

धरती और श्रम के कवि के रूप में नागार्जुन अधिक प्रसिद्ध है । समाजवादी कवि होने के नाते उनकी कविताओं में वैयक्तिक दुःख की अपेक्षा सामाजिक पुकार का स्वर अधिक मुखरित है । अपने अनुभूत सत्य की सच्ची अभिव्यक्ति उनकी कविताओं द्वारा हमारे सम्मुख आती है । स्वयं कठिनाइयाँ झेलकर उनकी कविताओं में निम्नवर्ग के प्रति सहभावता की सी तीव्र संवेदना है । समाज के प्रेमी, दलितों के उन्नमन में इच्छुक एक प्रबुद्ध कवि का समाज के प्रति दायित्व नागार्जुन की समाजवादी कविताओं में मौजूद है । "युगधारा" संग्रह की "जनवन्दना", "मित्र को पत्र", सतरंगे पंखोंवाली नामक कविता संकलन के "देखना ओ गंगा मैया", "खुरदरे पैर", "प्यासी पथराई आँखें", संग्रह का "घिन तो नहीं आती", "वे और तुम" आदि श्रमिक वर्ग से कवि की सहानुभूति और सामाजिक विषमता को अभिव्यक्त करनेवाली कवितायें हैं । "आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने" संग्रह में भी दीन दुःखियों का कवि साथ देते दिखायी पड़ता है । "प्रेत का बयान", "अरुणोदय" जैसी कविताओं में समाजवादी विचारों से नागार्जुन का लगाव स्पष्ट लक्षित होता है ।

प्रकृति, प्रणय और सौंदर्य की कवितायें भी उन्होंने लिखी हैं, जो सहज अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है । कल्पना वैभव की दृष्टि से भी ये कवितायें उत्कृष्ट है । प्रकृति प्रेमी कवि को अपने देशाटन में प्रकृति को निकट से देखने और उसके सौंदर्य के आस्वादन करने का खूब अवसर मिला था । "सतरंगी पंखोंवाली" संग्रह की अनेक कवितायें कवि के प्रकृति प्रेम का उत्तम उदाहरण है। "वसन्त की अगवानी और नीम की दो टहनियाँ" प्रकृति परक कविताओं की श्रेणी में सर्वाधिक लोकप्रिय है । "युगधारा" संकलन की "बादल को घिरते देखा है" कविता प्रकृति सौंदर्य के चित्रण की उच्चकोटि की कविता है । "पत्रहीन नग्न गाछ" संग्रह में उन्होंने माघ, फागुन, चैत्र, सावन और आषाढ ऋतुओं का मनोहारी चित्र उभारा है ।

व्यंग्यपूर्ण कवितायें नागार्जुन को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने में और जनसाधारण के अधिक निकट लाने में सक्षम हुई है । साथ ही इनसे उनकी बौद्धिक प्रखरता और विद्रोही वृत्ति अधिक स्पष्ट हुई है । तत्कालीन राजनीतिक भ्रष्टाचारों और ढोंगी राजनीतिक नेताओं पर उन्होंने निर्भीकता से व्यंग्य किया है । व्यंग्य भरी कवितायें उनके सभी काव्य संग्रहों में मौजूद है । "युगधारा", "प्यासी पथराई आँखें", "सतरंगे पंखोंवाली", "तुमने कहा था", "खिचड़ी विप्लव देखा हमने", हज़ार हज़ार बाहोंवाली", पुरानी जूतियों का कोरस" जैसे तेरह कविता संग्रहों की अधिकांश कवितायें समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पाखण्डों का व्यंग्यपूर्ण उल्लेख है ।

देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत होकर नागार्जुन ने अनेक कवितायें लिखी हैं । "पत्रहीन नग्न गाछ" संग्रह की "जयभारत जननी", "जय भारत माता" आदि कवितायें अपनी मातृभूमि के प्रति कवि के असीम स्नेह और श्रद्धा के उदाहरण है ।

संक्षेप में नागार्जुन की सारी कवितायें सैद्धान्तिक मतवाद से ग्रस्त नहीं है। अनेक कविताओं में उनकी संवेदना आधुनिक है । वे "नयी कविता" के कवि है ।

उपन्यासकार नागार्जुन

उपन्यासकार के रूप में नागार्जुन ने हिन्दी साहित्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है । सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन और वर्ग संघर्ष के द्वारा वर्गहीन समाज की स्थापना का आह्वान उनके उपन्यासों का प्रमुख विषय है । सन् 1941 में प्रकाशित "रतिनाथ की चाची" से लेकर सन् 1968 में प्रकाशित "इमरतिया" तक के उपन्यासों पर नज़रन्दाज़ करने पर विषय में

विविधता, शैली में भिन्नता और अभिव्यक्ति में नवीनता पग पग दिखायी देती है । श्रमिकों और शोषितों से सहानुभूति रखनेवाले नागार्जुन अपने सभी उपन्यासों में इस वर्ग का ही वकालत करते हैं । उनके अधिकांश उपन्यासों के नायक समाज के निम्न स्तर के मनुष्य है । "बलचनमा" का नायक गरीब खेतिहर है तो "वरुण के बेटे" में समुद्र के लहरों से लड़कर आजीविका चलानेवाले मछुए मुख्य पात्र है ।

अपने उपन्यासों में नागार्जुन ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत किया है । रतिनाथ की चाची" में विधवा ब्राह्मणी से समाज के निष्ठुर व्यवहार पर संकेत है तो "बलचनमा" मालिक वर्ग के शोषण और अत्याचार से पीड़ित गरीब खेतिहर की कहानी है । "बाबा बटेसरनाथ" में साम्राज्यवादी शोषण पर संकेत किया गया है तो दुखमोचन, वरुण के बेटे, आदि उपन्यासों में ज़मीन्दारी शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। "नयी पौध" में रूढियों, अंधविश्वासों के जंजीर में जकड़े ग्रामीण समाज का चित्रण हुआ है । "कुंभीपाक" में नारी जीवन की कठिनाइयों और "उग्रतारा" में व्यभिचार की समस्याओं की ओर संकेत है । "हीरक जयन्ती" में आज के ढोंगी, पाखण्ड राजनीतिक नेताओं पर उन्होंने व्यंग्य किया है ।

उपन्यासों में गरीब वर्ग से संवेदनशील रहनेवाले नागार्जुन कभी अपनी धरती को भूलते नहीं । साहित्य को उनका महत्वपूर्ण देन आंचलिकता को हिन्दी उपन्यासों में समाविष्ट करना है । हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रगतिवादी विचारों के उन्नायकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है । मार्क्सवादी आदर्शों को सहज रूप में समाहृत करके वर्गहीन समाज की संरचना रूपी उद्देश्य की पूर्ति का प्रयास उनके उपन्यासों में हुआ है।

प्रबन्धकार की भूमिका में

प्रबन्धकार के रूप में नागार्जुन की एकमात्र उपलब्धि निराले पर लिखे एक लघु प्रबंध "एक व्यक्ति एक युग" है । निराला का संपूर्ण व्यक्तित्व और निराला साहित्य का मूल्यांकन इसमें समाविष्ट है । निराला का अभाव ग्रस्त जीवन, उनकी विद्रोही वृत्ति, जीवन संघर्ष, राजनीतिक नेताओं का उनसे उपेक्षामय व्यवहार आदि का प्रतिपादन करनेवाले इस प्रबंध में निराला की जीवनी यथार्थ रूप में उपस्थित की गयी है। श्रमिकों का पक्ष पाति, विद्रोही निराला की श्रद्धांजलि के रूप में यह रचना ध्यान देने योग्य है ।

निबंधकार नागार्जुन

नागार्जुन निबंध रचना में सिद्धहस्त है । "दो विभूतियाँ" नाम से उन्होंने उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द और लोककाव्य के स्रष्टा तुलसी पर निबंध लिखे । "अन्नहीनम् क्रियाहीनम्" नामक संग्रह में समय समय पर लिखे उनके कुछ निबंध संगृहीत है । यह उनके स्फुट गद्य का प्रथम संस्करण है । महान व्यक्तियों का परिचय, यात्राविवरण आदि से लेकर इतिहास तक के वैविध्यपूर्ण विषयों के पन्द्रहों निबंध इसमें समाविष्ट है। "बम भोलेनाथ" नागार्जुन के निबंधों का दूसरा संग्रह है। इसमें व्यक्तिपरक निबंधों, वैचारिक और ललित निबंधों के अतिरिक्त समसामयिक यथार्थ और साहित्य से संबन्धित टिप्पणियाँ भी है । उनके वैविध्यपूर्ण अनेक अनुभव इस संग्रह में बिखरे पडे हैं । इसमें उन्होंने राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु आदि लेखकों के बारे में अपने स्फुट विचार व्यक्त किये हैं । इन निबंधों के द्वारा इन महान साहित्य नायकों के प्रति अपनी श्रद्धा उन्होंने प्रकट की है । भारतीय आत्मा और भारतीय मन की खूबियों और बखूबियों के कुशल ज्ञाता नागार्जुन का यह संग्रह पाठकों के लिये एक अविस्मरणीय अनुभव है ।

बाल साहित्यकार के रूप में

साहित्यकार नागार्जुन की प्रतिभा प्रौढ़ रचनाओं के अतिरिक्त बाल साहित्य की रचना में भी प्रस्फुटित हुई है । बाल मन रोचक अनेक कहानियों की रचना उन्होंने की । अपनी कहानियों में उन्होंने मनोरंजन के साथ साथ बच्चों को ज्ञानवर्धन में सहायक उक्तियों को भी जोड दिया । "रामायण की कथा", "कथामंजरी", "वीर विक्रम", "अयोध्या का राजा", "बालसाहित्यमाला", "आसमान में चन्दा तैरे" आदि संग्रहों के रूप में उनकी बालसाहित्य रचनायें उपलब्ध है । भारत के महान साहित्यकार प्रेमचन्द को अपने बालक पाठकों को परिचित कराने के लिये प्रेमचन्द के बचपन से लेकर साहित्यकार बनने तक के जीवन को कहानी के रूप में "प्रेमचन्द की जीवनी" नाम से उन्होंने प्रकाशित किया । बाल साहित्यकार नागार्जुन ने अपने नन्हे पाठकों के लिये सरल और सहज भाषा में कहानियाँ प्रस्तुत की ।

संपादक नागार्जुन

सन् 1935 में पंजाब से निकलनेवाले "दीपक" पत्रिका के संपादक के रूप में नागार्जुन ने पहले काम किया । फिर लाहौर से प्रकाशित "विश्वबन्धु" नामक साप्ताहिक के संपादक के दायित्वपूर्ण कार्य भी उन्होंने सफलतापूर्वक निभाया । "जनयुग" साप्ताहिक में वे देश की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक घटनाओं और सामयिक प्रश्नों पर व्यंग्यात्मक शैली में लिखते रहे ।

संपादकीय कार्य के अलावा हंस, सरस्वती, आजकल, धर्मयुग, अवन्तिका, जनशक्ति, नयी धारा, नवभारत, प्रतीक आदि अनेकों पत्र पत्रिकाओं में उनकी रचनायें प्रकाशित हो चुकी है ।

अनुवादक की भूमिका में

नागार्जुन का रचनात्मक व्यक्तित्व अनुवादक के रूप में भी काफी प्रसिद्ध है । संस्कृत के अच्छे ज्ञानी नागार्जुन ने अनेक संस्कृत रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है । कालिदास के "मेघदूत", शरतचन्द्र की "परिणीता", जयदेव के "गीत गोविन्द" आदि का अनुवाद संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर उनके समान अधिकार का प्रमाण है । अनुवाद में आंचलिक शब्दों, उर्दू शब्दों और बीच बीच में अंग्रेज़ी शब्दों का उन्होंने उपयोग किया है। गुजराती और बंगला से भी अनुवाद करनेवाले नागार्जुन ने मैथिल कोकिल 'विद्यापति' के कुछ पदों का भी हिन्दी में अनुवाद किया ।

निष्कर्ष

आधुनिक हिन्दी साहित्य के गद्य और पद्य की लगभग सभी विधाओं को अपनाकर नागार्जुन ने अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है । बचपन से ही आर्थिक कठिनाई ग्रस्त जीवन बिताकर समाज के पीड़ितों के प्रति वे संवेदनशील रहे । सच्चाई, साहस आदि उनके व्यक्तित्व के विशेष गुण थे, जिनके द्वारा समाज के अनाचारों के विरोध करने की ताकत उन्हें मिली । भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति श्रद्धालु नागार्जुन अपनी धरती से गहरा लगाव रखते हैं ।

****

दूसरा अध्याय

वर्ग संघर्ष सैद्धान्तिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में

दूसरा अध्याय

वर्ग संघर्ष सैद्धान्तिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में

मानवेतिहास के आदिम रूप से लेकर अब तक के विकास पर नज़र-अन्दाज़ करें तो यह बात विदित होती है कि वह सामाजिक प्राणी रहा है। वह जहाँ भी, हमेशा मिल जुलकर रहना पसन्द करता है। मनुष्य की इस सामाजिक चेतना को युग भी परिवर्तित नहीं कर सका है।

इतिहास की आदिम अवस्था में मनुष्य एकत्रित होकर रहता था। इकट्ठे होकर रहनेवाले मनुष्य - मनुष्य में उस समय कोई भेदभाव नहीं था। मानवेतिहास का यह आरंभिक चरण आदिम साम्यवाद के नाम से जाना जाता है।

इस युग में मनुष्य की उत्पादन शक्ति सीमित थी । अतः अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिये प्राकृतिक शक्तियों से संघर्ष करके वह आगे बढ़ा । ऐसी अवस्था में उत्पादन के सामूहिक आधिपत्य का होना स्वाभाविक ही था । किसी प्रकार की व्यक्तिगत संपत्ति की भावना इस समय नहीं थी और काम करनेवालों में भी श्रेणियाँ नहीं थीं । उत्पादन की सामूहिक रीति थी और उत्पादित वस्तुओं का उपभोग भी सामूहिक तौर पर होता था । लेकिन धीरे धीरे स्थिति में परिवर्तन होने लगा । सभ्यता के सोपान से होकर जीवन पथ पर अग्रसर होनेवाला मनुष्य अपनी बुद्धि और शक्ति के विकास से संस्कार संपन्न होने लगा । क्रमशः वह अपनी ही सहजीवी शक्तिहीन - जो अभी प्रारंभिक अवस्था में था - को स्वार्थ पूर्ति के लिये अपना गुलाम बनाने लगा[1]। दुर्बल का सबल द्वारा दमन और शोषण एक सार्वलौकिक नियम है । इस नियम के अनुसार साधन संपन्न, सबल व्यक्ति या व्यक्ति समूह साधन हीन दुर्बल मनुष्य या उसके समूह का स्वाभाविक रूप से शोषण करने लगा । फलतः सामाजिक असमानता ने जन्म लिया । वह धीरे धीरे विकसित होती गयी । समाज के भिन्न स्तरों के लोगों का स्थान निर्धारण भी होने लगा । मानव समाज क्रमशः दो वर्गों में विभक्त हो गया । आदिम साम्यवादी युग का यहीं अन्त भी हुआ ।

वर्ग और उसका स्वरूप

सामाजिक असमानता से उद्भूत किसी भी श्रेणी के व्यक्ति या व्यक्ति समूह को वर्ग कहते हैं[2]। एक वर्ग के लोगों में वंश परंपरा, जीवनोपाय,

---

1. Races and culture of India - D.N. Majumdar, pp.121-123
2. Society - R.M. Manicker, p.348

आर्थिक स्थिति, रहन सहन, स्तर और शिक्षा की दृष्टि से समानता पायी जाती है[1]। जिस समूह के व्यक्तियों के आर्थिक हित एक से होते हैं, जिनके हित स्थायी हैं, वे एक वर्ग में आते हैं। जीविका चलाने के लिये समाज का हर मनुष्य भिन्न भिन्न कामों में लग जाता है। समान स्तर पर जीवित मनुष्य की स्थिति में समानता होती है। इस समानताके आधार पर समाज विभिन्न वर्गों में बंट जाता है।

वर्गबद्ध समाज का प्रथम रूप - दास प्रथा

मानवेतिहास के आरंभिक चरण में पंचायती व्यवस्था कायम थी, जिसमें मनुष्य और मनुष्य में कोई भेद भाव नहीं था। लेकिन सभ्यता के विकास के साथ साथ मनुष्य स्वार्थी कपटी बनता गया। जंगली जानवरों के शिकार से पेट भरता हुआ वह धीरे धीरे पशु पालना, खेती करना और धातुओं के तरह के बर्तन औजार बनाना सीखा। उत्पादन के इस परिवर्तित ढंग ने समाज के स्वरूप को ही बदल दिया। धीरे धीरे एक साथ रहनेवालेमनुष्य अनेक कबीलों में बांटा गया। हर कबीले के लोग अलग अलग पेशे अपनाने लगे। कोई खेती करने लगा तो कोई औजारों के निर्माण में जुड गया। फलस्वरूप अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इन कबीलों को अन्योन्याश्रित रहना पडा। तब आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन केलिये अधिकाधिक श्रम की ज़रूरत पडी। इसके लिये कबीलों के बीच होनेवालीलडाई में पकडे गये व्यक्तियों को गुलाम बनाकर उनसे काम कराने लगे। इस प्रकार सामाजिक काम के बंटवारे से समाज पहलेपहल श्रेणियों में विभक्त हो गया। समाज में मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण तथा वर्ग भेद का यह प्रथम चरण था जो दास प्रथा कहलाता है। इस रीति में मालिक का दासों पर संपूर्ण अधिकार रहता था[2]।

---

1. Encyclopaedia of Social Sciences - Part III, p.531
2. Selected Works - Karl Marx and F. Engels Vol.III, pp. 318,319

असमानता का दूसरा चरण - सामन्तवाद

सामन्तवाद मानवेतिहास का तीसरा चरण है । सामन्त युग में मालिक दास नहीं रहे । दास लोग मालिकों के अन्याय से स्वतंत्र हो गये । शोषण अब एक नये नाम से जारी रहा, सामन्त और कृषक याने जमीन्दार और किसान के रूप में । इस युग में उत्पादन का साधन, खासकर भूमि पर अधिकार थोड़े ज़मीन्दारों के हाथ में रहा । इस ज़माने में अपने ऊपर आश्रित किसानों के श्रम पर जमीन्दारों का पूरा अधिकार था । ये कृषक भूमि से बंधकर ज़मीन्दारों की सेवा करने के लिये बाध्य थे । ज़मीन्दार, गरीब किसानों के श्रम का अधिकाधिक लाभ उठाता था । शोषण का यह विकराल रूप था[1] । लेकिन शोषण की यह रीति अधिक समय नहीं टिक पायी । कृषक वर्ग में अपने लाभ के लिये मेहनत करने की आजादी चाहते थे । अत: आर्थिक और सामाजिक असमानता के विरुद्ध सामन्तों से संघर्ष करने लगे । सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति के लिये उस समय नये उभरे महत्वाकांक्षी पूंजीपति वर्ग ने भी सहयोग दिया । शहरों में उभरे पूंजीपति वर्ग को अपने कल-कारखानों में काम करने के लिये मज़दूरों की ज़रूरत थी । अपनी इस उद्देश्य पूर्ति के लिये पूंजीपतियों ने किसान संघर्ष को पूर्ण सहयोग दिया । धीरे धीरे सामन्तवादी व्यवस्था मिट गयी और उसके स्थान पर शोषण की नयी व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था उभरकर आयी ।

शोषण का आधुनिक रूप - पूंजीवाद

आधुनिक काल की पूंजीवादी व्यवस्था सामन्ती युग के ध्वंस में पैदा हुई है । इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति और तज्जन्य औद्योगीकरण से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये । विश्वव्यापी

---

1. Selected works - Marx Engels, Vol. III, p.321

औद्योगीकरण और नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पादन का माध्यम बदल गया । अनेक कारखाने खोले गये । इन कारखानों में काम करने के लिये कामकरों की आवश्यकता हुई । ज़मीन्दारों द्वारा शोषित, पीड़ित अनेक खेतिहर और मज़दूर शहरों के कारखानों और वहाँ के पूँजीपतियों के प्रलोभन से आकृष्ट हो गये । संपन्न वर्ग के अधीन काम करने के लिये अधिकाधिक गरीब तैयार हो गये तो एक बार फिर समाज श्रेणीबद्ध हो गया । शोषण की रीति में भी परिवर्तन आया । शोषण की इस व्यवस्था में संपन्न वर्ग पूँजीपति और गरीब मेहनतकश वर्ग मज़दूर नाम से जाना जाने लगे[1] । प्रारंभ में समता, स्वातंत्र्य की घोषणा करके आयी पूँजीवादी व्यवस्था धीरे धीरे जीने के लिये अपना श्रम बेचने में तैयार मज़दूरों का शोषण करके आगे बढ़ी । सामन्त युग के किसानों के समान प्रत्यक्ष रूप में बंधित न होने पर भी पूँजीवादी व्यवस्था में भी श्रमिक वर्ग अस्वतंत्र ही रहा । अधिक काम लेकर कम वेतन देकर उत्पादन बढ़ाने का प्रयास पूँजीपतियों की ओर से निरन्तर होता रहा । यहाँ भी शोषक पूँजीपति और शोषित मज़दूरों के बीच संघर्ष ज़ारी रहा । पूँजीवाद, शोषण और असमानता का अधुनातन रूप है । इस प्रकार दास व्यवस्था से लेकर पूँजीवादी व्यवस्था तक मानव सभ्यता का विकास काल दो विरोधी वर्गों के आपसी संघर्ष से होकर गुज़रा है ।

वर्ग संघर्ष

समाज की प्रत्येक व्यवस्था में संपन्न का विपन्न पर संपूर्ण अधिकार का नियम देखने को मिलता है । वर्ग विभक्त हर समाज में संपूर्ण समाज का नियंत्रण कुछ इने गिने व्यक्तियों के हाथ में था ।

---

1. Selected works - Marx - Engels, p.323, Vol.III

इसी सामाजिक वैषम्य ने किसानों को ज़मीन्दारों से, मज़दूरों को पूंजीपतियों से विद्रोह करने की प्रेरणा दी । समाज के इन दो वर्गों का संघर्ष सामान्य तौर पर वर्ग-संघर्ष कहलाता है ।

वर्ग-संघर्ष : सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में

सामाजिक असमानता और वर्ग संघर्ष के प्रति तत्कालीन चिन्तक और दार्शनिक जागरूक रहे । हेगल, फायरबाख आदि विचारकों ने समाज स्वरूप और सामाजिक संबंधों पर विचार किया था । लेकिन सामाजिक शोषण और वर्ग संघर्ष को एक सैद्धान्तिक रूप देने का श्रेय कार्ल मार्क्स को है । मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद आदि सिद्धान्तों के द्वारा समाज के वर्ग, उनका आपसी संबंध, अन्तर्विरोध और उनके बीच के संघर्ष के कारण और स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन किया । मार्क्स के इन सामाजिक चिन्तनों पर हेगल और फायरबाख के विचारों का प्रभाव है ।

हेगल का द्वन्द्ववाद

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हेगल भाववादी दार्शनिकों में अन्यतम माना जाता है । उनका द्वन्द्ववाद (Dialectics) विकास का सबसे व्यापक, अन्तर्वस्तुपूर्ण और उदात्त सिद्धान्त है । अनेक दार्शनिक हेगल के दर्शन को प्रत्यय या विचार के विकासवाद के नाम से संबोधित करते हैं । द्वन्द्ववाद (Dialectics) यूनानी शब्द डायलिगो (Dialego) से उद्भूत है, जिसका अर्थ है द्विसंवाद या वाद विवाद[1] । प्राचीन दर्शन शास्त्र के

---

1. Dialectical and Historical Materialism - J. Stalin, p.2

अनुसार तर्कपूर्ण संवाद द्वारा विरोधी चिन्तनों के उद्घाटन से तथ्य पर पहुंचने की रीति को द्वन्द्ववाद कहलाता था ।[1]

हेगल के अनुसार यह संसार मनुष्य की शक्ति से बाहर किसी वस्तुगत चेतना के सृजन का फल है । इस चेतना को हेगल ने परम विचार या विश्व सत्ता का नाम दिया । अपने द्वन्द्ववादी सिद्धान्त की व्याख्या करके हेगल ने बताया कि जब मानव मस्तिष्क में एक विचार जन्म लेता है तब उसके साथ ही उसके समर्थन में अन्य अनेक विचार भी उत्पन्न होते हैं । वह एक वाद (Thesis) का रूप धारण करता है । लेकिन कालान्तर में इस मूल विचार में अनेक त्रुटियाँ मालूम होने लगती है और फलत: उससे बिल्कुल उल्टे विचार याने प्रतिवाद (Anti - thesis) का जन्म होता है । समय बीतने पर इस प्रतिवाद में भी त्रुटियाँ दिखायी देने लगती हैं । वाद और प्रतिवाद दोनों की त्रुटियों से परे और इन दोनों के गुणों को स्वीकार करके एक बिल्कुल नया विचार जन्म लेता है, जो हेगल के मत में संश्लेषण (Synthesis) है । यह संश्लेषण अपनी पूर्व धारणाओं - वाद और प्रतिवाद - से अधिक श्रेष्ठ होता है । क्योंकि इसमें दोनों का श्रेष्ठ अंश विद्यमान रहता है । इस प्रकार पुन: वाद और प्रतिवाद में संघर्ष चलता है और फिर दोनों का संश्लेषण होता है । यह क्रम (Cycle) अनन्त काल तक चलता रहता है और संपूर्ण समाज की प्रगति का मार्ग भी यही है । यह प्रक्रिया हेगल का द्वन्द्ववाद है[2] । हेगल के द्वन्द्ववाद की मूल कल्पना आध्यात्मिक है । उन्होंने भौतिक जगत् की अपेक्षा मानव मन और आदर्शों के विकास को प्रमुखता दी । हेगल की द्वन्द्वात्मकता प्रकृति का

---

1. On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.67,68
2. Ibid

गुण नहीं, विचार का, आत्मा का गुण है[1]। आध्यात्मिक विकास से प्रकृति, मनुष्य और सामाजिक संबंध के विकास का मार्ग हेगल ने प्रस्तुत किया।

फायरबाख का भौतिकवाद

प्रसिद्ध जर्मन चिन्तक फायरबाख ने हेगल के भाववादी विचारों का खण्डन करके भौतिकवादी दर्शन का प्रतिष्ठान किया। दर्शन के क्षेत्र में उनकी पहली महत्वपूर्ण देन यह थी कि हेगल के भाववादी चिन्तनों से अभिभूत जर्मनी में उन्होंने भौतिकवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया। हेगल के द्वन्द्ववादी सिद्धान्त के परम सत्य (absolute idea) को उन्होंने अस्वीकार किया और इस तथ्य की स्थापना की कि जिस वस्तु जगत् में हम रहते हैं, वही सत्य है, उसका कर्ता कोई अति प्राकृतिक परम पुरुष या परम प्रत्यय नहीं है[2]। हर वस्तु, पदार्थ या भूत से उद्भूत है और भौतिक जगत और समस्त भौतिक व्यापार उसी मूल तत्व से नियमित और संचालित है। प्रकृति की वस्तुगत सत्ता तथा उसकी सतत परिवर्तनशीलता का प्रतिपादन करके फायरबाख ने चेतना को मस्तिष्क की उपज कहा[3]। मन को पदार्थ की उच्चतम अवस्था साबित करते हुए उन्होंने पदार्थ, पदार्थ जगत और प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता घोषित की और मानव जगत की समस्त घटनाओं की व्याख्या भौतिक आधार पर किया[4]।

---

1. Spirit, mind, the idea is primary and that the real world is only a copy of the idea.
   Selected works - Marx - Engels, Vol. III, p.64
2. .... perceptible world to which we ourselves belong is the only reality, On Dialectical Materialism
   Marx, Engels Lenin, p.167
3. Our conciousness and thinking, however suprasensuous they may seem, are the product of a material, bodily organ, the brain. Ibid, p.167
4. Ibid

मार्क्सवाद

उन्नीसवीं शताब्दी के क्रान्तिकारी चिन्तक कार्ल मार्क्स ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे ही बाद में मार्क्सवाद के नाम से विश्व प्रसिद्ध हो गये। मार्क्स प्रतिभाशाली व्यक्ति थे उनकी दृष्टि अधिक व्यापक और तीव्र थी । उन्होंने यूरोप के तीन महान दर्शनों - उन्नीसवीं शताब्दी की तीन महान विचारधाराओं की अर्थात् जर्मन दर्शन, अंग्रेज़ी राजनीतिक अर्थ शास्त्र और फ्रांस की समाजवादी क्रान्तिकारी विचारधाराओं को आगे बढ़ाया और उन्हें पूर्णता प्रदान की । मार्क्स के आर्थिक, सामाजिक विचार पूंजी (Capital) में संग्रहीत है, जो "सर्वहारा वर्ग का बाइबल" कहा जाता है।[1] एंगल्स के साथ मिलकर मार्क्स ने कम्युनिस्ट लीग की स्थापना की और साधारण जनता को कम्युनिस्ट लक्ष्यों से परिचित कराने के लिये सन् 1848 में 'Communist Manifesto' नामक घोषणा पत्र प्रकाशित किया । सर्वहारा वर्ग के पक्षपाती मार्क्स ने सन् 1864 में श्रमिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करके विश्व भर के सभी राष्ट्रों के मज़दूरों को एकत्रित करके उन्हें संघर्ष की ओर उन्मुख किया ।[2] मार्क्स के आर्थिक, सामाजिक दर्शनों के प्रमुख आधार हैं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद और अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त ।

मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक आयाम

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के आर्थिक, सामाजिक चिन्तनों का प्रमुख आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है । यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हेगल के द्वन्द्ववाद

---

1. Capital - Karl Marx - Preface to the English - Edition Vol.I,p.5
2. Manifesto of the communist party - Marx - Engels, pp.31-32

और फायरबाख के भौतिकवाद का समन्वित रूप है। लेकिन मार्क्स ने इन सिद्धान्तों को उसी रूप में ग्रहण नहीं किया। एक ओर उन्होंने हेगल के आदर्शवाद का निषेध करके बौद्धिकता को प्रधानता दी तो दूसरी ओर फायरबाख के भौतिकवादी विचारों की निगूढ़ता को एक स्पष्ट वैज्ञानिक रूप दिया। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दर्शन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी चरण था, जो जड और चेतन प्रकृति के क्रिया कलापों को जानने के लिये दुनिया को प्राप्त सबसे बड़ी देन है।[1] अन्य दर्शनों की तुलना में मार्क्सीय दर्शनों में सैद्धान्तिकता कम और व्यावहारिकता अधिक है। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थों की भौतिक सत्ता को स्वीकार करता है।[2] यह भौतिक जगत के विकास पर विचार करता है। मार्क्स का यह सिद्धान्त बाह्य जगत तथा मानवीय विचारों से संबन्धित गति के सामान्य नियमों का विज्ञान है।[3] मनुष्य से लेकर प्रकृति के समस्त क्रिया कलापों को देखने और समझने का मार्क्सवादी दृष्टिकोण ही वास्तव में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। यह, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिये कहा जाता है कि प्राकृतिक घटनाओं को देखने परखने और पहचानने का इसका ढंग द्वन्द्वात्मक है और इन प्राकृतिक घटनाओं की इसकी व्याख्या, धारणा एवं सिद्धान्त विवेचन भौतिकवादी है।[4] मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन के आधारभूत तीन नियम हैं - विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम, परिमाणात्मक से गुणात्मक परिवर्तन में सस्तरण का नियम और निषेध के निषेध का नियम।

---

1. On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.365, 366
2. Capital - Karl Marx - Preface to the English Edition, Vol.I, p.5
3. Dialectics, however is nothing more than the science of the general laws of motion and development of nature, human society and thought - Anti - Dubring Engels, p.172
4. It is called Dialectical Materialism, because it's approach to the Phenomena of nature, it's method of studying and apprenending them is dialectical, while it's interpretation of phenomena of nature, it's xxxxxxxx conception of these phenomena, it's theory is materialistic. Dialectical and Historical Materialism - Stalin, p.25

§1§ विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम

विपरीतों की एकता और संघर्ष का नियम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मूलभूत तत्व है। इस नियम के अनुसार मार्क्स ने भौतिक जगत के विकास के मूल स्रोतों, उसके कारणों और उसकी शाश्वत गति को उद्घाटित किया। इस नियम की जानकारी प्रकृति, समाज और चिन्तन के विकास की द्वन्द्वात्मकता को समझने के लिये अनिवार्य है।[1]

क. विपरीतों की एकता

प्रकृति की सभी वस्तुओं और व्यापारों के दो स्पष्ट पहलू होते हैं - परस्पर संबद्धता और परस्पर संघर्ष। संसार में कोई भी वस्तु या व्यापार ऐसा नहीं है जिसे विरोधों में बाँटा न जा सके। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थ या प्रकृति को स्वतंत्र, पृथक या परस्पर असंबद्ध ही नहीं मानता, वह वस्तुओं की संबद्धता और अन्योन्याश्रयता पर भी ज़ोर देता है।[1] वर्ग विभक्त समाज में भी विपरीत वर्ग हुआ करते हैं और हर व्यवस्था के विभिन्न वर्ग एक दूसरे के विपरीत होने के साथ साथ परस्पर संबद्ध हैं। जिस प्रकार चुंबक एक स्तर पर एक दूसरे का निषेध करने पर भी दूसरे स्तर पर परस्पर आकर्षित रहता है, उसी प्रकार वर्ग विभक्त समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग से सर्वथा विरोधी होते हुए भी दोनों परस्पर संबद्ध रहते हैं।[2]

---

1. The two poles of an antithesis, positive and negative are as inseparable as they are opposed, and that despite all their opposition, they mutually interpenetrate.
   Anti Duhring - Engels, p.32
2. On Dialectical Materialism - Marx Engels, Lenin, p.135

एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही नहीं। इस व्यवस्था का आधार ही परस्पर विरोध और एकता का नियम है। इन दोनों के अविच्छिन्न अन्तःसंबंध से ही विपरीतों की एकता बनती है।

ब॰ विपरीतों का संघर्ष

संघर्ष हमेशा परिवर्तन या विकास का मूल स्रोत है। विपरीतों में स्वाभाविक तौर पर विद्यमान अन्तर्विरोध उन्हें संघर्ष के लिये प्रेरित करता है। इस प्रकार का अन्तर्विरोध या विपरीतों का संघर्ष ही पदार्थ या चेतना के विकास का स्रोत है। सृष्टि का समूचा विकास क्रम अन्तर्विरोधों और विपरीतों के इसी संघर्ष का परिणाम है जो सतत चलता रहता है। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद विरोधी वस्तुओं के संघर्ष मे विकास या परिवर्तन संभव मानता है।[1]

स॰ परिमाणात्मक से गुणात्मक संतरण का नियम

परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तु में निरन्तर परिमाणात्मक परिवर्तन होता रहता है और एक विशेष बिन्दु पर पहुंचकर यह परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक का रूप धारण करता है। परिमाणात्मक और गुणात्मक परिवर्तनों के बीच गहरे स्तर पर एक घनिष्ठ संबन्ध होता है। विकास के क्रम में परिमाणात्मक परिवर्तन गुणात्मक की सृष्टि करता है। मार्क्स ने कहा कि केवल परिमाणात्मक परिवर्तन एक

---

1. Fundamentals of Marxism - Leninism - Ed.(Clemens butt) p.94

विशेष बिन्दु से आने जाने पर गुणात्मक परिवर्तन बन जाता है[1]। इस नियम का उदाहरण सामाजिक जीवन के विकास में हम देख सकते हैं। संपूर्ण मानव इतिहास में आधार भूत गुणात्मक परिवर्तनों की भूमिका निहित है। इसके फलस्वरूप एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था, एक सामाजिक वर्ग से दूसरे सामाजिक वर्ग की भूमिकायें सामने आती हैं, जो सामाजिक क्रांति का रूप लिये रहती है। एक पुरानी व्यवस्था से नयी व्यवस्था में होनेवाला क्रान्तिकारी परिवर्तन मनुष्य के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण द्वन्द्वात्मक क्रमबद्धता है[2]।

ग. निषेध के निषेध का नियम

विकास के लिये पूर्वरूप का निषेध आवश्यक है। मार्क्स के अनुसार किसी भी क्षेत्र में तब तक कोई विकास नहीं हो सकता, जब तक कि वह अपने अस्तित्व से पुराने रूपों का निषेध न करें[3]। आदिम समाजवादी व्यवस्था से अब तक का विकास नये रूपों द्वारा पुराने रूपों के निषेध का ही प्रमाण प्रस्तुत करता है। विकास की प्रक्रिया में निषेध का नियम स्वाभाविक तौर पर विकसित होता है। यह विकास प्रक्रिया वस्तु के भीतर से सहज ही विकसित होती है। विभिन्न आन्तरिक अन्तर्विरोध सक्रिय होकर पुराने रूप को अभिभूत करके नये को जन्म देता है।

---

1. The quantitative operation of division has a limit at which it becomes transformed in to a qualitative difference - On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.124
2. Anti Duhring - Engels, p.155
3. Progress makes it's appearance as the negation of the existing state of things - On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin,p.135

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार पुरानी वस्तु में से उद्भूत नयी वस्तु उस पुरानी वस्तु का प्रतिषेध करती है । लेकिन विकास की प्रक्रिया एक नयी वस्तु द्वारा पुरानी वस्तु के निषेध से समाप्त नहीं होती । नयी वस्तु के भीतर भी विरोधी तत्व होते हैं जो उचित समय पर प्रस्फुटित होते हैं । फिर उन विरोधों पर संघर्ष होता है और पहले की नयी वस्तु का निषेध करनेवाली एक और नयी वस्तु सामने आती है । अर्थात् मार्क्सवादी दृष्टि-कोण में प्रतिक्रिया जो क्रिया का निषेध है, वह क्रिया के अन्तर्विरोध को दूर करने की चेष्टा करती है । कालान्तर में अपने अन्तर्विरोधों के कारण प्रतिक्रिया भी भग हो जाती है और संश्लेषण की स्थिति जन्म लेती है । यह संश्लेषण, क्रिया और प्रतिक्रिया के निषेध का निषेध है । अत: निषेध के निषेध का नियम यह साबित करता है कि विकास का इतिहास प्रगतिशील होता है । हर अगला विकास अपने स्वरूप में प्रगति होती है[1] ।

2· ऐतिहासिक भौतिकवाद

ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवादी दर्शन का दूसरा पहलू है । अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिये मार्क्स ने इतिहास का सहारा लिया । द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त के सामाजिक प्रयोग के लिये उन्होंने समाज और इतिहास का अध्ययन आवश्यक समझा । उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को प्रकृति के क्रिया कलापों तक सीमित न रखकर उसका उपयोग सामाजिक जीवन के विकास क्रम को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिये किया । अत: मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आधार ऐतिहासिक भौतिकवाद है[2] ।

---

1. Anti - Duhring - Engels, pp.160-165

2. On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, pp.460-461

इतिहास के अध्ययन द्वारा मार्क्स ने यह निष्कर्ष निकाला कि जिन भौतिकवादी नियमों के अनुसार प्रकृति के समस्त क्रिया व्यापार संचालित होते हैं, उन्हीं नियमों के अन्तर्गत सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन होता है । ऐतिहासिक भौतिकवाद जीवन की भौतिक परिस्थितियों पर अधिक ज़ोर देता है। इसके अनुसार आर्थिक परिस्थितियाँ ही सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार है । इसलिये आर्थिक व्यवस्था के अनुकूल ही सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाओं की संरचना होती है।[1] इसलिये ऐतिहासिक भौतिकवादी दृष्टिकोण से सामाजिक परिवर्तनों और राजनीतिक संघर्षों के मूल कारणों का पता लगाने से उस युग के उत्पादन विनिमय प्रणाली में होनेवाले परिवर्तन का पता लग सकता है । वास्तव में सभी सामाजिक परिवर्तनों और राजनीतिक क्रान्तियों के आधारभूत कारण किसी भी युग की आर्थिक परिस्थितियों में पाये जा सकते हैं[2] ।

ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के विचार भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होते हैं । भौतिक उत्पादन में होनेवाले परिवर्तन के अनुसार समाज के बौद्धिक उत्पादन की विशिष्टतायें तथा वैचारिक पक्ष भी परिवर्तित होते हैं । इस वैचारिक पक्ष को ऐतिहासिक भौतिकवाद में उपरि संरचना कहते हैं[3] । इस उपरि संरचना का निर्धारण भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति ही करता है । आर्थिक आधार से संबद्ध रहने के कारण समाज की उपरि संरचना कभी स्थिर नहीं रहती ।

---

1. The sum total of the relations of production constitutes the economic structure of society the real foundation which rises a legal and political superstructure.
   On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.460
2. On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin,p.44
3. The mode of production of material life conditions the general process of social, political and intellectual life. Ibid

आधार में परिवर्तन होने पर उपरि संरचना में भी परिवर्तन स्वाभाविक हो जाता है। आज तक के मानव का इतिहास इसका साक्षी है। वर्ग विभक्त समाज में यह उपरि संरचना आर्थिक आधार के अन्तर्विरोध को व्यक्त करती है। अतः उसमें भी अन्तर्विरोध दिखायी पड़ता है।[1]

मार्क्स और एंगल्स के अनुसार जो वर्ग, समाज की शासक शक्ति होता है, वही वर्ग शासक बौद्धिक शक्ति भी हुआ करता है।[2] उदाहरण के रूप में पूंजीवादी समाज में आर्थिक दृष्टि से पूंजीपति ही शासक शक्ति होती है। इसलिये पूंजीवादी विचारों और संस्थाओं की उस समाज में प्रमुखता रहती है। पूंजीपति इस अधिकार को अपने शासन बनाये रखने और मज़दूर वर्ग से लड़ने के लिये इस्तेमाल करते हैं।[3]

जिस अनुपात में पूंजीपति वर्ग की आर्थिक शक्ति बढ़ती है, उसी अनुपात में सर्वहारा वर्ग भी संख्यात्मक दृष्टि से बढ़ता है। अतः मार्क्स और एंगल्स ने बताया कि पूंजीपति वर्ग अपनी कब्र खोदनेवालों को पैदा करता है। उसका पतन और सर्वहारा वर्ग की विजय दोनों समान रूप से अनिवार्य है।[4]

---

1. On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.138
2. The ideas of the ruling class are in every epoch the ruling ideas, ie. the class which is the ruling material force of society, is at the same time its ruling. Intellectual force - Selected works - Marx, Engels, Vol.I, p.47
3. Ibid.
4. What the bourgeoisie, therefore, producers, above all, is its own grave diggers. It's fall and the victory of the proletariat are equally inevitable. Manifesto of the communit party - Marx, Engels, p.60

सामाजिक सत्ता, सामाजिक चेतना का संबंध, समाज के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिये आवश्यक परिस्थितियों का पारस्परिक संबंध आदि अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त से मार्क्स ने व्यक्त किया। मार्क्स के मत में मनुष्य की सामाजिक चेतना उनकी निजी चेतना से अधिक महत्वपूर्ण है[1]। ऐतिहासिक भौतिकवाद यह बतलाता है कि इतिहास के नियामक और निर्माता महापुरुष नहीं, बल्कि मेहनतकश जनता होती है। सामाजिक जीवन के इतिहास के विकास में निर्णायक भूमिका इस जनसामान्य की होती है। मार्क्सवाद में "जनता" वे लोग है जो श्रम करते हैं और विषमतापूर्ण समाज में शोषित रहते हैं[2]। इस प्रकार इतिहास का भौतिकवादी पक्ष प्रस्तुत करके समाज के वैज्ञानिक अध्ययन को सुगम बनाना कार्ल मार्क्स का लक्ष्य था।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स ने यह जान लिया कि आर्थिक स्थिति ही राजनीतिक गतिविधियों का आधार है। इसलिये उन्होंने आर्थिक व्यवस्था के अध्ययन पर अधिक ज़ोर दिया। उनका "पूंजी" (Capital) नामक ग्रंथ पूंजीवादी समाज की आर्थिक स्थितियों की पढ़ाई है। मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था का मुख्य सिद्धान्त है अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त। एंगल्स के अनुसार ऐतिहासिक भौतिकवाद और अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्तों के द्वारा पूंजीवादी उत्पादन के रहस्य का उद्घाटन मार्क्स की सर्वश्रेष्ठ देन है[3]।

---

1. It isnot the conciousness of men that determines their being, but on the contrary their social being that determines their conciousness.
   On Dialectical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.43
2. The concept of masses undergoes a change so that it implies the majority, and not simply a mqjority, and not simply a majority of workers alone, but the majority of all the explited.
   On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin,p.681
3. On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin,p.454

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की परिधि बहुत ही सीमित है । ऐतिहासिक भौतिकवाद जहाँ मानव विकास की सामान्य व्याख्या करता है, वहाँ अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त केवल पूंजीवादी व्यवस्था पर ही अपनी दृष्टि रखता है । समाज की पूंजीवादी शोषण रीति, मजदूरों का शोषण, सामाजिक उत्पादन में व्यक्तिगत उपभोग की विषमता को दूर करके शोषण की समाप्ति का मार्ग आदि सभी समस्याओं के समाधान का आधार ही अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है । इस सिद्धान्त के द्वारा मार्क्स ने पूंजीवादी व्यवस्था की प्रवृत्तियों की सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की । मार्क्स के अनुसार वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था का आधार ही शोषण है[1] । उन्होंने यह साबित किया कि हर चीज़ का मूल्य उसके उत्पादन के लिये आवश्यक श्रम के आधार पर निर्धारित किया जाता है[2] । लेकिन एक ओर समाज के बहुसंख्यक जनता में गरीबी और बेकारी बढ रही है और दूसरी ओर थोडे व्यक्तियों के पास अधिकांश संपत्ति केन्द्रित हो रही है । यह संपत्ति मजदूरों की मजदूरी के शोषण से बनती है । मजदूर को अपने श्रम के लिये जो वेतन दिया जाता है, वह लाभ का हिस्सा मात्र है । वेतन देकर जो कुछ बच जाता है, वह मुनाफा पूंजीपति के पास एकत्रित हो जाता है । यही अतिरिक्त मूल्य है[3] । यह वास्तव में शोषण है । इस अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के द्वारा मार्क्स ने पूंजीवादी शोषण का पर्दाफाश किया । मार्क्सवाद में सामाजिकता की प्रधानता है । सामाजिक जीवन के भौतिक आधार हैं श्रम, पूंजी और उत्पादन शक्ति ।

---

1. Selected Works - Marx - Engels, Vol.I, p.165
2. The value of evvery commodity is determined by the quantity of socially necessary labour spent on it's production.

   On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin,p.454
3. Selected works - Marx,Engels, Vol.II, p.60-61

सामाजिक जीवन के भौतिक आधार

मार्क्सवाद में सामाजिकता की प्रधानता है। सामाजिक जीवन के भौतिक आधार हैं श्रम, पूंजी और उत्पादन शक्ति।

श्रम

मानव ने अपने अब तक के विकास में जितनी प्रगति प्राप्त की है उन सबके मूल में उसका श्रम है। इस श्रम के द्वारा वह सभी भौतिक सुख सुविधाओं को अर्जित करता है। मानव समाज के अस्तित्व का प्रथम और प्रमुख अंग श्रम ही है।[1] यह श्रम उत्पादन करनेवाले का अपने जीवन का ही प्रतिफलन है, जो जीविका चलाने के लिये वह अन्य किसी को बेचता है। उत्पादक के अस्तित्व को बनाये रखने का साधन है श्रम।[2] यह समाज के भौतिक जीवन का सर्वप्रथम उत्पादन है। इसी श्रम के आधार पर ही मनुष्य पहले पहल सोचने और अपने विचारों को स्थापित करने में समर्थ हो गया।[3]

पूंजी

पूंजी वह धन है जो वस्तुओं के उत्पादन के लिये किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा खर्चा जाता है। मार्क्स अनुसार पूंजी नवीन पदार्थों और उत्पादन के उपकरणों के निर्माण में उपयुक्त पदार्थ है जो हमेशा

---

1. Dialectical Materialism - Maurice Cornforth Vol.III p.51
2. Labour is the worker's own life activity, the manifestation of his own life, and this life actuvity he sells to another person in order to resure the necessary means of subsitance. His life activity is for him only a means to enable him to exist.
   Selected Works - Marx, Engels,p.75
3. It is through labour that men first of all enlarges his perceptions and first of all beings to use his brain to think, to form ideas and to communicate them.
   Dialectical Materialism - Maurice conforth. Vol.III p.51

पैदावार के साधनों के रूप में होता है[1]। यह पूंजी वस्तुओं के उत्पादन का एक साधन मात्र नहीं, वरन् पूंजीपतियों का मुनाफा कमाने का भी साधन है[2]।

उत्पादन शक्ति

उत्पादन के साधन जिसके द्वारा भौतिक वस्तुओं का निर्माण किया जाता है और उत्पादन में संलग्न श्रम दोनों का संयुक्त रूप उत्पादन शक्ति कहलाता है। अपने श्रम से मनुष्य आवश्यक उपकरणों का निर्माण और प्रयोग करता है। लेकिन वह अपनी इच्छानुसार इन उपकरणों को नहीं चुनता। हर एक नयी पीढ़ी अपने से पहले की पीढ़ी के द्वारा विकसित उपकरणों को प्राप्त करती है और उनका ही प्रयोग करती है। लेकिन जब ये उपकरण तथा उत्पादन के औजार अपनी आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुकूल सिद्ध नहीं होते तो नये अनुभवों के आधार पर मनुष्य उसे निरन्तर विकसित तथा परिवर्तित करता रहता है। परन्तु ये उत्पादन औजार अपने आप काम नहीं कर सकते। उनके संचालन में नये अनुभवों से संपन्न निरन्तर विकास प्राप्त करनेवाली मानवीय शक्ति अपेक्षित है। उत्पादन उपकरण तथा विशिष्ट शक्ति से युक्त उत्पादन कार्य में संलग्न व्यक्ति या व्यक्ति समूह को संयुक्त रूप से मार्क्सवादी शब्दावली में उत्पादन शक्ति कहते हैं[3]।

---

1. All new capital comes on the stages .... on the market whether of commodities, Labour or money.
   Anti Duhring - Engels, p.246
2. Ibid, p.237
3. The mode of production in society involves two factors, the force of production consists of the instruments of production and the people with their production experience.
   Dialectical Materialism and Historical Materialism - Maurice Cornforth, p.68

पैदावार के साधन जिनसे भौतिक मूल्यों का उत्पादन होता है और मनुष्य द्वारा बनाये हुये यंत्र, कारखाने आदि तथा वे मनुष्य जो इन साधनों से काम लेते हैं, सभी मिलकर समाज की उत्पादन शक्ति कहलाती है ।

वर्ग

पूंजी और श्रम दोनों के मिलन से ही उत्पादन प्रक्रिया पूर्ण होती है । श्रम का स्वरूप हमेशा सामाजिक होता है तो पूंजी और उससे मिलनेवाला मुनाफा वैयक्तिक रहता है । पूंजी निकालकर उत्पादन करने वाला साधन संपन्न व्यक्ति केवल अपनी पूंजी के बल पर अनेकानेक मजदूरों के श्रम का शोषण करता है । इस प्रकार सामाजिक श्रम से प्राप्त लाभ किसी एक व्यक्ति के हाथ में आ जाता है । मजदूरों की श्रमशक्ति से पूंजीपतियों की धनवृद्धि होती है और संपत्ति के संचय में वृद्धि उत्पादन की वृद्धि और तद्वारा श्रमिकों की संख्या में बढाव का कारण बन जाता है । मार्क्सवादी धारणा में वर्ग उन व्यक्तियों के समूह को कहते है जो उत्पादन में एक ही तरह का काम करते हैं, जिनके आर्थिक हित भी एक जैसे होते हैं[1] । इस दृष्टि से देखें तो दास व्यवस्था से लेकर अब तक केवल दो ही प्रमुख वर्ग दिखायी देते हैं - एक शोषक और दूसरा शोषित । इस प्रकार संपत्ति संचय और शोषण समाज में दो विभिन्न वर्गों को जन्म देते हैं - साधन संपन्न शोषक पूंजीपतियों का वर्ग और साधनहीन शोषित मज़दूर वर्ग अर्थात् उच्चवर्ग और निम्नवर्ग मार्क्सवादी शब्दावली में यह उच्चवर्ग बुर्जुआ और निम्नवर्ग प्रोलेटेरियन कहते हैं[2] ।

---

1. Class are group whose members are united on the basis of similar economic and social status and common interests.
   Marxism, Communism and Western Society a comparative Encyclopaedia, Vol.II

2. Manifesto of the communist party - Marx Engels,p.41

वर्गों का अन्तः संबंध और अन्तर्विरोध

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत मार्क्स ने वर्गों के अन्तःसंबंध और अन्तर्विरोध पर सैद्धान्तिक तौर पर विचार किया है । हर सामाजिक व्यवस्था में दो परस्पर विरोधी वर्ग होते हैं - शोषक वर्ग और शोषित वर्ग । समाज के इन विरोधी वर्गों के बीच आपसी संबंध है । ये दोनों अन्योन्याश्रित रहते हैं । श्रम के बिना पूंजी का महत्त्व नहीं और पूंजी के बिना श्रम भी मूल्यहीन है । अतः उत्पादन की प्रक्रिया में पूंजी खर्च करनेवाले साधन संपन्न वर्ग और उसकी पूंजी से श्रम करनेवाले साधन हीन श्रमिक वर्ग दोनों के बीच एक सामाजिक संबंध स्थापित होता है और यह आपसी संबंध उत्पादन का कारण भी बन जाता है[1] ।

उत्पादन के लिये अन्तःसंबंध रखनेवाले समाज के दो वर्गों में आपसी विरोध भी मौजूद है । वर्गों के अन्तर्विरोध के कारणों को भी मार्क्स ने प्रतिपादित किया है । उनके अनुसार जब समाज की कोई भी व्यवस्था पूर्ण विकास कर लेती है और उस व्यवस्था में समाज के लिये आगे विकास करने का अवसर नहीं रहता, तब इस आपसी संबंध को तोड़ने के लिये इसी व्यवस्था में स्वयं ही एक विरोधी शक्ति पैदा हो जाती है जो समाज की उस व्यवस्था को तोड़कर एक नयी व्यवस्था तैयार करती है[2] ।

---

1. In the social production of their life, men enter into definite relations that are indispensable and independent of their will, relations of production which correspond to a definite stage of development of their material productive forces.
   On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.137

वर्गों के बीच का यह अन्तर्विरोध इस प्रकार समाज के विकास का कारण बन जाता है। इस अन्तर्विरोध से प्रकृति और समाज में होनेवाला परिवर्तन या विकास सहसा मूर्त हो जाता है। इसको क्रान्ति की संज्ञा दी गयी है[1]।

वर्ग संघर्ष

समाज के दो वर्गों के हित अक्सर एक दूसरे के विरुद्ध होते हैं। इस विरोध के कारण दो वर्गों में सदैव संघर्ष भी होता है। समाज जब तक वर्गबद्ध रहेगा तब तक दो वर्गों के बीच का संघर्ष होना स्वाभाविक है[2]। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक परिस्थितियाँ समाज में विभिन्न श्रेणियों और उनके संघर्ष के स्वरूप को निर्धारित करती है। इस पर संकेत करके एंगल्स ने बताया कि आदिम समाजवादी व्यवस्था को छोड़कर मानव जाति का सारा इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है[3]। हर समाज का संघर्षशील वर्ग उस काल के उत्पादन और विनिमय की अवस्थाओं से या उस काल की आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न होता है[4]। इसलिए जिस सामाजिक व्यवस्था में उत्पादन संबंधी असंगतियाँ नहीं होंगी, उसमें किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष भी नहीं होगा।

---

1. Manifesto of the communist party - Marx, Engels, p.59
2. Every form of society has been based on the antagonism of oppressing and oppressed clases.
   Manifesto of the communist party - Marx Engels,p.59
3. All past history with the exception of its primitive stages, was the history of class struggles.
   Selected works - Marx, Engels Vol.III, p.132
4. The warring classes of society are always the products of the modes of production and of exchange in a world, of the economic conditions of their time.
   Selected works - Marx Engels, VolIII, p.132

आर्थिक असमानता ही समाज में वर्ग संघर्ष का प्रमुख कारण है । हर युग में यह संघर्ष साधनहीन वर्ग का साधन संपन्न वर्ग के प्रति है । अपनी श्रमशक्ति बेचकर जीविका चलानेवाले सर्वहारा वर्ग को पूंजी या उससे मिलनेवाले लाभ से कोई संबंध नहीं । उसका हित, अहित, जीवन मरण, उसका संपूर्ण अस्तित्व श्रम की मांग पर निर्भर है[1] । लेकिन केवल पूंजी के बल पर, सिर्फ अपने लाभ के लिये पूंजीपति वर्ग बहुसंख्यक मनुष्य के श्रम का शोषण करता है[2] । समाज में शोषक पूंजीपतियों का अधिकार बढ जाने से शोषित मज़दूरों की स्थिति अधिकाधिक शोचनीय बन जाती है । मार्क्सवाद इस शोषण के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता पर ज़ोर देता है[3] ।

सभी सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मनुष्य के माध्यम से होती है । अतः उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के विरोध का संघर्ष भी समाज में विभिन्न वर्गों के संघर्ष के रूप में व्यक्त होता है । समाज का आधार अर्थ होने के कारण उत्पादन रीति में होनेवाले परिवर्तन समाज में नये वर्ग के जन्म का कारण बन जाता है । इस प्रकार वर्गों का सीधा संबंध उत्पादन पद्धति या समाज के आर्थिक आधार के साथ है । एंगल्स ने लिखा है कि आधुनिक इतिहास में कम से कम यह तो सिद्ध हो चुका है कि समस्त राजनीतिक संघर्ष वास्तव में वर्ग संघर्ष ही है[4] । क्योंकि प्रत्येक वर्ग संघर्ष अन्ततः आर्थिक स्वतंत्रता के प्रश्न से जुडे हुए है ।

---

1. The proletariat who own absolutely nothing who are compelled to sell their labour to bourgeois in order to obtain the necessary means of subsistence. Selected works - Marx Engels, Vol.I, p.82
2. The class bourgeois own all the means of subsistence and raw materials and instruments needed for production. Ibid.
3. On Historical Matrialism - Marx Engels, Lenkn, p.452
4. Every class struggle is a political struggle. Manifesto of the communist party - Marx Engels, p.55

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर वर्ग संघर्ष का अनुशीलन किया है । द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के मात्रा भेद से गुण भेद के नियम के अनुसार पहले धीरे धीरे मात्रा में वृद्धि होती रहती है और फिर मात्रा वृद्धि की चरम अवस्था आती है जहाँ पर पहुँचकर एकाएक गुणात्मक परिवर्तन घटित होता है और एक नवीन स्थिति उत्पन्न हो जाती है । सामाजिक परिवर्तन भी इस नियम का अपवाद नहीं । अन्तर्विरोध पर आधारित किसी भी सामाजिक व्यवस्था में पहले शोषित वर्ग में असन्तोष की मात्रा धीरे धीरे बढती रहती है और फिर ऐसी चरम स्थिति आती है जहाँ पर पहुँचकर यह असन्तोष भीषण क्रान्ति का रूप धारण कर लेता है[1] । यह क्रान्ति समाज में गुणात्मक परिवर्तन का प्रतीक होता है जिसके द्वारा पुरानी सामाजिक व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर एक नवीन व्यवस्था कायम होती है[2] ।

वर्ग संघर्ष के मार्क्सवादी सिद्धान्त का मुख्य पहलू यह है कि श्रमिक वर्ग ही नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माता की जिम्मेदारी निभा सकता है[3] । वही ऐसा वर्ग है जो उत्पादन की अत्यन्त विकसित प्रक्रिया के दौरान ऐसी शक्ति और संगठन बना सकता है जिससे वह सामाजिक जीवन के पुनर्निर्माण का नेता बन जाता है । मज़दूर वर्ग ही सबसे अधिक सुसंगत क्रान्तिकारी वर्ग होता है । इसलिये संसार के क्रान्तिकारी परिवर्तन में वही मुख्य प्रेरक शक्ति बन गया है[4] । वर्ग संघर्ष के सिलसिले में यह श्रमिक

---

1. Manifesto of the communist party - Marx Engels,pp.54-55
2. With in the old Society the elements of a new one have been created, and that the dissolution of the old idies keeps even pace with the disolution of old conditions of existence.
   Manifesto of the communist party - Marx Engels,p.72
3. The emencipation of the workers must be the act of the working class itself. Manifesto of the Communist-Party - Marx Engels, p.31
4. Of all the classes that stand face to face with the bourgoisie today the proletariat alone is a really revolutionary class. Manifesto of the Communist Party - Marx Engels, p.57

वर्ग संगठित होता है। ×× ×× अत: पूंजीवाद के विरुद्ध आर्थिक, राजनीतिक और वैचारिक लड़ाई चलाता है।[1]"

वर्ग संघर्ष का मौलिक और अन्तिम उद्देश्य वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। क्योंकि वर्गहीन समाज में ही शोषण का अभाव संभव है। मार्क्स के अनुसार भाववादी आदर्शों की प्रेरणा या इच्छा मात्र से संघर्ष संभव नहीं। संघर्ष के लिये उपयुक्त वस्तु स्थिति का ज्ञान संघर्ष करनेवालों को अनिवार्य है। इसके लिये पहले पहल संघर्षशील वर्ग में वर्ग बोध की जागृति होनी चाहिये। वर्ग विरोध के बारे में उन्हें सचेत करके उसे संघर्ष की ओर उन्मुख कराने के लिये राजनीतिक दल की आवश्यकता है। यह दल शोषित वर्ग के लोगों को वर्ग संघर्ष की ओर अग्रसर कराने में सक्रिय कर्मपथ बतलाता है और उसे शिक्षित कराता है जिससे उनमें धीरे धीरे वर्ग बोध जागृत हो जायेगा। श्रमिक वर्ग अपने आदर्श की स्थापना के लिये प्रबुद्ध हो उठेगा। तभी यह वर्ग यथार्थ में चेतनासंपन्न कहा जा सकता है। यही नहीं केवल संघर्ष के प्रचार से संघर्ष नहीं होता। राजनीतिक अभिज्ञता से जब वर्ग के अधिकांश की मनोवृत्ति में परिवर्तन आता है, तभी संघर्ष संभव हो सकता है।[2]

---

1. Manifesto of the Communist Party - Marx Engels, p.72
2. It socialist is to be won, if working class emanicipation from capitalism is to be achieved, then the working class movement must become concious of its social aim. But this consiusness does not arise of itself. It does not arise spontaneously. On the contrary it requires the scientific working of socialist theory, the introduction of this theory into the working clas movement.
   Selected works - Lenin Vol.II, p.620

वर्ग संघर्ष के लिये अनिवार्य शर्तें में मार्क्स ने यह भी बताया कि संघर्ष और प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि धार्मिक, सामाजिक रूढियों के प्रति विकासवादी दृष्टिकोण अपनाया जाय। धर्म और ईश्वर के मोह के कारण व्यक्ति भौतिक जीवन में उदासीन हो जाता है और वह निष्क्रिय हो जाता है। अतः जनता धर्म, ईश्वर, भाग्यवाद आदि की वास्तविकता को पहचानकर पूंजीपति वर्ग से संघर्ष करें[1]।

सामाजिक परिवर्तन के लिये वर्ग संघर्ष को अनिवार्य माननेवाला मार्क्स सुधारवादी उपायों पर विश्वास नहीं रखते। ठीक समय पर शक्ति का सहारा लेकर शोषण के उन्मूलन का वे उपदेश देते हैं। उन्होंने कहा कि यदि श्रमिक शासन की स्थापना करनी है तो उपयुक्त समय पर मज़दूरों को बल प्रयोग का सहारा लेना होगा[2]। मार्क्स का दृढ विश्वास था कि पूंजीवाद का अन्त क्रान्ति के हिंसापूर्ण साधनों से ही संभव है। शान्तिमय वैधानिक अथवा लोकतंत्रीय साधनों से किसी देश में समाजवाद नहीं लाया जा सकता। उन्होंने लिखा "नूतन समाज रूपी शिशु को गर्भ में धारण करनेवाले हर प्राचीन समाज की जननी शक्ति होती है[3]। अतः मार्क्स के अनुसार बल के प्रयोग के बिना नयी व्यवस्था का जन्म संभव नहीं। सक्रिय संघर्ष पर विश्वास करने के कारण वर्ग संघर्ष के लिये हथियार उठाना मार्क्स ने आवश्यक माना। सन् 1850 में अपने जर्मन साथियों को उन्होंने लिखा कि किसी भी बहाने पर हथियार और गोला बारूद नहीं छोड देना चाहिए[4]।

---

1. Selected works - Vol.I, Marx Engels, p.125
2. The super session of the bourgeois state by the proletarian state is impossible without a violent ≠ revolution. On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.538
3. Force is the midwife of every old society pregnent with a new one. Capital - Vol.I, p.703, (Karl Marx)
4. On Historical Materialism - Marx, Engels, Lenin, p.457

श्रमिकों को उन्होंने स्वतंत्र इच्छा के अनुसार संघर्ष के नेता को चुनने और श्रमिकों के संरक्षक दल की व्यवस्था बनाने का आह्वान दिया ।[1] वर्ग संघर्ष के परामर्श में मार्क्स ने यह भी बताया कि वर्ग बद्ध समाज व्यवस्था में जैसे जैसे वर्ग संघर्ष तीव्र होता जाता है, पीड़ित मेहनतकश वर्ग की लड़ाई मुद्रायें भी प्रखर हो जाती है और बहुत से लोग अपनी वर्ग भूमिका को भी छोड़कर सर्वहारा वर्ग के साथ हो जाते हैं और उसके हितों एवं आकांक्षाओं के प्रवक्ता बन जाते हैं[2] ।

वर्ग संघर्ष से सामाजिक परिवर्तन

आर्थिक, सामाजिक विषमताहीन समाज की स्थापना के लिये श्रमिक वर्ग के संघर्ष को अनिवार्य माननेवाले मार्क्स ने वर्ग संघर्ष के बाद की परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था की भी कल्पना की है । मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष के बाद का प्रथम और प्रमुख परिवर्तन शोषण और सामाजिक असमानता का उन्मूलन है । उनका विचार था कि पूंजीपति और श्रमिकों के संघर्ष से पूंजीपति वर्ग का नाश हो सकेगा और समाज में आर्थिक समानता स्थापित होगी । मार्क्स वादी दृष्टिकोण में संघर्ष हमेशा प्रगति का सूचक है । जितना अधिक वर्ग संघर्ष होगा, उतना ही पुराने मूल्यों के बीच नवीन मूल्यों की स्थापना होगी । इससे समाज में प्रगति संभव होगी ।

---

1. On Historical Mateřialism - Marx, Engels, Lenin, p.457
2. Finally, in times when the class-strugle ners the decisive hour, the process of dissolution going on with in the ruling class, in fact within the whole range of old society, assumes such a violent, glaring character that a small section of the ruling class cuts itself adrift and joins the revolutionary class.
   Manifesto of the communist part - Marx, Engels, p.56

मार्क्स के अनुसार वर्ग संघर्ष की महत्वपूर्ण उपलब्धि वर्गहीन समाज की स्थापना है। इस वर्गहीन समाज में वर्गों का उन्मूलन ही नहीं, समता की स्थापना भी होगी जिसका प्रथम चरण है समाजवाद[1]। मार्क्स के अनुसार इस समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के जीविकोपार्जन का एक ही साधन होगा - उसका श्रम। उत्पादन और वितरण के साधनों पर राज्य का नियंत्रण होगा और समाज के न्यूनतम लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पादन और वितरण का संचालन होगा[2]। समाजवादी व्यवस्था में संपूर्ण समाज नैतिक और राजनीतिक दृष्टि से एकबद्ध हो जायेगा और उसमें कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होगा। इस प्रकार यह शोषणहीन समाज होगा[3]।

मार्क्स के विचार में वर्ग संघर्ष के बाद के सामाजिक परिवर्तन में सबसे प्रमुख सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य है[4]। श्रमिक वर्ग के एकाधिपत्य में शोषित जनवर्ग को वास्तविक स्वाधीनता मिल सकती है। ऐसी परिस्थिति में श्रमिक वर्ग - किसानों और मजदूरों - का शासन में भाग लेना संभव होता है[5]।

---

1. Socialism meansthe abolition of clases.
   On Historical materialism - Marx, Engels, Lenin,p.645
2. In communist society, the means of production are no longer the private property, the means of production belong to the whole society, and the worker will receive the full product of his labour.
   Manifest of the Communist Party - Marx Engels, p.62
3. Socialism means the emanicipation from exploitation. Socialism means the end of poverty and unemployment.
   Dialectical Materialism and Historical Materialism - Maurice Cornforth, p.14
4. This is a transition period in which the state can be nothing but the revolutionary dictatorship of the proletariat.
   On Historical Materialism - Marx Engels, Lenin, p.172
5. Manifesto of the Communist Party - Marx Engels, p.62

मार्क्स के समाजशास्त्रीय दर्शन ने विश्वभर में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का पथ प्रदर्शन किया । अपने इन सिद्धान्तों के द्वारा उन्होंने दुनिया भर के करोडों मेहनतकश लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाया । जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं छोडा गया जिसमें मार्क्सवादी सिद्धान्त का स्पर्श न हुआ हो । आर्थिक राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं मार्क्स के चिन्तनों ने साहित्य जगत में भी हलचल मचा दिया और साहित्य में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तनों का कारण बन गया ।

मार्क्स तथा प्रमुख मार्क्सवादी विचारकों की साहित्यिक मान्यतायें

मार्क्स के साहित्य संबंधी विचार

अर्थ, समाज और राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के पथ प्रदर्शक मार्क्स ने साहित्य और कला से संबंधित कोई व्यवस्थित चिन्तन प्रस्तुत नहीं किया । वे मूलत: समाज द्रष्टा थे । इसलिये मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं के सामने कला और साहित्य को उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया । फिर भी मार्क्स के समाज दर्शन के अन्तर्गत साहित्य एवं कला संबंधी उनके विचार यत्र तत्र मिलते हैं । मार्क्स की साहित्यिक मान्यतायें प्रसंगवश किसी लेखक या उनकी वृत्ति के बारे में लिखे गये पात्रों या उनके बारे में पूछे प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्राप्त है । "A contribution to the critique of political economy" नामक ग्रंथ में मार्क्स ने साहित्य एवं कला संबंधी अपने विचार प्रकट किये हैं । उनके अनुसार राजनीति, धर्म, दर्शन आदि के समान साहित्य एवं कला भी विचारधारा का एक रूप है । इसलिये अन्य रूपों के समान ये भी समाज के भौतिक धरातल से उद्भूत और नियत है । अत: आर्थिक, भौतिक जीवन कला

और साहित्य को प्रभावित करता है । कला और साहित्य इनसे नियंत्रित और इन पर आधारित है। फलत: आर्थिक, भौतिक धरातल पर परिवर्तन होने से कला और साहित्य में भी परिवर्तन आता है[1]।

मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता से अधिक उसके सामाजिक अस्तित्व को प्रमुखता देनेवाले मार्क्स ने कला और साहित्य में भी सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति को अनुपेक्षणीय माना । उन्होंने बताया कि सौंदर्याधिष्ठित होने पर भी मनुष्य की रचना प्रक्रिया को अपने सामाजिक लक्ष्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये[2]। कला और साहित्य के आस्वादन के लिये व्यक्ति को कलात्मक दृष्टि से सुसंस्कृत होने की आवश्यकता पर उन्होंने विचार किया[3]। मार्क्स के अनुसार सार्वजनीयता और व्यापकता कला और साहित्य की विशेषतायें है । वर्गहीन समाजके स्वप्नद्रष्टा मार्क्स साहित्य में भी वर्गहितों का प्रतिबिंब देखना चाहते थे[4]।

मार्क्स की साहित्यिक मान्यताओं को विश्वभर के अनेक चिन्तकों और साहित्यकारों ने स्वीकार किया । इन्होंने मार्क्स के सिद्धान्तों की दुरूहता दूर करके उसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया । लेनिन, ट्राट्स्की, माओ-त्से-तुंग, जी॰वी॰ प्लेखानोव, माक्सिम गोर्की, क्रिस्तोफर काडवेल राल्फ फाक्स, एर्नस्ट फिशर आदि इनमें प्रमुख है । इनके अलावा अन्य अनेक विचारकों ने मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अव्यक्त पहलू को स्पष्टता

---

1. Literature and Art - Marx, Engels, p.2
2. Ibid
3. If you want to enjoy art, you mut be an artistically cultured person.
   On Literature and Art - Marx - Engels, p.32
4. Ibid, pp.39-40

प्रदान की थी । लेकिन यहाँ थोड़े उल्लेखनीय मार्क्सवादी चिन्तकों के साहित्य संबंधी विचार प्रस्तुत करना उचित और आवश्यक मालूम होता है ।

लेनिन

मार्क्स के विचारों को सर्वप्रथम व्यावहारिक रूप देने का श्रेय रूस के महान राजनीतिक नेता एवं विचारक लेनिन को है । उन्होंने मार्क्स के सिद्धान्तों को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयास किया । सक्रिय राजनीतिज्ञ होने पर भी लेनिन कला और साहित्य के मर्म से घनिष्ठतापूर्वक परिचित थे । उनके अनुसार कला मानव समाज की वस्तु है । इसलिये जनता के विचार, भाव और इच्छा शक्ति को संगठित कर उनके जीवन की प्रगति करना कला का धर्म है[1] । कला और साहित्य के उद्देश्य पर उन्होंने बताया कि कला जनता की थाती है, उसकी जड़ें मेहनतकश जनता के बीच गहरी होनी चाहिये । इसी जनता द्वारा उसे समझना और प्यार करना चाहिये xx xx xx उसकी कर्मशीलता को जगाना चाहिये और उनके अन्दर कलात्मक प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए[1] । जनता को प्राचीन जड संस्कारों से मुक्त कराने के लिये लेनिन ने उसे निरक्षरता के अभिशाप से मुक्त कराने का आह्वान दिया[3] ।

----

1. On Literature and Art Vol. I - Lenin, p.251

2. Art belongs to the people. Its roots should be deeply implanted in the vey thick of the labouring mases It should be understood and lovèd by thee masses xxxxxx It must stir to activity and develop the instincts within th them.
On Literature and Art - Lenin, p.275.

3. Ibid, p.276

पूंजीवादी समाज में कलाकार की अस्वतंत्रता से परिचित होकर लेनिन ने साहित्यकार और कलाकार को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देने पर ज़ोर दिया । उनके विचार में हर कलाकार को यह अधिकार है कि वह बिना किसी की परवाह किये स्वतंत्रतापूर्वक सृजन करें और अपने आदर्शों का पालन करें[1] । उन्होंने बताया कि यदि मार्क्सवादी सच्चे अर्थ में स्वतंत्र साहित्य को खड़ा करना चाहता है तो उसे आम जनता का पक्ष ग्रहण करें । यह साहित्य इसलिये स्वतंत्र होगा कि नवीन प्रतिभाशाली लेखक किसी लोभ या सामाजिक पद की लालसा से नहीं बल्कि समाजवाद तथा जनता के प्रति सहानुभूति के विचार से इसकी ओर आकर्षित होंगे[2] ।

लेनिन साहित्य और कला को महान समाजवादी क्रान्ति के आदर्शों के अनुरूप विकसित करने के आकांक्षी थे । उन्होंने साहित्य और कला के जनवादी रूप की हिमायत की[3] । वे चाहते थे कि साहित्य और कला में क्रान्ति की ओर जनता को अग्रसर करानेवाले हर स्वप्न का साक्षात्कार हो जाय[4] ।

संक्षेप में कहे तो लेनिन साहित्य और कला के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के चित्रण और जन सामान्य के हितों को सर्वोपरि महत्त्व देते थे ।

---

1. Every artist and everyone who considers himself such, has the right to create vreely, to follow his ideal regardless of every thing.
   On~~e~~ Literature and Art - Lenin, p.274
2. Ibid, p.29
3. Ibid, pp.28-29
4. My dream will not cause any harm; it may even support and augment the energy of the working men.
   On Literature and Art - Lenin, p.22

ट्राट्स्की

लेनिन के बाद मार्क्सवादी विचारकों में प्रमुख ट्राट्स्की ने कला साहित्य संबंधी प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया । उनके अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर कला केवल एक सामाजिक अनुचर ही नहीं वह उपयोगितावादी भी है । वह व्यक्ति और समाज के आत्मिक अनुभवों को समृद्ध करती है, उनकी भावनाओं का परिष्कार करती है और व्यक्ति, समाज, वर्गों 'यहाँ तक कि राष्ट्रों को शिक्षित करती है'[1] । ट्राट्स्की ने बताया कि नयी कला का चरित्र सर्वहारा संघर्ष को केन्द्रित करके ही उभर सकता है । अतः कला और साहित्य को संघर्ष में स्थान देना होगा । रचनाकार की स्वतंत्रता की आवश्यकता पर ज़ोर देकर उन्होंने कहा कि कवि का पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार किसी भी विषय पर लिखे । परन्तु उसे उभरते हुए सर्वहारा वर्ग की मान्यताओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । ट्राट्स्की के अनुसार कला को जीवन से पृथक करने का प्रयास उसकी स्फूर्ति का हरण ही नहीं उसकी हत्या करना है[2] । क्रान्ति या संघर्ष का चित्रण होने के कारण कला के यथार्थवादी होने की आवश्यकता पर ट्राट्स्की ने अधिक बल दिया[3] ।

माओ-त्से-तुंग

चीन के महान राजनीतिक नेता और प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक माओ-त्से-तुंग ने साहित्य को जनता से जुड़ा देना आवश्यक माना । उन्होंने कहा कि साहित्य और कला का मुख्य उद्देश्य ही जनता है । इस जनता के

---

1. The Modern Tradition - Leon Trotsky, p.340
2. The effort to set art free from life, to declare it a craft, self sufficient into itself devitalizes and kills art. Ibid, p.346
3. Ibid, p.349

अन्तर्गत उन्होंने मुख्यतः मजदूरों, फिर किसानों, इसके बाद सैनिकों तथा बाद में शहरों में काम करनेवाले बुर्जुआ वर्ग और बुद्धिजीवियों को स्थान दिया । लेखकों और कलाकारों को उन्होंने मार्क्सवादी आदर्शों से अनुप्राणित सर्वहारा दृष्टिकोण अपनाने का उपदेश दिया[1]। साहित्यकारों से उन्होंने बताया कि वे उसी साहित्य को जनता के मन में पहुँचाये जो उसकी आवश्यकता की पूर्ति कर सकें । उनके अनुसार कला और साहित्य की वे अभिव्यक्तियाँ श्रेष्ठ हैं जो संघर्ष या क्रान्ति में जनता के साथ देती है[2]। लोक जीवन को कला और साहित्य रचना का आधार बनाने का उपदेश भी माओ ने कलाकारों और साहित्यकारों को दिया । मार्क्सवादी विचारों का सही अध्ययन करके, उसे सही रूप में समझकर साहित्य में उसे लागू कराने की आवश्यकता की ओर उन्होंने लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया । यही नहीं जनता के संघर्ष में बाधा उपस्थित करनेवाली, उसे कमज़ोर बनाने वाली शक्तियों की भर्त्सना करने का आह्वान भी उन्होंने साहित्यकारों को दिया[3] ।

प्लेखानोव

रूसी साहित्य चिन्तन को मार्क्सवादी संदर्भ देने का सर्वप्रथम श्रेय जी॰वी॰ प्लेखानोव को है । उन्होंने कला और साहित्य को मार्क्सवादी संदर्भ में विश्लेषित करके एक नवीन दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की । कला को एक सामाजिक प्रक्रिया मानते हुए प्लेखानोव ने बताया कि समाज कलाकार के लिये नहीं, बल्कि कलाकार समाज के लिये बना है । इसलिये कला का दायित्व है कि वह सामाजिक व्यवस्था के सुधार में और मानवीय चेतना के विकास में सक्रिय भाग लें[4]। उनके मत में जो व्यक्ति सामाजिक जीवन से

---

1. Our artistsand writers should work in their own fields, which is art and literature, but their duty first and foremost is, to understand and literature. Mao-Tse-Tung, p.6
2. Ibid, p.36
3. On Art and Literature - Mao Tse Tung, p.41
4. Art and Social life - G.V. Plekhuov,p.20

मुँह मोड़कर अपने अहं की ओर उन्मुख होता है, जो बाह्य यथार्थ को स्वीकार नहीं करता, वह कभी किसी नयी वस्तु प्राप्त नहीं कर सकता। वास्तविक कला का जन्म तभी होता है जब व्यक्ति अपने बाह्य जीवन के यथार्थ से प्रभावित होकर, अपने अनुभूत भावों और विचारों का पुनर्जागरण करके उसकी अभिव्यक्ति करता है।[1] प्लेखानोव ने कला और साहित्य के सौंदर्य पक्ष की अपेक्षा उसके उपयोगितावाद पर अधिक महत्व दिया।[2]

माक्सिम गोर्की

लोकप्रिय रूसी साहित्यकार माक्सिम गोर्की साहित्य चिन्तक के रूप में भी विख्यात है। विश्व साहित्य में समाजवादी यथार्थ की स्थापना करने का श्रेय गोर्की को है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित गोर्की के अनुसार मनुष्य ही सारी वस्तुओं, सारे भावों और विचारों का सृष्टा है, वही प्रकृति की संपूर्ण शक्तियों का भावी स्वामी है। संसार में जो कुछ भी सुन्दर या श्रेष्ठ है, वह सब मानव श्रम की उपज है, श्रम की प्रक्रिया ही समस्त भावों एवं विचारों का उद्गम है। अतः सोवियत लेखकों को सलाह देते हुए उन्होंने बताया कि उन्हें अपनी कृतियों में श्रम को नायकत्व देना चाहिए।[3] उनके अनुसार साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह मानव श्रम के उस संसार को जो क्रान्ति के द्वार पर पहुँचा है, सहायता प्रदान करे।[4] श्रम और श्रमिक वर्ग की महत्ता का प्रतिपादन करके उन्होंने मानवशक्ति की असीम संभावनाओं की ओर संकेत किया और मृत्यु पर जीवन की ओर अनाचारों पर मानवता की विजय का उद्घोषणा किया।[5]

---

1. Art begins at the point where man, evokes within himself a new feelings and thought experienced by him under the influence of his enviornment and gives a certain expression to them in images. Ibid, pp. 2021
2. Ibid, p.102
3. On Literature - Maxim Gorky, p.254
4. Ibid, p.171
5. Ibid, p.67

गोर्की की राय में समाजवादी यथार्थवाद को प्रश्रय देनेवाला मार्क्सवादी कलाकार अनाचारपूर्ण यथार्थ के प्रति लोगों में विद्रोह की भावना जगाता है, वर्तमान के प्रति असन्तोष उत्पन्न करके नवनिर्माण और प्रगति की प्रेरणा देता है तथा जीवन के प्रति लोगों की आस्था को सुदृढ बनाता है[1]।

लोक साहित्य को नवीन सृष्टि के महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार करते हुए गोर्की ने बताया कि श्रमरत जनता के वास्तविक इतिहास की जानकारी लोकगीतों में ही निहित है[2]। मनुष्य मन से दासता और कायरता दूर करके सुप्त मानवता को जगाने में समर्थ साहित्य को ही उन्होंने सच्चा साहित्य माना[3]।

<u>क्रिस्तोफर काडवेल</u>

मार्क्स के आर्थिक, सामाजिक विचारों के हामी क्रिस्तोफर काडवेल ने कविता या साहित्य को भी आर्थिक क्रिया के रूप में स्वीकार किया[4]। कविता या कला को समाज रूपी सीपी से उद्भूत मोती माननेवाले काडवेल ने कहा कि कविता या कला का वास्तविक उद्भव समाज के बीच से होता है। कला और समाज के बीच के घनिष्ठ संबंध का उन्होंने विस्तार से प्रतिपादन किया[5]।

मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित काडवेल ने कला का उद्देश्य जनता को जागृत करना, शोषण से उन्हें मुक्त करना माना[6]। कलाकारों से

---

1. On literature - Maxim Gorky, p.265
2. Ibid, p.236
3. Ibid, p.256
4. Poetry is to be regarded the not as anything racial, national, genetic or specific in its essence but as some thing economic.Chiotopher Caudwell Illusion and Reality,p.14
5. Ibid,p.6
6. Ibid,p.296

उन्होंने यह निवेदन किया कि वे पूरे समाज की भलाई के लिये आर्थिक विषमताओं का सही कारण ढूँढकर उनका हल प्रस्तुत करें। इसके लिये उन्होंने किसी न किसी हद तक कलाकारों का सर्वहारा संगठन से जुड़े रहने और उनके संघर्ष में नेतृत्त्व देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया[1]।

राल्फ फाक्स

मार्क्स के चिन्तनों के गंभीर अध्येता राल्फ फाक्स ने मनुष्य की सत्ता पर विश्वास प्रकट किया[2]। उन्होंने कलाकृतियों को समाज की आर्थिक आवश्यकताओं तथा आर्थिक प्रक्रियाओं का प्रतिबिंब माना[3]। उनके लिये कला वह साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य यथार्थ से जूझता और उसे आत्मसात करता है[4]। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था में कलाकार की शोचनीय स्थिति का विशद विवेचन करते हुए उन्होंने बताया कि कलाकारों को अपने समय के क्रान्तिकारी संघर्षों से तटस्थ नहीं रहना चाहिये[5]। कलाकारों उन्होंने अपनी जनता को जानने और उनसे घनिष्ठ संबंध स्थापित करने का उपदेश दिया[6]। उनके अनुसार लेखक का कर्तव्य उपदेश देना नहीं वरन् जीवन का वास्तविक ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करना है। लेखक के लिये क्रान्तिकारी कल्पना और क्रान्तिकारी शैली उन्होंने आवश्यक मानी[7]। राल्फ फाक्स का साहित्य चिन्तन मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

---

1. Illusion and Reality - Chiotopher Caudwell, p.316
2. The Novel and the people - Ralf Fox, p.69
3. Works of art are merely a reflection of economic needs and economic processes;
   The Novel and the people - Ralf Fox, p.69
4. Art is one of the means by which man grapples with and assimilates reality. Ibid, p.76
5. The greatest writers are not men who are indifferent to the active life of their times. Ibid, p.169
6. Ibid, p.167
7. Ibid, p.180

एर्नस्ट फिशर

अंग्रेज़ी चिन्तक, साहित्यकार एर्नस्ट फिशर ने "कला की आवश्यकता" (Necessity of Art) शीर्षक कृति में कला के उद्भव, उसकी प्रकृति, उसके कार्य आदि के विषय में विस्तार से प्रतिपादन किया है। उन्होंने बताया कि कला मनुष्य मात्र की विशेष क्रिया है। इस कला के द्वारा मनुष्य संसार को पहचान सकता है और उसे बदल सकता है[1]। एक मरणशील समाज में सच्ची कला का दायित्व उस समाज के ह्रास को प्रतिबिंबित करना है। यही नहीं कला को दुनिया के परिवर्तन में सहायता भी देनी चाहिये[2]। पूंजीवादी और समाजवादी कला की तुलना में फिशर ने कहा कि समाजवादी कला का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य उसे अधिक विशिष्ट बनाता है[3]। कला के बारे में उन्होंने कहा कि समाज तथा मनुष्यता के लिये कला की आवश्यकता न केवल रही है, वरन् है और सदैव रहेगी[4]।

उपर्युक्त चिन्तकों के कला और साहित्य संबंधी मान्यताओं से मार्क्सवाद का साहित्य एवं कला पर प्रभाव स्पष्ट होता है।

वर्ग संघर्ष : साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में

भारत में मार्क्सवादी चिन्तनों का प्रवेश

मार्क्स के समाजवादी विचारों का प्रवेश भारत में सही तौर पर उस समय हुआ जब लेनिन के नेतृत्व की रूसी क्रान्ति की विजय हुई थी।

---

1. Art is almost as old as man, it is a form of work and work is an activity peculiar to man kind. The Necessity of Art - Ernest Fischer, p.15
2. In a decaying society art, if it is truthful, must also reflect decay. And unless it wants to break forthwith its social function art must show the world as changable and hep to change. Ibid, p.48
3. Ibid, p.214
4. Ibid, p.255

इस सफलता ने विश्व भर के मज़दूरों, किसानों और अन्य पीड़ित वर्ग को आकृष्ट किया। क्रान्ति की विजय से रूस में सर्वहारा वर्ग को शासकीय सत्ता प्राप्त हुआ। यह घटना दुनिया भर के श्रमिक वर्ग में आशा उत्पन्न कराने में पर्याप्त थी। इसने श्रमिकों को संघर्ष का प्रोत्साहन दिया। भारत में भी इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होने लगा। सन् 1930 के आसपास के इस समय भारतीय जनता आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तौर पर अस्वतंत्र थी। अंग्रेज़ साम्राज्यवादी शोषण में दबते भारतीयों के मन में स्वातंत्र्य की तीव्र इच्छा उत्पन्न होने लगी थी। पराधीनता से मुक्ति के लिये भारतीय जनता एकत्रित होकर संघर्ष कर रही थी। एक ओर देश की स्वतंत्रता के लिये राजनीक नेताओं द्वारा साम्राज्यवादी शक्ति पर संघर्ष हो रहा था तो दूसरी ओर देश का बहुसंख्यक शोषित जनवर्ग शोषण के विरुद्ध अपने अधिकारों के लिये लड रहा था। शोषण के विरुद्ध क्रान्ति का आह्वान करनेवाले मार्क्सवादी विचारों से लोगों का आकर्षण इस समय सहज ही था। इस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के सिलसिले में ही भारत में समाजवादी आदर्शों का प्रचार हुआ था।

देश की राजनीतिक सामाजिक गतिविधियों ने तत्कालीन साहित्य को भी प्रभावित किया। मार्क्सवादी आदर्शों का आविर्भाव साहित्य जगत में भी हुआ। युगीन यथार्थ ने साहित्यकारों को जनजीवन से निकट संबंध स्थापित करने प्रेरणा दी। इस प्रकार युग सत्य को अभि-व्यक्त करनेवाले, समाजवादी विचारों से ओत प्रोत साहित्य प्रगतिवादी साहित्य के नाम से प्रचलित हो गया। इस साहित्य का सैद्धान्तिक पक्ष मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित था।

भारत में मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित साहित्य का उद्भव और प्रगतिशील आन्दोलन

मार्क्सवादी सिद्धान्तों ने भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों को बहुत अधिक प्रभावित किया । यह प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में स्पष्ट दिखायी देने लगा । हिन्दी साहित्य में भी मार्क्सवादी आदर्शों का आविर्भाव इन्हीं परिस्थितियों की देन है । साहित्य में इन विचारों का व्यापक प्रचार प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से हुई थी । यूरोप में समाजवादी विचारों से प्रभावित कुछ साहित्यकारों ने मिलकर सन् 1935 में प्रगतिशील लेखकों का एक संगठन आयोजित किया जो "प्रगतिशील लेखक संघ" के नाम से जाना जाने लगा । इसका प्रथम अधिवेशन पेरिस में अंग्रेज़ी उपन्यासकार इ॰एम॰फास्टर के सभापतित्व में संपन्न हुआ ।

यूरोप के प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन ने भारतीय साहित्य को भी प्रभावित किया । यहाँ के कुछ प्रबुद्ध युवा साहित्यकारों और विद्यार्थियों ने भारत में भी ऐसे एक संघ का गठन करने का निश्चय किया । इनमें मुल्कराज आनंद, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य, इकबाल सिंह, डॉ॰ ज्योति घोष आदि प्रमुख है । इनके श्रम से भारत में भी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई । सन् 1935 में प्रकाशित संघ के घोषणा पत्र में इस संगठन के जन्म की ऐतिहासिक अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया ।

प्रगतिशील लेखकों के इस संगठन का प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में लखनऊ में हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार प्रेमचन्द की अध्यक्षता में संपन्न हुआ ।

इस अधिवेशन में प्रेमचन्द ने साहित्यकारों को समाजवादी विचारधारा से नया आलोक ग्रहण करने का सलाह दिया। नैराश्य और अकर्मण्यता को प्रश्रय देनेवाले साहित्य का विरोध किया।[1] प्रगतिशीलता का निर्धारण करके उन्होंने बताया "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करें, सुलाये नहीं"[2]।

भारत में प्रगतिशील लेखक संघ कलकत्ता, दिल्ली, बंबई के सम्मेलनों से होकर अधिकाधिक विकसित होता गया। रवीन्द्रनाथ टागोर, मुल्कराज आनंद जैसे साहित्यकारों ने इनके अधिवेशनों में भाग लिये और साहित्य संबंधी अपने विचार प्रकट किये।

प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन की अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। प्रगतिशील लेखकों ने ही पहले पहल साहित्य के उद्देश्य के बारे में विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया था। उन्होंने साहित्य को जनसाधारण के लिये, उसकी प्रगति के लिये स्वीकार किया। निराशा, पराजय अनास्था से पूर्ण साहित्य के स्थान पर सजीव, आशावादी साहित्य की सृष्टि का आह्वान उन्होंने किया और स्वयं ऐसी कृतियों की रचना करके समाज को नयी स्फूर्ति प्रदान की।

भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ ने जहाँ एक ओर साहित्य जगत में नयी मान्यताओं का सूत्रपात किया, वहाँ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के हेतु उसने अपने आन्दोलन को

---

1. साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ -25
2. वही

विविध क्षेत्रों में प्रसारित किया और उनके लिये अनेक समितियाँ बनायी जिनका कार्य अपने अपने क्षेत्र में व्यापक साहित्यिक सांस्कृतिक उपलब्धि करना था।[1]

प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन ने साहित्य को कोरी भावुकता से निकालकर उसे बौद्धिक आधार प्रदान किया। इसने यह स्पष्ट कर दिया कि साहित्य का संबंध सामाजिक विकास से है और उसकी कसौटी समाज या सामाजिक जीवन है। इस प्रकार प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन ने साहित्य के मूल्यांकन के लिये समाजवादी आदर्शों से प्रभावित नये आधारों को जन्म दिया।

<u>हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी चेतना की झलक</u>

सन् 1935 के आस पास विकसित प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन हिन्दी की विभिन्न साहित्यिक विधाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़कर आगे बढा। कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना जैसे गद्य और पद्य के सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील विचारों का खूब प्रचार और प्रसार हुआ।

प्रगतिवादी साहित्य की सबसे महान विशेषता काल्पनिकता से यथार्थता की ओर उन्मुख होना है। प्रगतिवादी साहित्य ने लेखकों को कल्पना की वायवी दुनिया से नीचे धरती पर उतारकर यहाँ की वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित किया। छायावादी

---

1. नया हिन्दी काव्य - डॉ॰ शिवकुमार मिश्र, पृ॰35

कवि सुमित्रानंदन पन्त ने प्रगतिवादी साहित्य आन्दोलन के प्रभाव से साहित्य जगत में आये परिवर्तन का विशद वर्णन किया है[1]।

प्रगतिवादी लेखकों की दृष्टि में वही साहित्य सफल है जो शोषित मानव की पीडा, वेदना तथा उनके प्रति किये गये शोषण और अन्याय का पर्दाफाश कर सके और मेहनतकश मज़दूरों की आवाज़ बुलन्द कर सके[2]। जब सामान्य की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रगतिवादी साहित्य कला कला के लिये नहीं, बल्कि कला जनता के लिये वाद पर विश्वास करता है।

प्रगतिवादी साहित्यिक मान्यताओं के आधार पर हिन्दी कविता के क्षेत्र में निराला, सुमित्रानंदन पन्त आदि में इस परंपरा का आरंभिक रूप दिखायी देता है तो दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीन, गिरिजा कुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि की रचनाओं में इसका विकसित एवं प्रौढ़ रूप देखने को मिलता है।

गद्य विधा में कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि क्षेत्रों में प्रगतिवादी साहित्य परंपरा का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में इसका आरंभ दृष्टव्य है। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव, नागार्जुन आदि ने प्रेमचन्द की परंपरा को

---

1. अब काव्य की सामग्री स्वप्नों और स्वर्णिम कल्पना से नहीं पर जीवन की कठोर धरती से ही ग्रहण करनी चाहिये और इस प्रकार हमें युग जीवन में जो चुनौती दी है, उसे हमें स्वीकार करना चाहिये। अर्थात् हमें अब अपने कल्पित सुख स्वप्नों से पृथक ऐसे काव्य का सृजन करना चाहिये, जो वर्तमान जीवन की आवश्यकता की पूर्ति करें।
सुमित्रानंदन पंत - रूपाभ - प्रगतिवादी काव्य - कृष्णलाल हंस से उद्धृत।
पृ - 109

संपन्न बनाया । प्रगतिवादी आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त, अमृतराय, डॉ० रामविलास शर्मा आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है । साहित्य जगत के इन प्रतिभावान व्यक्तियों ने हिन्दी के प्रगतिवादी साहित्य को अपने उद्देश्य की चरम सीमा पर पहुँचा दिया ।

निष्कर्ष

मार्क्सवादी विचारों ने मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया । आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों पर मार्क्सवाद का प्रभाव अतिशय परिवर्तनों का पथ प्र दर्शन किया । साहित्यिक क्षेत्र भी मार्क्सवादी प्रभाव से दूर नहीं रहा । मार्क्सवादी विचारों ने साहित्य जगत में एक नयी धारा को जन्म दिया । इन चिन्तनों से ओत प्रोत साहित्य प्रगतिवादी साहित्य है जो अपनी पूर्ववर्ती साहित्य की अपेक्षा अनेक विशेषताओं से युक्त है ।

प्रगतिवादी साहित्य की सबसे प्रमुख उपलब्धि साहित्य का भौतिक, वास्तविक आधार मानना है । इसने वैयक्तिकता से अधिक सामाजिकता को प्रधानता दिया । इसकी और एक विशेषता यह है कि इसने अतीत को छोड़कर वर्तमान से संबंध स्थापित किया । युगीन परि-स्थितियों से प्रगतिवाद कभी मुँह नहीं मोड़ता । अपने समय की विभिन्न समस्याओं को प्रगतिवादी साहित्यकार अंकित करते रहे ।

वर्ग चेतना की जागृति मार्क्सवादी साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण देन है । यह साहित्य अपने समय के बुर्जुआ व्यवस्था के विरुद्ध श्रमिकों का साथ देता है । समाज के शोषक वर्ग का उन्मूलन करके शोषित निम्न वर्ग

को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रगतिवादी साहित्य को प्राप्त है । सामाजिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान इस साहित्य की परम और प्रमुख उपलब्धि है ।

शोषण और सामाजिक विषमता का यथार्थ रूप प्रस्तुत करके, वर्ग संघर्ष का आह्वान बुलन्द करके, वर्गहीन समाज की आवश्यकता उद्घोषित करनेवाला प्रगतिवादी साहित्य वास्तव में अब तक के साहित्य के इतिहास में अपना अलग विशिष्ट स्थान रखता है ।

&&&&&&&&&&&&&&&

तीसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष

तीसरा अध्याय

हिन्दी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष

मनुष्य अपनी वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं से संघर्षरत रहकर अपने तथा संपूर्ण समाज का विकास करके आगे बढ़ता है । समय समय पर हुए जीवन संघर्ष और तद्वारा प्राप्त विकास यानी प्रगति का प्रमाण इतिहास के समान साहित्य में भी समाहृत है । हिन्दी के उपन्यास साहित्य में समाज की व्यापक समस्याओं के संदर्भ में व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह के जीवन संघर्षों का, जो समकालीन आर्थिक और राजनीतिक विषमताओं तथा अनाचारों की परिणति है, चित्रण हुआ है । जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर चलनेवाले इन उपन्यासों में समाज का जीता जागता वास्तविक चित्र देखने को मिलता है । ये समस्यायें एक हद तक व्यक्ति से संश्लिष्ट होते हुए भी समाज की समस्यायें हैं जो जनसाधारण की प्रगति में बाधक हैं । हिन्दी उपन्यास विधा में इस जीवन यथार्थ की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति प्रेमचन्द द्वारा संपन्न हुई । वस्तुत: वे ही हिन्दी के प्रथम आधुनिक सामाजिक उपन्यासकार हैं[1] ।

---

1. समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - अज्ञेय, पृ.16

प्रेमचन्द युगस्रष्टा रचनाकार थे । वस्तुगत और शिल्पगत नवीनता को अपनाकर उन्होंने उपन्यास साहित्य को प्रौढ रूप दिया । अपने समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों का स्पष्ट प्रभाव प्रेमचन्द की रचनाओं में दृष्टव्य है । अस्वतंत्र भारत में अंग्रेज़ शासकों द्वारा यहाँ की विराट संपत्ति का शोषण हो रहा था । गरीबी और भुखमरी बढती जा रही थी । देश के भूस्वामियों को आश्रय देकर अंग्रेज़ सरकार गरीब किसानों के शोषण में उन्हें सहायता दे रही थी । देश का राजनीतिक क्षेत्र हर दिन संघर्षमय होता जा रहा था । गांधीजी के नेतृत्व में देश की स्वतंत्रता प्राप्ति केलिये अहिंसात्मक आन्दोलन चालू था । इसी समय श्रमिकों के हितैषी मार्क्सवादी आदर्शों का बोलबाला भारत में होने लगा । शोषण और सामाजिक असमानता के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष घोषित करनेवाले मार्क्सवादी विचारों ने प्रेमचन्द को एकदम आकर्षित किया । शोषण, वैषम्यहीन सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने की उनकी अदम्य इच्छा अनेक उपन्यासों में अभिव्यंजित हुई ।

प्रेमचन्द आदर्शवादी विचारों के पोषक थे । अपने साहित्यिक जीवन के प्रारंभ में युगीन परिवेश के कारण उनमें गांधीवादी विचारों का प्रभाव अवश्य था । लेकिन धीरे धीरे गांधीवादी आदर्शवाद, यथार्थवाद में परिवर्तित हो गया । "प्रेमाश्रम" उपन्यास में आदर्शवादिता से यथार्थ की ओर प्रेमचन्द की दिग्विजय शुरू होती दिखायी पडती है । "रंगभूमि", "कर्मभूमि" से होकर "गोदान" तक पहुँचते आदर्शवादी प्रेमचन्द पूर्णतया यथार्थवादी बन गये । यहाँ प्रेमचन्द सत्याग्रह से ज्यादा सक्रिया क्रान्ति का पक्ष लेते हैं । यही नहीं अपने इन परवर्ती उपन्यासों में वे देश की सर्वांगीण मुक्ति के लिये सशस्त्र क्रान्ति को अनिवार्य मानने लगे ।

मार्क्स के समाजवादी विचारों से प्रेमचन्द का लगाव "प्रेमाश्रम" से शुरू होता है । अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद और देशी ज़मीन्दारों के शोषण के बीच दबते, सिसकते, संघर्ष करते गरीब कृषकों के जीवन का यथार्थ अंकन इसमें हुआ है । भारतीय कृषक जीवन और उसकी समस्याओं को विस्तार से प्रस्तुत करनेवाला यह प्रथम उपन्यास है[1] ।

अंग्रेज़ी ज़माने के हाकिम और ज़मीन्दार गांव के किसानों को खूब आतंकित करते हैं । शासक वर्ग और उनके कर्मचारी गरीब कृषकों के परिश्रम की कमाई लूटते हैं, उन्हें अपमानित करते हैं और ज़रा सा विरोध पर सख्त दण्ड देते हैं । यही नहीं झूठे मुकदमों में फंसाकर गरीब किसानों के जीवन को संकटमय बना देते हैं । तत्कालीन अंग्रेज़ शासक गांव के संपन्नों के साथ देते हैं जिससे शोषण और अत्याचार दुगुना हो जाता है । इससे साम्राज्यवादी शोषण के शिकार कृषक मालगुज़ारी, कर्ज आदि के नाम पर ज़मीन्दारों और साहूकारों द्वारा भी खूब सताये जाते हैं ।

लखनपुर गांव के राय कमलानंद, ज्ञानशंकर जैसे संपन्न ज़मीन्दार अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये गरीब किसानों को खूब लूटते है । ये किसानों की भूमि की बेदखली करके इज़ाफ़ा लगान की जबरदस्ती करके उन्हें संकट में डालते हैं । लेकिन गांव का कृषक वर्ग ज़मीन्दारी अन्याय से पूर्णतया अनभिज्ञ नहीं । बलराज, मनोहर, सुक्खू चौधरी जैसे मेहनती कृषक अत्याचारियों के विरूद्ध खड़े होते हैं । अपने हक के प्रति सचेत, श्रमिक राज्य के अभिलाषी ये किसान अन्याय के सामने चुप्पी नहीं साधते[2] ।

1· प्रेमचन्द : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन - जनेश्वर वर्मा, पृ·160

2· ज़मीन्दार कोई बादशाह नहीं, चाहे जितनी जबरदस्ती करें और हम मुँह नहीं खोले - प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, पृ·

ज़मीन्दारी अत्याचार के विरुद्ध कृषक वर्ग संगठित होता है । श्रमिकों की इस संगठित शक्ति से मालिक वर्ग भी सतर्क रहता है । श्रमिकों को सताने के लिये जमीन्दार गाँव के तालाब का पानी उनके लिये बन्द रखता है, जिसपर हज़ारों वर्षों से गाँव के किसानों का अधिकार था । किसान अपने इस पुराने अधिकार से वंचित रहना नहीं चाहते । वे एकत्रित होकर इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । सुक्खू चौधरी ज़मीन्दारों को ललकारता है "किसी को मजाल है जो तालाब का पानी रोके ज़मीन्दार नहीं, ब्रह्मा आकर कहें तब भी इसे न छोड़ेंगी, चाहे इसके पीछे सरबस ही लुट जाय ।"[1] सुक्खू अत्याचार का विरोध अहिंसा से नहीं, हिंसा के मार्ग से करना चाहता है । ज़मीन्दार का कारिन्दा फैज़ू की उद्दण्डता जब असह्य हो जाता है तो वह हथियार उठाने से भी नहीं हिचकता[2] । कृषक स्त्रियां भी तत्कालीन निम्नवर्गीय जागरण से सचेत है । कृषक पत्नी बिलासी तत्कालीन नारी जागरण का सशक्त प्रतीक है ।

ज़मीन्दारी खानदान का प्रेमशंकर प्रगतिपूर्ण विचारोंवाला युवक है जो पूंजी मात्र के बल पर समाज के बहुसंख्यक गरीब जनता पर अधिकार जमानेवाली जमीन्दारी प्रथा का डटकर विरोध करता है । उसके अनुसार भूमि का यथार्थ मालिक उसमें काम करनेवाला है[3] । शोषण का विरोध करके वह कहता है "मनुष्य को अपनी कमाई खानी चाहिये । यही प्राकृतिक नियम है । किसी को यह अधिकार नहीं कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवनवृत्ति का आधार बनाये ।"[4] शोषणहीन आदर्श समाज का

---

1. प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, पृ. 175
2. वही, पृ. 175
3. "भूमि उसकी है, जो उसे जोते" - प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, पृ. 192-193
4. वही , पृ. 150

स्वप्नद्रष्टा प्रेमशंकर हाजीपुर गाँव में सहकारिता के आधार पर नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करके अपने स्वप्न का साक्षात्कार करता है।[1]

सामन्ती व्यवस्था की समाप्ति और कृषक जागरण की पृष्ठभूमि में लिखे इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने तत्कालीन कृषक संगठन और संघर्ष की सफलता की ओर संकेत किया है ।

रंगभूमि

"रंगभूमि" में प्रेमचन्द ने ह्रासोन्मुख सामन्तवाद से औद्योगिक पूंजीवाद की ओर संक्रमण करते हुए भारतीय समाज का चित्र प्रस्तुत किया है । ग्रामीण संस्कृति का नाश करती हुई उत्तरोत्तर बढ़नेवाली औद्योगीकरण प्रक्रिया पर प्रेमचन्द का विरोध सूरदास के द्वारा व्यक्त हुआ है ।

अर्थलोभी जान सेवक पाण्डेपुर गाँव में एक सिगरेट का कारखाना खोलने का प्रयास करता है । अपनी स्वार्थ पूर्ति में वह इस समाजहित का रंग चढ़ाता है कि यह कारखाना अनेकों का जीविकोपार्जन होगा । स्वदेशी व्यापार की रक्षा की दुहाई देनेवाला जान वास्तव में ब्रिटीश साम्राज्यवाद का हामी है और वह भारत में अंग्रेज़ शासन का आकांक्षी भी है । पाण्डेपुर बस्ती उजाड़ने में वह ब्रिटीश दमनकारी नीति का आश्रय लेता है । पूंजीपतियों की सम्मिलित शक्ति और ब्रिटीश सरकार पर दबाव के विश्वास से वह अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है ।

---

1. "भूमि उसकी है, जो उसे जोते" - प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, पृ. 199

तत्कालीन साम्राज्यवादी शासन में भारतीय जनता बहुत कष्ट झेलती रही । ब्रिटीश राज में अंग्रेज़ हाकिमों की इच्छा ही नियम है[1] । ब्रिटीश शासन नीति का मर्म तो दमन और आतंक है । अंग्रेज़ी नौकरशाही के भ्रष्टाचार और उनकी न्याय व्यवस्था में गरीबों का गला घोंटा जाता है[2] । संपन्नों को अधिकाधिक पनपने के अवसर देनेवाली इस शासन रीति में राजा महेन्द्र कुमार सिंह जैसे संपन्न के हर हित की रक्षा होती है[3] ।

एक ओर अंग्रेज़ी तानाशाही देश में उसका प्रचण्ड रूप लेती है तो दूसरी ओर इसके विरुद्ध जन संघर्ष की लहरें भी उठने लगती हैं । "रंगभूमि" का सूरदास अन्यायपूर्ण अंग्रेज़ी शासन और उसकी छाया में, उसके आशीर्वाद से आगे बढनेवाली पूंजीवादी सभ्यता के विरुद्ध विद्रोह करने पर तुला है । देश व्यापी औद्योगीकरण का विरोधी सूरदास गांव में कारखाना खोलने के लिये जान सेवक के हाथ अपनी भूमि सौंपने में तैयार नहीं होता । कल कारखानों की स्थापना से निष्कलंक ग्रामीण जीवन को कलुषित बनाने के उद्यम का वह विरोध करता है । सरकारी हुक्म मानकर ज़मीन खाली करने के बदले उसके लिये अन्तिम दम तक संघर्षरत रहने को वह ठान लेता है । अपने निश्चय पर अटल रहकर वह अंग्रेज़ी सरकार को चुनौती देता है । अन्याय के विरुद्ध हुए इस संघर्ष में सूरदास अकेला नहीं, गांव के अनेक जनसत्तावादी भी उसका साथ देते हैं । अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वे संगठित होते हैं। लेकिन साम्राज्यवादी शक्ति के सामने गरीब वर्ग अधिक समय तक नहीं टिक पाता । फिर भी निम्न, निरीह, गरीब, ग्रामीणों की मुक्ति के लिये संघर्षरत सूरदास अन्त तक विजय की आकांक्षा करता है । गोली खाकर नीचे गिरते वक्त वह अपने साथियों को धैर्य प्रदान करके निम्न वर्ग की विजय की

---

1. "हमीं सरकार है, हमने कानून बनाया है, हम को सब अख्तियार है"
   - रंगभूमि - प्रेमचन्द, पृ. 107

2. वही, पृ.7

3. वही, पृ.107-108

आशा प्रकट करता है।[1] "रंगभूमि" का सूरदास जनता के मुक्ति संघर्ष में उन्हें प्रेरणा देनेवाला उनके साथ खडे होकर उनके लिये मर मिटनेवाला है। यद्यपि अधिकारी वर्ग के द्वारा उसकी मृत्यु हो जाती है। फिर भी जिस सामाजिक हलचल का प्रारंभ उसने किया था, संघर्ष की जो ज्वाला उसने प्रज्वलित की थी, वह कभी बुझता नहीं। वह पहले से अधिक व्यापक बनता है, ज़ोर पकड़ता है। सूरदास का उपर्युक्त अन्तिम वाक्य इसकी भविष्यवाणी है। "रंगभूमि" जनसंघर्ष की विजय पर प्रेमचन्द के अटूट विश्वास का सशक्त प्रमाण है।

कर्मभूमि

कर्मभूमि में प्रेमचन्द सन् 1921 से लेकर सन् 1930 तक के भारतीय समाज की विभिन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निम्नवर्गीय जागरण और संघर्ष का समर्थन करते हैं।

कर्मभूमि में प्रतिपादित मुख्य समस्या गरीब, मेहनतकश किसानों की समस्या है। गाँव के गरीब किसान वास्तव में जमीन्दार के लगान चुकाने के लिये ही जीवित रहते हैं। देशव्यापी आर्थिक मन्दी और तज्जन्य विपन्नता से उनकी स्थिति और भी बिगड गयी है। इस दुरवस्था में भी जमीन्दार के कारिन्दे लगान वसूली के लिये उनपर ज़ोर ज़बरदस्ती करते रहते हैं। एक एक दाना बेचकर, भूसे का एक एक तिनका शेष न रखने पर भी लगान चुकाने में वे असमर्थ हैं। सामाजिक असमानता इतनी भीषण हो जाती है कि जहाँ किसान हड्डीतोड मेहनत के बावजूद भी लगान की बोझ से पीड़ित हैं, वहाँ उनके रक्त चूसकर संपन्न जमीन्दारों के यहाँ दावतें आयोजित की जाती हैं।[2]

1. "एक न एक दिन हमारी जीत होगी, ज़रूर होगी"
   - रंगभूमि - प्रेमचन्द, पृ. 226
2. कर्मभूमि - प्रेमचन्द, पृ. 242

असमानता केवल अर्थ तक सीमित नहीं, धार्मिक क्षेत्र में भी यह प्रकट है । हरिजनों के पैसे से मन्दिरों में आडंबरपूर्ण त्योहार मनाये जाते हैं । फिर भी गूदड जैसे निम्न जातिवालों के सामने मन्दिर का द्वार खुलता नहीं । ठाकुरद्वारे में दूर तक भी उन्हें प्रवेश निषिद्ध है । ईश्वर निम्नवर्गीय के लिये अप्राप्य है ।

आर्थिक, सामाजिक असमानता का दबाव पीड़ित जनवर्ग आगे सह नहीं पाता । स्वामी आत्मानंद, अमरकान्त आदि के द्वारा अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह में उन्हें प्रेरणा मिलती है । वामपंथी विचारों से ओतप्रोत स्वामी आत्मानंद किसान कार्यकर्ता है । उच्चवर्गीय अमरकान्त भी प्रगतिशील है जो अपने वर्ग द्वारा गरीबों पर किये जानेवाले अत्याचारों का समर्थन नहीं कर पाता । अपने पिता द्वारा सूद, ब्याज आदि के नाम पर[1] गरीब किसानों की लूट में कमायी सम्पत्ति से भी वह घृणा करता है । ये दोनों किसानों की लगान-समस्या को लेकर आगे बढ़ते हैं । आत्मानंद किसानों को उत्साहित रखने की कोशिश करता है । किसान संगठित होकर लगान न देने के निश्चय पर अटल रहते हैं ।[2] निम्नवर्गीय स्त्रियाँ भी जागृत होकर संघर्ष में सहयोग देती हैं । सलोनी अपने अधिकारों के प्रति सजग नारी है जो उससे वंचित रहना नहीं चाहती । मजूरी और बीज के अभाव में खेत छोड़ने के ज़िक्र पर उसका विद्रोह यों भभक उठता है "खेत क्यों छोड़ें ? बाप दादा की किसानी है । उसे नहीं छोड़ सकते[3] । उसके इन शब्दों में संपूर्ण निम्न वर्ग का विरोध निहित है ।

---

1. कर्मभूमि - प्रेमचन्द, पृ. 17
2. वही , पृ. 31 ।
3. वही, पृ. 295

निम्नवर्गीय के संघर्ष का सक्रिय रूप उपन्यास में उभारा गया है । ठाकुरद्वारे में जूत रखने के स्थान पर बैठनेवाले अछूत व्यक्ति के कारण सारा मन्दिर अपवित्र होने का कारण बताकर धर्म का ठेकेदार पुरोहित उसे जूते से मारता है तो संघर्ष फूट निकलता है । उत्तेजित हरिजन संगठित होकर मन्दिर-द्वार पर खडे होते हैं । उन्हें हटाने के प्रयास में पुलीस गोलियां चलाती है । लेकिन रक्त की नदी बहने पर भी लोग अपने लक्ष्य से नहीं हटते । अन्त में अपने सामने खुले द्वार से वे मन्दिर में प्रवेश करते हैं।[1] अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये उच्चवर्ग पर गरीब अछूत जनवर्ग का संघर्ष और उनकी विजय निश्चय ही उस वर्ग की प्रगति की सूचना है । यह मानव प्रगति का ही एक महत्त्वपूर्ण कदम है । "कर्मभूमि" मानव की इस विजय को उद्घोषित करती है ।

गोदान

"गोदान" में प्रेमचन्द की प्रगतिवादिता उसकी चरमसीमा पर पहुंचते दिखायी पडती है । यहां आकर वे सुधारवाद और आदर्शवाद से पूर्णतया मुक्त है । "गोदान" शोषणग्रस्त भारतीय किसान के संघर्ष की गाथा है ।

भारतीय किसान अपने कठिन परिश्रम के बावजूद भी भूखों मरने के लिये विवश है । होरी ऐसा किसान है जो भरपेट मोटे झोटे अनाज के लिये खूब मेहनत करता है गरीबी ने होरी के जीवन को नरकतुल्य बनाया है । बत्तीस साल के अन्दर ही उसकी पत्नी धनिया जीवन के कठोरतम

---

1. कर्मभूमि - प्रेमचन्द, पृ. 107

अनुभवों से जूझ चुकी है । दावा दारु और भोजन के अभाव में उसकी तीन सन्तान मृत्यु प्राप्त कर चुकी थीं । अपना रक्त बहाकर बड़ों के घर भराने में विवश होरी जैसे कृषकों की स्थिति यह है तो उनके पसीने पर पलनेवाले जमीन्दार रायसाहब का वर्ग मौज मस्ती में रहता है ।

होरी के गाँव का कृषक वर्ग चारों ओर से शोषित है । लगान के नाम पर जमीन्दार उन्हें खूब सताता है । इन गरीबों के शोषण में उन्हें अँग्रेज़ सरकार की भी सहायता मिलती है । अपनी ऐश आराम के लिये ज़मीन्दार किसानों से अधिकाधिक लगान वसूल करता है । किसान पेट तन काटकर, एक एक कौड़ी दाँत से पकड़कर खर्च करने पर भी लगान पूर्णतया चुका नहीं पाता । किसानों की ज़िन्दगी चौपट करने में बनिये महाजनों का काम कम महत्वपूर्ण नहीं है । लगान वसूली, पंचों द्वारा बाँधे जानेवाले जुर्मानों को चुकाने के लिये पैसे देनेवाले महाजन सूद के नाम पर गरीब कृषकों का खूब शोषण करते हैं । कर्ज के बोझ से अक्सर ये किसान अपनी भूमि बेचकर मज़दूर बन जाते हैं ।

गाँव के ज़मीन्दारी शोषण का ही नहीं शहर के पूंजीपति शोषण का भी विकृत रूप गोदान में चित्रित है । शहर के शक्कर मिल का मालिक खन्ना साहब अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये बहुसंख्यक मज़दूरों के श्रम का शोषण करता है । पूंजीपति को मुनाफा कमाने का साधन मज़दूरों की जिन्दगी, गंदगी और गरीबी में गुज़रता है [2] ।

---

1. गोदान - प्रेमचन्द, पृ. 7
2. वही, पृ. 240

"गोदान" की श्रमिक जनता वर्ग वैषम्य से उद्भूत असन्तोष और विद्रोह की चेतना से अभिभूत है। धनिया ऐसी विद्रोही नारी है। अपने जीवन के तीखे अनुभव उसे सामाजिक व्यवस्था से विद्रोह करने केलिए प्रेरित करते हैं। इसीलिये अपने जीवन की यातनाओं के कारणभूत उच्चवर्ग की खुशामदी करनेवाले पति की रीति का वह खुलकर विरोध प्रकट करती है[1]। होरी का पुत्र गोबर ज़मीन्दार के सभी अन्यायों को चुप नहीं सहता। कर्ज के रुपये वापस न देने पर दातादीन होरी को बन्धुआ मज़दूर बनाता है तो गोबर आग बबूला हो जाता है। विद्वेष और घृणा से वह कहता है "उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखा है। जब तक इच्छा थी काम किया। अब नहीं इच्छा है, नहीं करेंगे। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता[2]।" गोबर का यह वाक्य गुलामी के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग के जागरण का परिचायक है। यह वास्तव में उनके विद्रोह की शुरुआत है। होरी का भाई शोभा में भी संघर्ष की भावना सशक्त है। झिंगुरी सिंह के पाँव पड़ने के उपदेश देनेवाले होरी को वह शोषण से मुक्ति के लिये संघर्ष की सलाह दे कर कहता है "कठघरे में फँसे रहना कायरता है। फन्दा और जकड़ जाय, बला से, पर गला छुड़ाने के लिये जोर तो लगाना ही पड़ेगा[3]।"

"गोदान" का मज़दूर वर्ग शोषक पूँजीपतियों के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्षरत है। कम वेतन देकर मज़दूरों के श्रम का शोषण करनेवाले खन्ना साहब से मज़दूर वर्ग हड़ताल करके बदला लेता है[4]।

---

1. "जिस गृहस्थी में मेहनत के बाद भरपेट रोटियाँ भी न मिले, उसके लिये ज़मीन्दारों की इतनी खुशामद क्यों? xx xx xx ज़मीन्दार के खेत जोतते हैं तो वह अपना लगान तो लेगा ही"।
गोदान - प्रेमचन्द, पृ· 7
2. वही, पृ· 183
3. वही, पृ· 153
4. वही, पृ· 238

निम्न वर्ग की विराट शक्ति के सामने उच्चवर्ग का सिंहासन हिलने लगा है । आसन्न भविष्य में ही समाज में संपन्न वर्ग का अधिकार समाप्त करके मेहनत जनवर्ग का राज्य आनेवाला है । "गोदान" इस युग सत्य का उद्घाटन करता है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द से प्रेरणा पाकर, उनके दृष्टिकोण से प्रभावित होकर, उनके दिखाये मार्ग पर अग्रसर होनेवाले उपन्यासकारों ने सामाजिक असमानता को अपनी रचनाओं का मुख्य प्रतिपाद्य बनाया । प्रेमचन्द-परवर्ती इन उपन्यासकारों की अधिकांश रचनाओं में सामन्तवादी और पूंजीवादी दोनों सामाजिक व्यवस्थाओं की अधीनता में दबकर इनसे संघर्ष करनेवाले जनसाधारण का सजीव चित्र प्रस्तुत है । प्रेमचन्द के बाद के इन रचनाकारों ने सामन्तीय या पूंजीवादी शोषण को अपनी कृतियों का आधार बनाया । मूलत: इन सभी ने युगीन मांग के अनुरूप शोषित वर्ग का पक्षपाती रहकर सामाजिक यथार्थ का सही रूप अंकित किया ।

सामायिक परिवेश

सन् 1936 के बाद भारतीय समाज विभिन्न क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का साक्षी रहा । देश के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्तरों में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी दिये । विश्वव्यापी परिवर्तनों का असर भारतीय समाज पर भी पड़ा । इग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति से प्रेरित होकर भारत भी त्वरित गति से औद्योगीकरण की ओर उन्मुख हो रही थी । देशव्यापी औद्योगीकरण ने महानगरों को जन्म दिया । शोषण अब गांवों तक सीमित नहीं रहा । उसका स्वरूप नगरों में भी दिखायी

देने लगा । गाँवों के ज़मीन्दारी शोषण ने नगरों में आकर पूँजीवादी शोषण का रूप ग्रहण कर लिया । स्वतंत्रता आन्दोलन, द्वितीय महायुद्ध, स्वतंत्रता प्राप्ति जैसे देशी व विदेशी घटनाओं के प्रभाव से भारत के राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में हलचल मच रही थी । इसी सिलसिले में मार्क्सवादी चिन्तनों की हवा यहाँ पर्याप्त ज़ोर पकड़ चुकी थी । बंगाल के अकाल जैसे महासंकटों के अवसर गाँवों के तत्कालीन शासक कांग्रेसी सत्ताधारियों के अत्याचार और ज़मीन्दारों के साथ होकर उनकी जनविरुद्ध करतूतियों ने ग्रामीण जनता को भी समाजवादी आदर्शों केअनुयायी बना दिया । शोषण से मुक्ति, समानता और स्वातंत्र्य का आह्वान करनेवाले मार्क्सवादी विचारों से यहाँ का श्रमिक वर्ग आकृष्ट हो गया । इस विचारधारा से प्रभावित श्रमिक वर्ग द्वारा यहाँ हड़तालें हुई, जन आन्दोलन हुए । साहित्यिक प्रतिभावान भी इस नवीन जागरण से मुँह मोड़ नहीं सके । हिन्दी की औपन्यासिक विधा में प्रेमचन्द के बाद यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन आदि की रचनाओं में जन जागरण और तज्जन्य संघर्ष का सक्रिय पहलू दिखायी देता है । इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, फणीश्वरनाथ रेणु आदि के उपन्यासों में भी निम्न वर्गीय संगठन और संघर्ष का स्वर यत्र तत्र सुनायी पड़ा ।

यशपाल

मार्क्स की विचारधारा से पूरी तरह प्रभाव ग्रहण करके सामाजिक जीवन की विविधता, विषमता और वर्गीय संघर्ष को चित्रित करनेवालों में यशपाल अग्रगण्य है । सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने मार्क्सीय चिन्तनों को आधार बनाया । उनके उपन्यासों में पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक विषमता का चित्रण अधिक हुआ है ।

"दादा कामरेड", "पार्टी कामरेड", "देशद्रोही", "मनुष्य के रूप", "झूठा सच" आदि उपन्यासोंमें विभिन्न सामाजिक समस्याओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने शोषण, सामाजिक, आर्थिक विषमता, वर्गीय जागरण और वर्ग संघर्ष के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है ।

दादा कामरेड (1941)

सन् 1930 के आसपास की राजनीतिक सामाजिक गतिविधियों की पृष्ठभूमि में लिखे इस उपन्यास में यशपाल तत्कालीन श्रमिक जागरण की ओर संकेत करते हैं । उस समय आतंकवादी, क्रान्तिकारी और कांग्रेज़ी शक्तियां भारत के मुक्ति आन्दोलन में सक्रिय थी । इनमें क्रान्ति-कारियों ने आम जनता के साथ निकट संबंध स्थापित किया । स्वराज्य प्राप्ति के लिये भारत के क्रान्तिकारियों द्वारा किये गये संघर्ष दादा कामरेड का मुख्य विषय है ।

दादा, हरीश, अखिल, अली आदि क्रान्तिकारी युवक जनमुक्ति के लिये साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध खड़े होते हैं । उनका दृढ विश्वास है कि जनता के बीच रहकर उनके भी सहयोग से ही स्वतंत्रता प्राप्ति संभव होगी[1] । समाज के निम्नवर्गीय श्रमिकों की संगठित शक्ति पर अटल आस्था रखनेवाले ये क्रान्तिकारी उस वर्ग को अधिकाधिक संगठित करने का उपाय सोचते रहते हैं ।

---

1. दादा कामरेड - यशपाल, पृ. 50-51

आज़ादी के लिये लड़नेवाले कांग्रेज़ नेतृत्व देश के संपन्न पूंजीपतियों के हाथ का कठपुतला रह गया है । हज़ारों की संख्या चन्दे में देकर पूंजीपति वर्ग इसे अपने साथ रखता है । इस प्रकार साधारण श्रमिक जनता के उद्धार में प्रतिबद्ध कांग्रेज़ जनसंघर्ष के दबाव में पूंजीपतियों को सहायता दे रहा है । लेकिन इन प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने श्रमिक शक्ति क्षीण नहीं होती । अनेकानेक श्रमिक परिवारों को गरीबी में धकेलकर मुनाफा इकट्ठा करनेवाले पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध मज़दूर संगठित हो जाते हैं । हरीश और उसके साथियों के द्वारा अख्तर जैसा मज़दूर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो उठता है । उनका वर्ग बोध सुविधा भोगी संपन्न वर्ग के विरुद्ध संघर्ष लिए उन्हें प्रेरित करता है ।

हरीश के नेतृत्व का क्रान्तिकारी श्रमिक संगठन और संघर्ष में हर प्रकार का सहयोग देते हैं । मज़दूरों के बीच रहकर, उन्हें प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर पूंजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष के लिये उन्हें सुसज्जित करते हैं । फलत: मिलों में हड़ताल का आह्वान होता है । संपन्न पूंजीपति की बेटी शैल इस संघर्ष में अपने वर्गहित के विरुद्ध मज़दूरों का पक्ष लेती है । हड़ताल की विजय के लिये कुछ प्रगतिशील युवकों द्वारा किये गये डकैत का समर्थन करके वह कहती है "आज यदि कोई व्यक्ति किसी किसी के मकान से मुट्ठी भर आटा ले जाता है तो वह चोर है । किन्तु साधन विहीन श्रमिकों पर मुनाफे की चोरी करनेवाले लोग चोर नहीं ।"

पूंजीपति वर्ग को चुनौती देकर मज़दूरों का संघर्ष अधिकाधिक ज़ोर पकड़ता है । डेढ महीने के संघर्ष के सिलसिले में नेता लोग जुलूस निकालकर हड़तालियों की दु:ख गाथा जनसमक्ष पेश करते हैं, मार्क्सवादी विचार प्रधान ज़ोरदार भाषणों से जनता को प्रभावित करते हैं और मालिकों की

1\. दादा कामरेड - यशपाल, पृ. 141 - अपनी शक्ति का ज्ञान केवल हड़ताल के रूप में ही हो सकता है । इसके लिये पहले मज़दूरों, सब पेशों के मज़दूरों को उनके आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना, फिर उनके संयुक्त मोर्चे के हाथ में राजनैतिक शक्ति देना हमारी लाइन है ।

मालिकों की निष्ठुरता का परिचय भी देते हैं । इस प्रकार जनता में हड़ताल के प्रति सही बोध उत्पन्न कराने का प्रयत्न होता रहता है[1] । एक ओर संघर्ष उग्र रूप में प्रकट होता है तो दूसरी ओर उसे दबाने का प्रयास मालिकों द्वारा होता है । इसके लिये वे अनेक मार्ग खोजते हैं । हड़ताल को प्रेरणा देनेवाले हरीश पर झूठे मुकदमे अदा करके मज़दूरों की संगठित शक्ति को दुर्बल करने का प्रयास करते हैं । लेकिन संगठित श्रमिक शक्ति के सामने सब विफल हो जाते हैं । संघर्ष के सिलसिले में ही हरीश की मृत्यु हो जाती है । अन्तिम दम तक वह यही विश्वास प्रकट करता है कि एक न एक दिन बहुसंख्यक जनता को जीवन के अधिकारों से वंचित रखनेवाला न्याय का रूप अवश्य बदलेगा । हरीश की मृत्यु से संघर्ष एक नये मोड पर पहुंचता है और अन्त में विजय श्रमिकों की होती है[2] ।

संगठन की अनिवार्यता और संगठित संघर्ष से सामाजिक विषमता दूर करने का आह्वान इस उपन्यास में मुखरित है ।

देश द्रोही (1946)

सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा गया यह उपन्यास सर्वतोमुखी जीवन में मार्क्सवादी प्रभाव उद्घोषित करता है ।

तत्कालीन भारतीय समाज में असमानता चरम सीमा पर पहुंची दिखायी पड़ती है । गांव के गरीब किसानों का धन अपनी ओर खींचकर बंबई जैसा शहर उत्तरोत्तर विकास प्राप्त कर रहा है । यहां संपन्न के हाथों पैसे व्यर्थ बहते हैं । बंबई को पालनेवाले भारत के एक एक गांव से अधिक मूल्य वहां के एक मकान में है। देश के किसान परिवारों के

---

1. दादा कामरेड - यशपाल, पृ. 146
2. वही, पृ. 171

लिये वर्ष भर के निर्वाह के योग्य धन अपने व्यापार द्वारा देश की सेवा करनेवाले किसी एक व्यापारी के एक संध्या के मनोविनोद के लिये भी पर्याप्त नहीं है[1]।

तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक विषमता को दूर करने के लिये मार्क्सवादी विचारों से ओतप्रोत सोशलिस्टों का महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ॰ भगवानदास खन्ना पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखनेवाला है। रूस जैसे अनेक राज्यों में घूमकर, जीवन के खट्टे मीठे अनुभवों से गुज़रकर अपने देश भारत के पिछड़े जनवर्ग से उसका लगाव है। मेहनतकश जनता के हिमायती कम्यूनिस्ट आदर्शों से प्रभावित खन्ना श्रमिक वर्ग के नेतृत्व का भार भी अपने ऊपर ले लेता है। शिवनाथ सोशलिस्टों का नेता है जो मज़दूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाता है। उसकी प्रेरणा से जागृत श्रमिक वर्ग मज़दूरी में बढ़ती के लिये मिलों में हड़ताल करता है। मुनाफा-खोरी बन्द करने के नारे लगाकर एकत्रित होनेवाले मज़दूरों में जोश पैदा करते हुए शिवनाथ कहता है "कौन कहता है, मिल, मज़दूरों का नहीं है। मज़दूर मेहनत नहीं करेगा तो मालिक मुनाफा किधर से करेगा[2]? शिवनाथ के द्वारा मज़दूर उत्पादन में अपनी अनुपेक्षणीयता महसूस करने लगते हैं। यह जानकारी उन्हें अपने श्रम का शोषण करनेवाले मालिकों का विद्वेषी बना देती है।

शिवनाथ के नेतृत्व का मज़दूर संगठन मालिक वर्ग के सामने एक गंभीर समस्या बन जाता है। कोई भी मार्ग अपनाकर हड़ताल तोड़ना उनके अस्तित्व केलिये अनिवार्य बन जाता है। इसके लिये कांग्रेज़ी नेता बद्रीबाबू भी उनका सहायक रहता है। हड़ताल को तोड़ने का हर प्रयास उच्च वर्ग द्वारा ज़ारी रहता है। बद्रीबाबू के नेतृत्व में जो समझौता हुआ वह मज़दूरों से अधिक मालिकों के अनुकूल है। प्रतिगामी शक्ति के विरुद्ध शोषित गरीब वर्ग का यह संघर्ष उस वर्ग की प्रगति की सूचना है।

1· देश द्रोही - यशपाल, पृ· 182-183
2· यही, पृ· 85

पार्टी कामरेड

"पार्टी कामरेड" उपन्यास सन् 1946 के आम चुनाव और बंबई के नाविक विद्रोह की पृष्टभूमि में क्रान्ति का संदेश फैलाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर अंग्रेज़ों की जनद्रोहमय रीतियों में क्षुब्ध होकर बंबई के नौसैनिकों ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया था। साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध, उसके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले हर संगठन से लगाव रखनेवाले कम्यूनिस्ट नेतृत्व ने इस विद्रोह का समर्थन किया।

नाविक विद्रोह का पक्षपाती होकर कम्यूनिस्टों द्वारा हड़ताल का आयोजन होता है। हड़ताल का आह्वान देती हुई गीता कम्यूनिस्ट नेतृत्व के फैसले का समर्थन करती है "हमारी नाराज़गी और विरोध अंग्रेज़ सरकार के ज़ुल्म के खिलाफ है और हम विदेशी सरकार को चेतावनी देते है कि अपने शहीद होनेवाले प्रत्येक नौजवान के खून का बदला हम खून से लेंगे।"[1] श्रीनिवास, मेघनाद जैसे प्रगतिशील युवक भी जनता में जागरण उत्पन्न कराने में कर्मरत रहते हैं। कम्यूनिस्ट आदर्शों से प्रभावित पद्मलाल भावरिया इस संघर्ष में कम्यूनिस्टों के साथ रहता है।

बंबई के नौसैनिकों का विद्रोह व्यापक रूप धारण करता है और बहुत जल्दी जनसंघर्ष बन जाता है। इस जनान्दोलन में तत्कालीन प्रमुख पार्टी कांग्रेज़ जनविरुद्ध रहता है। जनता की आकांक्षा के विरुद्ध उसने इस संघर्ष में भाग नहीं लिया। यही नहीं जनता पर किये गये सरकारी

---

1. पार्टी कामरेड - यशपाल, पृ. 120

दमन पर विरोध भी प्रकट नहीं किया[1]। अंग्रेज़ शासन से रूठने के भय से कांग्रेज़ द्वारा जनसंघर्ष को रोकने का श्रम सफल नहीं हुआ। बंबई में हुई हड़ताल पूर्ण सफलता प्राप्त करती है[2]। प्रगति के पथ पर बाधक प्रतिगामी शक्तियों पर संघर्ष की अनिवार्यता पर यह उपन्यास ज़ोर देता है।

मनुष्य के रूप

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय के भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर संघर्ष का आह्वान उपन्यास का मर्म है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के सिलसिले में साम्राज्यवादी शोषण द्वारा भारतीय जनता बिलकुल परेशान थी। यहाँ का जनसाधारण इस शोषण से अपरिचित नहीं था। मुल्लीवाला जैसा आम आदमी भी युद्ध के नाम पर पानी के समान रूपये बहानेवाली अंग्रेज़ी नीति की कटु आलोचना करता है[3]।

---

1. "कांग्रेज पार्टी की ओर से सरदार पटेल ने बताया कि सिपाहियों ने नेताओं के सलाह के बिना अनुशासन भंग किया है। इसलिए उनके काम में किसी प्रकार का सहयोग जनता को नहीं देना चाहिये"
पार्टी कामरेड - यशपाल, पृ. 83

2. वही, पृ. 80

3. "इस युद्ध में एक अरब रूपया रोजाना खर्च हो रहा है। इसलिये कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के शोषण का अधिकार चाहता है -
मनुष्य के रूप - यशपाल, पृ. 284

राजनीतिक विडंबनाओं के इस समय देश में पूंजीवादी शोषण ज़ोरों पर है । शोषण के विरुद्ध जनता का विरोध भी प्रकट होने लगता है । पीड़ित जनवर्ग को शोषण से परिचित कराकर इसके विरुद्ध उन्हें संगठित कराने का श्रम तत्कालीन कम्युनिस्ट पार्टी के द्वारा संपन्न होता है । प्रगतिशील विचारों का वक्ता भूषण शोषित मज़दूरों को संगठित करके उन्हें संघर्ष के मार्ग पर अग्र सर कराता है । तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन के लिये क्रान्ति को अनिवार्य माननेवाले भूषण के अनुसार परिस्थितियां स्वयं क्रान्ति नहीं देंगी । मनुष्य का संगठित प्रयत्न ही स्वयं एक आवश्यक परिस्थिति है[1] । साधनहीन गरीब वर्ग की अपनी शक्ति की पहचान वास्तव में प्रगति का पहला कदम है । ड्राइवर कुन्दन सिंह नयी चेतना का प्रतीक है जो मालिकों के सामने अपने वर्ग की असीम ताकत की घोषणा करता है[2] । भूषण और धनसिंह के साथ होकर उच्चवर्ग के कुछ व्यक्ति भी श्रमिक संगठन का पक्ष लेते हैं । संपन्न घराने की मनोरमा अपने पिता और भाई द्वारा धन कमाने के अन्यायपूर्ण उपायों से सख्त नफरत करती है और अपनी श्रेणी से भी बचना चाहती है[3] ।

प्रस्तुत उपन्यास यह उद्घोषित करता है कि सामाजिक असमानता के विरुद्ध निम्नवर्गीय संगठन और संघर्ष अनिवार्य है ।

---

1. मनुष्य के रूप - यशपाल, पृ. 135
2. "यूनियन को क्या समझता है ? सौ आदमी इकट्ठे हो जाय तो पहाड को धकल दे । कंपनी साली तो हमारी कमाई खाती है ।"
   वही, पृ. 46
3. वही, पृ. 164-165

झूठा सच

"झूठा सच" विभाजनपूर्व और विभजित भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में उभरती जनशक्ति का परिचय देता है । इसमें सन् 1942 से लेकर सन् 1957 तक की परिस्थितियों में विभाजन, विभाजन के समय के सांप्रदायिक दंगे, स्वतंत्र भारत का कांग्रेज़ी शासन, समाजवादी आदर्शों का प्रचार आदि ऐतिहासिक घटनाओं का संकेत किया गया है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति से अपने स्वतंत्र राज्य में गुलामी और शोषण की समाप्ति की आकांक्षा हर भारतीय के मन में थी । लेकिन स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों में थोडा बहुत परिवर्तन नहीं हुआ । शोषण अब भी जारी रहा । संपन्न पूंजीपतियों को पनपने देनेवाले कांग्रेज़ ने शासक श्रमिक संगठन पर भारी दबाव रखा । श्रमिक शक्ति को दबाने के लिये हड़ताल आदि को गैरकानूनी घोषित करके उनमें रोक लगाया । पूंजीपतियों के अत्याचारों में आम जनता की स्थिति बदतर रही । पूंजीपतियों का हौसला बढ गया कि अब उनके चन्दे से पलनेवालों का राज है । कांग्रेज़ ने कन्ट्रोल हटा दिया कि पूंजीपति मन भर कमाये और उन्हें चन्दा दें । पूंजीवादी अन्याय को रोकने के बदले उनका पक्ष लेकर देश का जनजीवन दुःसह बनानेवाले कांग्रेज़ियों का शासन विदेशी साम्राज्यवादी शासन से भी भयानक है।[1]

---

1. झूठा सच - यशपाल, पृ.398

तत्कालीन शोषण और दमन में परेशान निम्न वर्ग को मुक्ति मार्ग के रूप में समाजवादीआदर्शों का आविर्भाव होता है । डॉ॰प्राणनाथ समाजवादी आदर्शों से प्रभावित है जो जनता की संगठित शक्ति पर असीम विश्वास रखता है । वह समाजवादी आदर्शों को कर्मपथ पर लाने का अथक प्रयत्न करता है । सामाजिक समानता का वक्ता डॉ॰ प्राण नौकरों की हड़ताल में उनका समर्थन करके अपने नौकरको नौकर प्रदर्शन के लिये भेज देता है । अन्याय और अत्याचार के परे जनशक्ति की विजय पर आस्था रखनेवाले प्राणनाथ चुनाव में कांग्रेस की पराजय की यों आलोचना करता है "जनता सदा मूक नहीं रहती । देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं, देश की जनता के हाथ में है[1] ।

भारत की महान राजनीतिक गतिविधियों की पृष्ठभूमि में लिखा गया यह उपन्यास जनशक्ति पर यशपाल के अटूट विश्वास का प्रमाण है ।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन मूलत: समाजवादी उपन्यासकार है । उन्होंने मार्क्सवादी विचारों को भारतीय परिवेश में प्रस्तुत किया । किसानों और मज़दूरों की विभिन्न समस्याओं को निकट से अनुभव करके, उनके संघर्ष में भागीदार होकर इस शोषित वर्ग के प्रति वे संवेदनशील हो गये और यही संवेदना उनके उपन्यासों में अभिव्यक्ति पायी । "सिंह सेनापति", "जय यौधेय", विस्मृत यात्री", आदि उपन्यासों में उन्होंने समाज के दलित, दमित, शोषित वर्ग के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत किया । इनमें शोषण के

1· झूठा सच [देश का भविष्य] - यशपाल, पृ· 680

उन्मूलन में जागृत जनवर्ग द्वारा किये गये महान संघर्षों का चित्रण हुआ है ।

सिंह सेनापति

"सिंह सेनापति" उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में असमानता की चर्चा करता है । ईसा पूर्व पाँचवीं सदी की गण राज्य व्यवस्था में मालिक वर्ग के शोषण और शोषण के शिकार गुलामों के दुःखपूर्ण जीवन इसमें अंकित है ।

प्राचीन काल के राजा लोग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये जनता के धन और अपार जनशक्ति का शोषण करते थे । हर राजा की सबसे बडी लालसा चक्रवर्ती बनना है । इसके लिये उन्हें सैकडों जातियों, देशों को परतंत्र बनाना पडता था । अपने इस स्वार्थ में राजा गुलामों की खरीदी -बिक्री करते थे । मालिकों के यहाँ दासों का जीवन नरकतुल्य है । उनका न कोई देश है, न सगे संबंधी । उनका अपना अलग अस्तित्व ही नहीं। दास कृष्ण अपने संबंध में कहता है "कोशांबी में पैदा हुआ था, माँ के साथ काशी में बिका, सयाना होते मगध के बनिये ने खरीद लिया । मार तो सभी जगह खानी ही पडती थी[1] । मालिकों की सेवा करके, उनके मार पीट सहते बैलों के समान जीनेवाले इन्हें कोई भी गाली दे सकता है । थोडी सी गलती पर इन्हें कठिनतम दण्ड भुगतना पडता है । कृष्ण का स्वामी छोटी सी भूल पर आग से उसका पीठ दाग कर देता है[2] ।

1· सिंह सेनापति - राहुल सांकृत्यायन, पृ· 121-122

2· वही, पृ· 125

लिच्छवि गण का नायक सिंह तत्कालीन सामाजिक वैषम्य के विरुद्ध प्रगतिशील विचारों से युक्त है । भामा, सोमा, क्षेमा जैसी लिच्छवी कुमारियाँ स्वस्थ, सशक्त, स्वतंत्र नारी चेतना के प्रतिनिधि है । श्रम शक्ति की आराधना करनेवाली भामा लिच्छवी राजकुमारियों को युगानुकूल परिवर्तनों से सजग रहने का उपदेश देती है । श्रम के महत्व की ओर उन्हें बोधवान बनाकर वह कहती है "कूटना, पीसना, खाना बनाना जैसे मेहनत और हाथ पक्का करनेवाले कामों को सिर्फ दासियों के हाथ में मत छोड दीजिये खेत में कुदाल चलाइये, धूप में रहने की आदत डालिये[1] । नारी समूह की यह जागृत चेतना निश्चय ही प्रगति की सूचना है ।

मालिक वर्ग के विरुद्ध शोषित दासों के संघर्ष में सिंह उनका नेतृत्व करता है । उसकी अधीनता का गणतंत्र मगध राजतंत्र से विद्रोह करता है । इस वर्ग संघर्ष में गणतंत्र की विजय होती है[2] । शोषक के उपर सदियों से शोषित जनवर्ग की विजय शोषणहीन, समत्वपूर्ण नयी सामाजिक व्यवस्था की नींव डालती है ।

जय यौधेय

गुप्तकालीन यौधेय गण के शासन में भारत की राजनीतिक सामाजिक परिस्थिति और इस परिवेश में असंतृप्त जनवर्ग द्वारा संघर्ष का चित्रण जय यौधेय उपन्यास में हुआ है ।

---

1. सिंह सेनापति - राहुल सांकृत्यायन, पृ. 149
2. वही, पृ. 158

गुप्तकालीन भारतीय समाज असमानता और शोषण से भरपूर है । ऐसी व्यवस्था में धनिक अधिकाधिक धनी बनता रहता है और निर्धन की स्थिति कभी नहीं सुधरती । गरीब चारों ओर से शोषित हैं । उनके श्रम का ही नहीं, उनके बीच प्रचलित अंधविश्वासों का भी खूब लाभ उठाया जाता है । परलोकवाद, पुनर्जन्मवाद आदि विश्वासों की आड में गरीब खूब लूटा जाता है[1] ।

यौधेय गण का नेता जय प्रगतिपूर्ण विचारवाला है जो शोषण और सामाजिक वैषम्य के विरुद्ध गरीबों को खड़ा करता है । सामाजिक असमानता की कटु आलोचना करते हुए श्रमिक वर्ग को वह शोषण से परिचित कराता है[2] । आध्यात्मिकता और धर्म के नाम पर गरीबों के विश्वासों का शोषण करके अपनी स्वार्थ पूर्ति करनेवाले धनिकों पर जय का विरोध फूट निकलता है । लोगों को इनसे सचेत रहने का उपदेश देते हुए जय प्रगति के मार्ग पर रोडा बननेवाले परंपरागत मान्यताओं के खोखलेपन का परिचय देता है । वह कहता है "यदि पुनर्जन्म का विश्वास हाथ पैर और मन को न बांधे होते तो हज़ारों में नौ नौ निन्यानब्बे जनता अपने सामने परोसी थाली एक आदमी के सामने रखकर भूखों न मरती और न भूखे और नंगे रहनेवालों की कमाई से, उनके खून और हड्डियों से बडे बडे प्रासाद तैयार होते[3] । पुराने दकियानूसी विश्वासों की जंजीरों से मुक्त होने की आवश्यकता पर संकेत करके जय बुद्धि और विवेक से काम लेने का उपदेश देता है । उसके अनुसार किसी बात को तब तक न मानना चाहिये जब तक वह हमारे अनुभव और बुद्धि की कसौटी पर खरी न उतर जाय[4] ।

---

1. जय यौधेय - राहुल सांकृत्यायन, पृ. 110
2. "नौ नौ निन्यानब्बे मानवों के मुँह की रोटी, तन का कपडा और उनकी सारी कमाई छीनकर ये बडे बडे प्रासाद खडे होते हैं । ये स्वर्ण रत्न के दीपक जलते है । ये दुकूल, चीनांशुक और पाण्डु कंबल ओढे जाते हैं । जिनका सारा धन, सारा वैभव बहुजन को दुःखी दरिद्र बनाकर प्राप्त होता है ।" - जययौधेय - राहुल सांकृत्यायन, पृ.30
3. जय यौधेय - राहुल सांकृत्यायन, पृ. 106
4. वही, पृ. 32

प्रगतिशीलता का पुट विश्वबन्धु में भी दिखायी पड़ता है । श्रम के महत्व पर विश्वास करनेवाला विश्वबन्धु श्रमिक वर्ग को शासन का यथार्थ अधिकारी मानता है । उसके मत में साधनहीन वर्ग के हाथ में ही शासन व्यवस्था सुरक्षित है । वह स्पष्ट कहता है "उन्हीं लोगों को गण व्यवस्था का सदस्य बनाना चाहिये, उन्हीं के हाथ में राज काज की बागडोर दी जाय, जिनके पास कोई संपत्ति न हो[1] ।"

जय का प्रगतिशील चिन्तन केवल सिद्धान्तों तक सीमित नहीं । राजशासन के विरुद्ध वह यौधेय गण को संगठित कराता है और उनकी संगठित शक्ति से शासन का अन्त कर देता है[2] । जनसंघर्ष से स्थापित नयी सामाजिक व्यवस्था - गणतंत्र व्यवस्था - में जय जाति या वर्ग के संकुचित दायरे में मनुष्य को सीमित रखने की रीति का विरोध करता है । उसकी राय में सबको समान अधिकार और समान अवसर मिलनेवाले उस समाज में न यौधेय का भेद है, न अयौधेय का न नर का, न नारी का, न दास का न स्वामी का[3] ।

गुप्तकालीन सामाजिक पृष्ठभूमि में राहुल सांकृत्यायन ने असमत्वपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के सुधार के लिये प्रगतिवादी विचारों को प्रश्रय दिया है ।

---

1. जय यौधेय - राहुल सांकृत्यायन, पृ. 97
2. वही, पृ. 280
3. वही, पृ. 278

विस्मृत यात्री

"विस्मृत यात्री" उपन्यास में प्रगतिवादी चिन्तनों के अनुकूल बौद्ध धर्म का निरूपण हुआ है। उपन्यास का नायक नरेन्द्र यश आस्थावान बौद्ध है। निरुद्देश्य यात्री यश सेवा को अपने जीवन का परम ध्येय मानता है। समाज की विभिन्न समस्याओं के विवेचन में उसे मालूम होता है कि सामाजिक असमानता और अन्य दुःखों का मूल कारण आर्थिक है। अतः असमानता के कारणभूत संपन्नों पर उसका विद्वेष भभक उठता है। वह कहता है "मनुष्यों में संपत्ति की जो विषमता है, वही सबसे अधिक दुःखों का कारण है। सम्राटों या सामन्तों को वैभव में डूबे रहने का क्या अधिकार है? यह वैभव तथा धन उनके प्रासाद में आकाश से नहीं टपकता। परिश्रम करते करते लोगों की कमर टूट जाती है ...... इन सबको जो हाथ तैयार करते हैं। वही दुनिया में सबसे गरीब है[1]। नरेन्द्र यश का यह कथन उसकी प्रगतिवादिता का स्पष्ट परिचायक है। विषमतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के उपाय के रूप में वह कहता है "यह विष बेल तभी कटेगी जब समाज में परिश्रम को मान्यता मिलेगी और परिश्रमी को उसके श्रम का पूर्ण पारिश्रमिक प्राप्त होगा[2]।"

रांगेय राघव

प्रगतिवादी साहित्य के उन्नायकों में प्रमुख रांगेय राघव के उपन्यासों में समाजवादी विचारों का व्यावहारिक पक्ष स्पष्टतः उभर आया है। उनके अधिकांश उपन्यासों में सामाजिक वर्ग वैषम्य से पीड़ित मनुष्य का जीवन अंकित है। मार्क्सवाद के ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्त के

---

1. विस्मृत यात्री - राहुल सांकृत्यायन, पृ. 374
2. वही, पृ. 374

आधार पर उन्होंने भारतीय इतिहास, चिन्तन, संस्कृति, सभ्यता आदि का उद्घाटन और विश्लेषण किया । उनकी रचनाओं में प्रगतिवादी विचारों का समावेश संदर्भानुकूल स्वाभाविक रूप में हुआ है, कभी वह प्रचारात्मक या आरोपित नहीं । "विषाद मठ", "हुज़ूर" आदि उपन्यास उनकी प्रगतिशीलता के प्रमाण है ।

विषाद मठ

"विषाद मठ" उपन्यास का कथानक सन् 1943 के बंगाल दुर्भिक्ष पर आधारित है । अकाल की भीषणता समाज के गरीबों को अधिक सहना पड़ता है । बंगाल के चटगांव जैसे गावों को अकाल पूर्ण रूप से ग्रसता है । इस समय ज़मीन्दारी शोषण और अत्याचार तीव्रतम रूप में प्रकट होता है । अर्थलोलुप ज़मीन्दारों और पूंजीपतियों की अमानवीय करतूतियों से बंगाल का साधारण जन जीवन दयनीय बन जाता है ।

अकाल की विभीषिका में बंगग्राम कटोला वास्तव में तड़पती है । विश्वयुद्ध के समय के इस अकाल में एक ओर गर्मी से फसल सूख जाता है तो दूसरी ओर ऊपर से जापानी जहाज़ बममारि करते हैं । ज़मीन, घर सब जलकर जनता निराश्रित हो जाती है । भूख मिटाने के लिये लोग भीख मांगने केलिए भी तैयार हो जाते हैं[1] ।

ज़मीन्दार चट्टोपाध्याय जैसे संपन्न लोग चोर बाज़ारी करके ही वास्तव में अकाल की स्थिति उत्पन्न कराते हैं और साधारण जनता को इसका मूल्य चुकाना पड़ता है । जब अकाल में अन्नाभाव के कारण लोग मर

1. विषाद मठ - रांगेय राघव, पृ. 5-6

रहे हैं तो कमलापति चट्टोपाध्याय अधिकाधिक वस्तुओं के संचय में व्यस्त रहता है । श्यामपद जैसे गरीब किसान के शब्दों में उस वर्ग की संपूर्ण विवशता मौजूद है । भूखप्यास से जीवन भी बोझ महसूसनेवाले उसके अनुसार पहले मौत सताती थी, अब ज़िन्दगी सताती है[1] ।

गाँव के जमीन्दार इस भीषण स्थिति का खूब लाभ उठाते है । लोग गुज़ारे के लिये अपने घर, खेत सब ज़मीन्दारों के पास रेहम रखते है । कालीपद भूख से बिलखते बच्चों के लिये ज़मीन्दार को अपना फसल बेचता है, स्त्री का जेवर गिरवी रखता है । फिर भी पर्याप्त नहीं तो मालिक के सामने वह अपने को समर्पित करके उसका गुलाम बन जाता है । खाते पीते किसान एक एक होकर मज़दूर बन जाते हैं[2] । श्यामपद की भी ऐसी ही स्थिति है तो वसन्तपद किसी के यहाँ काम करके कुछ खाने की इच्छा से ढाका जैसे महानगरों की ओर पलायन करता है ।

घोर आपत्ति के इस समय ज़मीन्दारी शोषण उसकी चरम सीमा पर पहुँचता है । निःसहाय गरीबों के भूमि और श्रम ही नहीं, उनके स्त्रियों को भी पैसे के बदले वे ले लेते है । एक वक्त के भोजन के लिये ही शबनम चौवनी पर अपना शरीर बेचती है[3] ।

सामाजिक असमानता का उग्र रूप उपन्यास में चित्रित है । भूख से पीड़ित जनवर्ग पर सहानुभूति प्रकट करने के लिये समाज के संपन्न क्लब में एकत्रित होकर भूखों की तन्दुरुस्ती के लिये शराब में डूबते हैं ।

---

1. विषाद मठ - रांगेय राघव, पृ.17
2. वही, पृ.36
3. वही, पृ. 132

सामाजिक असमानता का विकराल रूप प्रस्तुत करनेवाले इस उपन्यास में असमानता के विरुद्ध गरीब वर्ग के विद्रोह की आवश्यकता पर परोक्ष रूप में संकेत करना लेखक का उद्देश्य है ।

हुज़ूर

हुज़ूर नामक उपन्यास में रांगेय राघव सन् 1939 से लेकर सन् 1951 तक के भारतीय समाज में विभिन्न वर्गों की स्थितियों का आँखों देखा वर्णन करके शोषण के विभिन्न पहलुओं का परिचय देते हैं । इसका नायक जेक नामक कुत्ता है जो समाज के उच्च, मध्य और निम्न वर्गीय लोगों के साथ रहकर तत्कालीन परिवेश मे संबंध स्थापित करता है ।

भारत में अंग्रेज़ी शासकों के शोषण और अत्याचार पूर्ण शासन से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत की शासन रीति तक का विस्तृत वर्णन उपन्यास में है । अंग्रेज़ी शासन में परेशान भारतीयों की स्थिति में स्वतंत्रता प्राप्ति से कोई परिवर्तन नहीं आया । स्वातंत्र्योत्तर भारत में शोषण और अन्याय सत्ताधारी कांग्रेस नेताओं द्वारा ज़ारी रहता है । शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले पकडे जाते हैं । भ्रष्ट, पतनशील शासन में हिन्दुस्तान की स्थिति अशान्तिपूर्ण रहती है[1] ।

---

1. "कांग्रेज़ियों ने बिलकुल अंग्रेज़ों का जामा पहन लिया । बडे बडे गद्दियों पर बैठे पुलीसवाले देशभक्त करार कर दिये गये । वामपंथी जेलों में पकड़कर रख दिये गये, आज़ाद हिन्दुस्तान में लगातार 144 लगी रहने लगी और महंगाई बढती जा रही थी" ।

हुज़ूर - रांगेय राघव, पृ. 108-109

पुलीस अफसर, पुरानी रईस, महतर मध्यवर्गीय चित्रकार, भिखारिन आदि समाज की विभिन्न श्रेणी के मालिकों के संबंध में आकर जेक सामाजिक वैषम्य से निकट परिचय स्थापित करता है । विषमतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन इन लंबे अरसों के अनुभव से उसे दिखायी नहीं पड़ता । स्वाधीनता प्राप्ति के पहले के समान अब भी भारत का गरीब वर्ग शोषित और दमित ही है । उनकी स्थिति बदतर हो रही है ।

तत्कालीन सामाजिक विषमता को प्रस्तुत करके लेखक बताते हैं कि शोषण और वर्ग वैषम्य मनुष्य की जड़ें खोद रही है और अधिकार लिप्सा उसका शत्रु बन गयी है । आज का मनुष्य अपने पुराने संस्कारों से विद्रोह कर रहा है । सामाजिक असमानता को दूर करने के लिये लेखक समाजवादी हल प्रस्तुत करते हैं । शोषण और अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति का समर्थन करके जेक के द्वारा वे बताते हैं कि जब तक श्रम करनेवाले को ही समाज में उत्पादन साधनों पर अधिकार नहीं मिलेगा, इन्सान और उसकी दुनिया निरन्तर ऐसी ही भटकती रहेगी । उसे कहीं भी चैन नहीं[1] ।

<u>अन्य प्रमुख जनवादी उपन्यासकार</u>

प्रेमचन्द और यशपाल के बाद राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि के द्वारा पोषित प्रगतिवादी उपन्यास परंपरा में भगवतीचरण वर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतराय आदि का नाम भी उल्लेखनीय है । इनके कतिपय उपन्यासों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर

---

1. हुजूर - रांगेय राघव, पृ. 110

आधारित वर्ग संघर्ष का सक्रिय रूप देखने को मिलता है । मुख्य प्रवृत्ति और मूल विचार में अन्तर होते हुए भी इन उपन्यासकारों के एकाध उपन्यासों में प्रगति का स्वर सुनायी पड़ता है ।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "आखिरी दाँव" में प्रगतिशील विचारों का स्पष्ट उल्लेख है । पूंजीवादी व्यवस्था में संपन्न का नैतिक पतन ही उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य है । प्रस्तुत समाज में गरीब अकसर पीड़ित किया जाता है । शिवकुमार पूंजीवाद की सन्तान है जो अपने धन वैभव के बल पर समाज के नैतिक नियमों को अपने हाथ में ले लेता है। आखिरी दाँव तत्कालीन असमत्वपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है ।

भैरवप्रसाद गुप्त का उपन्यास "मशाल" द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारतीय जनता में हुए साम्यवादी प्रभाव पर विचार करता है । यह कानपुर के मिल मालिकों के शोषण के विरुद्ध मज़दूरों के संघर्ष की विजयगाथा है । सख्त मेहनत के बदले कम वेतन देकर मज़दूरों का शोषण करनेवाले मिल मालिकों के विरुद्ध आन्दोलन चलाते हुए नरेश कहता है "मज़दूरों की यह लड़ाई है मज़दूरों को अपना हक लेना है तो यह लड़ाई लड़नी ही होगी[1] । मज़दूर वर्ग के संगठन को तोड़ने का अनवरत श्रम मालिकों की ओर से होता रहता है । लेकिन प्रतिगामी शक्तियों के सामने श्रमिक वर्ग की हिम्मत नहीं टूटती । नेता लोग जेलों में बन्द किये जाते हैं तो जेल के बाहर मज़दूरों की फौलादी ताकत शोषकों के मुकाबले के लिये तैयार रहती है । पुलीस द्वारा लाठियाँ चलाते वक्त भी वे एकत्रित होकर पुकार उठते हैं "दुनिया के मज़दूरों एक हो[2] ।" क्रान्ति की मशाल

---

1. मशाल - भैरवप्रसाद गुप्त, पृ. 200
2. वही, पृ. 235-239

जलाते हुए आगे बढ़नेवाले मज़दूरों के विजय अभियान पर प्रगतिवादी लेखक यह आशा व्यक्त करते हैं "आठ मज़दूर शहीदों और सत्तर घायल मज़दूरों के लाल खून से कानपुर के मज़दूरों ने जंगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चा की जो मशाल जलायी है, वह कभी नहीं बुझेगी[1]।"

सन् 1953 में लिखे "गंगा मैया" उपन्यास में भैरवप्रसाद गुप्त की समाजवादी दृष्टि अभिव्यक्त हुई है। सामन्तवादी शासन की निष्ठुरता के शिकार गोपी और मटरू नामक दो किसानों के द्वारा कृषक जीवन की समस्याओं का प्रतिपादन हुआ है। मटरू निडर, साहसी ग्रामीण किसान है जो सामन्तीय शोषण और अत्याचार सहकर अपनी भूमि पर डटा रहता है। अपने जैसे पीड़ित कृषकों को वह सामन्तीय अन्याय से परिचित कराता है। ज़मीन की बेदखली जैसी अन्यायपूर्ण करतूतियों से गरीब किसानों को सतानेवाले ज़मीन्दारों के विरुद्ध वह किसानों को जागृत बनाता है। वह कहता है "न्याय हमारे साथ है। झूठ, फरेब, धांधली, और जुल्म की गाडी बहुत दिनों तक नहीं चलती   अपनी प्यारी धरती पर जान देनेवालों से उनकी धरती छीन लेने की ताकत किसमें है[2]?" गोपी, मटरू, दीयर, निरुवाहि जैसे अनेक संख्यक किसान ज़मीन्दारी अन्याय के विरुद्ध संगठित हो जाते हैं। अनेक यंत्रणाओं से ज़मीन्दार कृषक संगठन को दबाने का प्रयास करता है। लेकिन संघर्षरत किसान पीछे नहीं हटते। सही नेतृत्व के प्रति अगाध श्रद्धा, विश्वास और वर्ग चेतना का सशक्त रूप इस उपन्यास में चित्रित है।

"सत्ती मैया का चौरा" स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की सांप्रदायिक दंगों और आर्थिक संकटों की पृष्ठभूमि में संघर्ष की अनुप्रेक्षणीयता पर संकेत करता है। कम्यूनिस्ट विचारों के हामी मन्ने द्वारा गांव में समाजवादी

---

1. मशाल - भैरवप्रसाद गुप्त, पृ. 114-115
2. गंगा मैया - भैरवप्रसाद गुप्त, पृ. 120

विचारों का प्रचार होता है । गांव को हर दिशा में उन्नति के पथ पर अग्रसर करानेवाली कमेटी का मंत्री मन्ने वर्ग चेतना को प्रश्रय देनेवाली योजनायें बनाता है । मुन्नी भी समाजवादी विचारों से आकृष्ट है जो सामाजिक विडंबनाओं के सुझाव के रूप में भारत में भी चीन जैसे जनजागरण की आवश्यकता महसूस करता है[1] । यही नहीं प्रगति के मार्ग पर बाधक सभी शक्तियों को दबाने में वह तुला है[2] । प्रगतिपूर्ण विचारों के सामने प्रतिक्रियावादी शक्तियां भी सुसज्जित हैं। वे एकत्रित होकर जनशक्ति का मुकाबला करते हैं । गांव का जमीन्दार मुन्ने पर झूठे आरोप लगाता है तो इसका विरोध वह यों प्रकट करता है "इस मर्ज का एक यही वाहिद इलाज है, वर्ग चेतना । ······· वर्ग संघर्ष । क्रान्ति किसान और मज़दूरों का राज इन्कलाब[3] मुन्ने और मुन्नी के नेतृत्व का गरीब शोषित वर्ग शोषण से अभिज्ञ होकर अपने अधिकारों से सचेत हो जाता है । श्रमिक वर्ग की जागृति और अधिकारी वर्ग पर विद्रोह का यथार्थ रूप उपन्यास में चित्रित है ।

फणीश्वर नाथ रेणु का उपन्यास "मैला आंचल" स्वातंत्र्योत्तर भारत की ग्रामीण परिस्थितियों का वस्तुनिष्ठ चित्र है । संपन्नों के शोषण में पशुओं जैसा जीवन बितानेवाले गरीब कृषक ही इसका केन्द्र बिन्दु है । आर्थिक कठिनाइयों से परेशान कृषक वर्ग का ज़मीन्दार अनेक तरीकों से शोषण करता है । स्वातंत्र्योत्तर भारत में कांग्रेज़ियों द्वारा संथाल जैसी पिछडी जनजाति का उद्धार उनका शोषण करनेवाले ज़मीन्दार को अप्रिय लगता है । फलत: उस वर्ग को अधिकाधिक दबाव का अनुभव करना पड़ता है । तत्कालीन कृषक जागरण से परिचित किसान और समाज के पिछडे वर्ग शोषण और दमन के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं । निम्न वर्ग का जागृत बोध

1· "सत्ती मैया का चौरा - भैरवप्रसाद गुप्त, पृ·601

2· "सर्वसाधारण की भलाई के लिये कुछेक को दबाने की ज़रूरत पडे तो इसमें बुराई क्या ?" वही, पृ·605

3· वही, पृ·655

कालीचरण में स्पष्ट दृष्टव्य है । अपने ज़मीन पर अपने अधिकार के लिये संघर्ष करनेवाले वर्ग के प्रतिनिधित्व में वह कहता है "ज़मीन किसकी ? जोतने-वाले की, जो जोतेगा, वह बोयेगा, जो बोयेगा, वह काटेगा, कमानेवाला खायेगा"[1] निम्न वर्ग को संगठित करने का भारी उत्तरदायित्व कालीचरण अपने ऊपर ले लेता है । किसानों को ही नहीं नाई, धोबी जैसे संपन्नों के लिये काम करनेवाले सभी श्रमिकों को वह संगठित करता है । तान्त्रियाटोली पंचायत में ग्रामीण यह निश्चय कर लेते हैं कि बाबू टोले के घरों में आगे उनकी स्त्रियाँ काम करने नहीं जायेंगी । यह क्रान्तिकारी कदम निम्नवर्गीय जागरण का परिचायक है ।

संघर्ष का सक्रिय रूप "मैला आँचल" में चित्रित है । तहसीलदार हरगौरी सिंह किसानों के जमीनों की नयी बन्दोबस्ती और नीलामी का एलान कर उन्हें संकट में डाल देता है । संथाल वर्ग की भूमि भी इसी प्रकार नीलाम होनेवाली है तो गरीब जनवर्ग संगठित होकर विरोध करता है ।[2] ~~इस संघर्ष में हरगौरी सिंह की मृत्यु हो जाती है ।~~ "मैला आँचल" में सामन्तवादी शोषण और शोषण में दबती जनता के गरीबी और जहालत से मुक्ति संघर्ष का चित्रण हुआ है ।

वर्ग चेतना से प्रेरित होकर अमृतराय ने वर्ग वैषम्य से पीड़ित मानव जीवन की करुण कथा प्रस्तुत की । उनका उपन्यास "बीज" स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में सामाजिक समानता का संदेश देता है । साम्राज्य-वादी शासन के विरुद्ध संघर्षरत देशप्रेमी क्रान्तिकारी सत्यवान देश की मुक्ति के लिये आत्मार्पण करने के लिये भी तैयार रहता है । देश की दु:स्थिति से मुक्ति के लिये क्रान्ति को वह अनिवार्य मानता है । उसके अनुसार "जब तक दुनिया में डाकुओं और जल्लादों का राज्य कायम है तब तक हिंसा उन सभी

---

1. मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 130
2. वही, पृ. 133

लोगों के लिये आदर्श रहेगी, जो अपना घर, अपना खेत, खलिहान, अपना देश, अपनी बहू बेटियों की इज्जत और अपने बच्चों की मुस्कुराहट लुटते और कत्ल होते नहीं देखना चाहते ।" क्रान्तिकारी वीरेन्द्र के प्रभाव से सत्य मार्क्सवादी सिद्धान्तों से आकृष्ट होता है और वैषम्यहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिये इन सिद्धान्तों का प्रचार अनुपेक्षणीय मानता है।[2]

नागार्जुन

मार्क्सीय तत्वों के गंभीर अध्येता नागार्जुन ने मार्क्स के सामाजिक सिद्धान्तों को अपने उपन्यासों का आधार बनाया । ऐसा करने से समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों को विषय और शिल्प की दृष्टि से उन्होंने एक नया मोड दिया । प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में यथार्थवादी आधार का ग्रहण तो होता था । पर आदर्श की उपेक्षा नहीं थी और आदर्श के लिये झुकता भी नहीं था । यहीं पर नागार्जुन ने प्रेमचन्द परंपरा को आगे बढाया ।

अपने देश के आम जनजीवन से गहरे रूप में जुडे नागार्जुन के उपन्यास यहाँ के श्रमिक वर्ग की वेदना की अभिव्यक्ति है । उनके उपन्यासों का मुख्य विषय सामाजिक विषमता और इस वैषम्य के खिलाफ शोषित दमित वर्ग का संघर्ष है । वर्गों की कथा के प्रस्तुतीकरण के लिये अपने चिर परिचित मिथिलांचल को उन्होंने परिवेश बनाया । "रतिनाथ की चाची" से लेकर "इमरतिया" तक के उपन्यासों में शोषण के विभिन्न रूपों का परिचय देकर शोषित वर्ग के मुक्ति संघर्ष को उन्होंने वाणी दी ।

---

1. बीज - अमृतराय, पृ. 54
2. "बराबरी सिर्फ एक अच्छा आदर्श या सपना नहीं, बल्कि साध्य भी है और उसका साधन ही है मार्क्सवाद" । वही, पृ. 58

रतिनाथ की चाची

सन् 1948 में प्रकाशित "रतिनाथ की चाची" विकृत सामन्तीय संस्कारों के बीच निःसहाय विधवा ब्राह्मणी की कथा है। रतिनाथ की चाची गौरी मिथिला के शुभंकरपुर गाँव की गरीब ब्राह्मण विधवा है। उसके बेटा बेटी विवाहित है। दो सयाने सन्तानों की माँ गौरी पर उसका देवर जयनाथ बलात्कार करता है। गर्भवती गौरी को संपूर्ण गाँव घृणा और उपहास की दृष्टि से देखता है। लेकिन अनेक बार पूछने पर भी गौरी अपने पेट में पलनेवाले बच्चे के पिता का पता नहीं देती। उपेक्षा से बचने के लिये वह अपने आठ महीने का गर्भ गिराती है। जयनाथ का पुत्र रतिनाथ अपनी चाची से बेहद प्यार करता है। पिता की निष्ठुरता से उसका एकमात्र सहारा चाची ही है। अपने बच्चों से अधिक रतिनाथ को वह चाहती है। चाची का पुत्र उमानाथ और बेटी प्रतिभा माँ की गलती पर उसे निरन्तर सताते हैं। गौरी अपने बच्चों का आश्रय न लेकर अपने परिश्रम से जीने लगती है। अन्त में गाँव में फैली मलेरिया में वह मौत को स्वीकारती है।

एक विशेष सामाजिक समस्या विधवा समस्या - पर आधारित इस उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों और परिवर्तनों का उल्लेख है। जमीन्दारी शोषण, कृषकों का दयनीय जीवन, कृषक जागरण और उनके संघर्ष का परामर्श इसमें है।

बलचनमा

सन् 1952 में प्रकाशित "बलचनमा" जन आन्दोलन में नागार्जुन के अटूट विश्वास का परिचायक है। जमीन्दारी शोषण और अत्याचार के

चंगुल में फंसकर दलित जीवन बितानेवाले बिहार के रामपुर गांव के गरीब कृषक वर्ग के द्वारा लेखक सामाजिक विषमता का घोर रूप प्रस्तुत करते हैं ।

आत्मकथात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास में गरीब, निम्नवर्गीय बलचनमा के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों का परिचय मिलता है । मालिकों के जूठन खाकर, उनकी सेवा शुश्रूषा करके बिलकुल घृणित जीवन बिताने वाला बलचनमा फूलबाबू के साथ पाटना जैसे महानगर में पहुँचता है । शहरी जीवन में वह अपने चारों ओर की परिस्थितियों से परिचित होता है । परिवेश से उसका संबंध देश की तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों तक की तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों तक व्याप्त होता है । नि:स्वार्थ कहनेवाले कांग्रेसी नेताओं के स्वार्थी कपट मुख देखकर उसे मालूम होता है कि अपने जैसे निम्नवर्गीय का उद्धार बाबू लोगों से संभव नहीं होगा । अत: वह दलित, पीड़ित, श्रमिक वर्ग के हिमायती समाजवादी विचारों से प्रभावित होता है । राधे बाबू के संपर्क से, उसके साथ के जीवन से वह प्रगतिवादी विचारों से खूब प्रभावित होकर कामरेड बन जाता है । भिन्न विचारवाले मालिकों के साथ विभिन्न परिस्थितियों और अनुभवों से गुज़रकर बलचनमा निडर और साहसी बन जाता है । अपने वर्ग के अधिकारों के प्रति भी वह सजग हो जाता है । वापस गांव आता है तो अपने वर्ग से मालिक के अत्याचार और अन्याय देखकर क्षुब्ध हो जाता है । मालिक के विरुद्ध गरीबों को संगठित करने का भार वह स्वयं अपने ऊपर ले लेता है । अन्यायी मालिक के विरुद्ध संघर्ष करने में वह निम्न वर्ग को सुसज्जित रखता है । गांव के संपूर्ण शोषित वर्ग का दमित क्रोध बलचनमा के द्वारा फूट निकलता है । अन्त में मालिक के लोगों की मार पीट खाकर भी बलचनमा पराजय स्वीकार नहीं करता । मालिक के गुलाम से लेकर कृषक नेता तक के बलचनमा के विकास के द्वारा तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थितियों का परिचय उपन्यासकार ने दिया है । बलचनमा शोषण और अन्याय के विरुद्ध निरन्तर संघर्षरत भारतीय किसान का उज्ज्वल प्रतीक है ।

नयी पौध

सन् 1953 में प्रकाशित "नयी पौध" उपन्यास का घटनास्थल मिथिला का नौगछिया गाँव है। यहाँ की पुरानी सामन्ती व्यवस्था के पुराने विश्वासों, रूढियों, आचार विचार, धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध गाँव के कुछ नवयुवकों की जागृत चेतना ही उपन्यास की कथावस्तु है। सौराठ के मेले में शादी के उम्मीदवार एकत्रित होते हैं। वहाँ लड़की या लड़के का विवाह पक्का किया जाता है। इस मेले में नौगछिया गाँव का खोंखई पण्डित अपनी नतनी पन्द्रह वर्षीय विश्वेश्वरी के लिये वर ढूंढ निकालता है - साठ साल का बूढा चतुरानन चौधरी। नौ सौ रुपये में विश्वेश्वरी बूढे से शादी करने में विवश की जाती है। पिता के धनमोह के विरुद्ध विश्वेश्वरी की विधवा माँ रामेश्वरी मुँह भी नहीं खोल पाती। क्योंकि अपने पूज्य पिता द्वारा अपनी बहिनों को बेचे जाने की वह साक्षी है। रामेश्वरी अपनी बेटी को इस विवाह से बचाना चाहती है। पर वह असमर्थ है।

विवाह की सारी तैयारियाँ होती है। पाँच लड़कों का पिता चतुरानन चौधरी दुल्हे की वेष भूषा में उपस्थित हो जाता है। तभी गाँव के कुछ शिक्षित, प्रगतिशील विचारवाले युवकों का संघ बमपार्टी शादी का विरोध करके सामने आता है। पहले वे चौधरी को समझा बुझाकर वापस जाने की प्रार्थना करते है। लेकिन चौधरी मानता नहीं तो वे बल के प्रयोग से उसे वापस भेज ही देते हैं। बमपार्टी के नेता वाचस्पति विश्वेश्वरी से शादी करके परंपरागत विवाह रीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाता है। समाज की प्रगति में बाधक परंपरागत मान्यताओं और दुराचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाला यह उपन्यास नागार्जुन की प्रगति चेतना का अन्यून परिचायक है।

बाबा बटेसरनाथ

रचनाकाल की दृष्टि से सन् 1954 में प्रकाशित बाबा बटेसरनाथ नागार्जुन का चौथा उपन्यास है । इसमें एक वटवृक्ष की आपबीती कहानी के द्वारा उपन्यासकार ने जगबीती घटनायें प्रस्तुत की है । मिथिलांचल रूपउली के एक वटवृक्ष द्वारा वहाँ के युवा नेता जैकिसुन को सुनाने की रीति में कथा विकसित होती है । बरगद बाबा सौ वर्षों से गाँव की सभी घटनाओं का साक्षी है, गाँव की आत्मा है, उसका इतिहास है । जैकिसुन के परदादा और दादी के द्वारा आँख की पुतली के समान संरक्षित बरगद गाँववालों के सुख दुःखों का सह भोक्ता है जो अकाल हो या बाढ सभी प्राकृतिक विक्षोभों में उनका सहायक रहता है । उसने साम्राज्यवादी शोषण से विवश गाँववालों का दुःख देखा है, ज़मीन्दारी अत्याचारों में कृषकों की दुरवस्था का भी अनुभव किया है । अंग्रेज़ शासकों के शोषण और अत्याचार में पीड़ित, भयभीत, ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र वह जैकिसुन के सामने प्रस्तुत करता है । वह जैकिसुन को तत्कालीन ज़मीन्दारी शोषण का भी परिचय देकर शोषण के विरुद्ध युवशक्ति को एकत्रित होकर संघर्ष करने का उपदेश देता है । स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति बरगद बाबा के लिये दुःखदायक है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ज़मीन्दारी प्रथा के उन्मूलन का नियम सरकारी द्वारा घोषित किया गया । ज़मीन्दारी कायदे की पतनोन्मुख अवस्था में लालची जमीन्दारों द्वारा सार्वजनीय उपभोग की भूमि बेची जा रही है । इस प्रकार बरगदवाली भूमि लोभी टुनाई पाठक द्वारा खरीदी जाती है । वह सालों पुराने वटवृक्ष को काटने का आयोजन करता है । जैकिसुन, दीनानाथ आदि के नेतृत्व में संगठित जनता इनके षड्यंत्रों को तोड़ती है । वर्ग बोध उत्पन्न कराके संघर्ष द्वारा सामाजिक प्रगति का यह नया आह्वान है ।

वरुण के बेटे

सन् 1957 में प्रकाशित "वरुण के बेटे" में मछुआ गांव गोंठियारी में हुए वर्ग संघर्ष की कथा है । बिहार के मलाही गोंढियारी के मछुए ज़मीन्दारों के पोखरों में मछली पकड़कर जीवन यापन करनेवाले हैं । तीन सौ सालों से ये गढपोखर से मछली पकड़ते आ रहे हैं । कड़ी सर्दी में आधी रात भी समुद्र की लहरों से संघर्ष करते ये जीवन बिताते हैं । अपने परिवेश से अनजान यह गरीब वर्ग परंपरा से चले आनेवाले ज़मीन्दारी शोषण से भी अपरिचित हैं । जीवन का हर कदम संघर्ष में जूझनेवाले इनका जीवन ज़मीन्दारों के स्वार्थ से और भी यातनामय हो जाता है । जमीन्दारी उन्मूलन का नियम लागू होने पर उनकी स्थिति बदतर हो जाती है । नियम से भयभीत जमीन्दार पोखरों और चरागाहों को जल्दी से जल्दी बेचने लगे । इस स्थिति में गढपोखर के वास्तविक अधिकारी देपुरा के ज़मीन्दार उसे सतघरा के जमीन्दार बेचता है, यह घटना जमीन्दार के विरुद्ध मछुओं के संघर्ष का कारण बन जाती है । एक ओर जमीन्दार और उनकी सहायता में आये सरकारी अफसर और दूसरी ओर अपने सर्वस्व गढपोखर को वापस मिलने के लिये संघर्षरत भोला, खुरखुन, बिसुनी, रंगलाल जैसे अनेकानेक गरीब मछुए । पोखर का नया खरीददार सतघरे का जमीन्दार उस पर अधिकार जमाना चाहता है । लेकिन गांव के मछुए अपने इस पुश्तैनी अधिकार पर इस अनावश्यक हस्तक्षेप के विरुद्ध संगठित हो जाते हैं । ज़मीन्दार सरकारी सहायता से मछुओं के संगठन के दमन का प्रयत्न करता है । संघर्ष की चरमसीमा में गढपोखर पर दफा 144 लगाया जाता है । ज़मीन्दार की मांग के अनुसार पुलीस मछुओं को गढपोखर में प्रवेश करने में पाबन्दी रखती है । डेप्युटी मजिस्ट्रेट द्वारा मछुए नेताओं से बातचीत होती है । लेकिन समस्या का समाधान नहीं होता । मोहन मांझी के नेतृत्व में मधुरी, मंगल, जलेसर, कन्हाई जैसे मछुए युवक युवतियां संघर्ष केलिए आगे बढते हैं और वे सब

गिरफ्तार किये जाते हैं । अपने अधिकारों की रक्षा के लिये गिरफ्तार होनेवाले ये आवेश में नारे लगाते हैं - "इन्किलाब ज़िन्दाबाद" क्रान्ति की शाश्वत विजय की घोषणा करनेवाले इन नारों में उपन्यास समाप्त होता है ।

दुखमोचन

सन् 1957 में प्रकाशित "दुखमोचन" मिथिलांचल टकमा कोइली के पुनर्निर्माण की कथा है । दुखमोचन गांव का एक नि:स्वार्थ सेवक है जो अपनी पत्नी की असामयिक मृत्यु रूपी वैयक्तिक दु:ख को समाज सेवा में निरत होकर भूलना चाहता है । इसके लिये दुखमोचन को मामी से प्रेरणा मिलती है जो अपने वैधव्य जीवन को परहित के लिये उपयुक्त कराकर सार्थक बनाती है । गांववालों के दु:ख को अपना दु:ख माननेवाला दुखमोचन ग्रामीण प्रगति के लिये सेवारत है । रामसागर की मां की मृत्यु पर दाहसंस्कार के लिये लकडी न होने पर दुखमोचन अपने घर में तख्त बनवाने में रखी लकडी उसे देता है । गांव में चर्मरोग फैलने पर वह दरभंगा के विशेषज्ञ से मिलकर इलाज के लिये जिलाधिकारियों से प्रबंध करवाता है । बाढ से पीडित भूखे अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता के लिये वह शहर से गेहूं जमाकर वितरण करता है । लेकिन गांव के कैनाथ नित्याबाबू जैसे स्वार्थी संपन्न दुखमोचन की इस जनसेवा से ईर्ष्यालु है और वे हमेशा उसे फंसाने और नीचे दिखाने की ताक में रहते हैं । लेकिन दुखमोचन किसी का पर्वाह किये बिना सार्वजनिक कार्यों में गांववालों को जुटाने का प्रयत्न करता रहता है । गांव के भयंकर अग्निपात में सर्वस्व भस्मीकृत गांवके पुनर्निर्माण का श्रम दुखमोचन और उसके साथियों द्वारा संपन्न होता है । आसपास के गांवों और राजनीतिक पार्टियों की भी सहायता इस विषय में उन्हें मिलती है । विधवा माया की शादी राजपूत युवक कपिल से कराकर

पुरानी रूढियों को जड से उखाडने की प्रेरणा दुखमोचन ग्रामीणों को देता है । दुखमोचन के प्रगतिपूर्ण विचारों के सामने प्रतिगामी शक्तियां घुटने टेकती है ।

प्रत्यक्ष में वर्ग संघर्ष का आह्वान न होने पर भी पुरानी मान्यताओं और परंपरागत विश्वासों को चुनौती देनेवाला दुखमोचन वास्तव में प्रगति के पथ का अगुआ है ।

कुंभीपाक

सन् 1960 में प्रकाशित "कुंभीपाक" उपन्यास का आधार पाटना और बंगाल के महानगरों में होनेवाला स्त्री व्यापार है । स्त्री को बिकाऊ माल माननेवाले पुरुषों से नियंत्रित समाज में स्त्री शोषण का साधन बनी रहती है । यहाँ स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं । वह अपना असली नाम तक खो चुका है । भुवन यानी इन्दिरा, चम्पा यानी बुआ, कम्पाउण्डर की पत्नी उर्फ निर्मला, प्रतिभामा सबके सब शोषित स्त्री समाज के विभिन्न पहलू है । इन्दिरा जो विधवा होने के बाद गर्भवती हो जाती है, एक रिश्तेदार पुरुष द्वारा धर्मशाला में छोडी जाती है । वहाँ लडकियों के व्यापार करनेवाले शर्माजी की पकड में वह पहुंच जाती है । लेकिन पडोसिन कम्पाउण्डर की बीबी निर्मला के द्वारा वहाँ से उसे मुक्ति मिलती है । चंपा विवाह के दो वर्ष बाद विधवा हो जाती है । विवाह के पूर्व ही उसे अपने जीजा ने अपनी बाहों में समेट लिया था । विधवा चंपा बहिन की मृत्यु के बाद जीजा से विवाह का अनुरोध करती है । लेकिन उसका शारीरिक शोषण करनेवाला जीजाजी माँ के डर से यह प्रार्थना स्वीकार नहीं करता । उपेक्षित चंपा एक मुसलमान युवक सफ्दर के साथ पाकिस्तान भागती है । वहाँ सफ्दर की मार पीट से तंग आकर परिवार के साथ भारत लौटते वक्त अपने दो छोटे बच्चों को छोड़कर भाग जाती है ।

फिर सतवन्त कौर के नाम से होटल चलानेवाली चंपा तीन सरदारों से संबंध रखती है और अपने साथ तीन लड़कियों को भी रखती है । चंपा से संबन्धित एक पुरुष की हत्या पर उसे छः मास जेलवास भुगतना पड़ता है । जेल से मुक्त होकर चंपा का मिलन औरतों की बिक्री के पेशे में लगे शर्माजी से होता है और उसके साथ होकर वह मनोरमा मन्नो आदि लड़कियों को बेचती है । अन्त में चंपा अपनी सभी गलतियों से मुक्त होकर अपनी जैसी शोषित स्त्रियों के पथ प्रदर्शन के लिये एक शिल्प कुटीर चलाने लगती है । अपने पूर्व जीवन की अंधकारमय यादों से दूर चंपा स्त्री की आत्मनिर्भरता का साकार रूप बन जाती है । नारी स्वतंत्रता का सन्देश भी वह देती है ।

नारी के तौर पर चंपा का शोषण वैधव्यजनित है और वह समाज के एक प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधि है तो उम्मी की माँ शोषित औसत गृहस्वामिनी का प्रतीक है । गृहस्वामी पुरुष के अधीन अस्वतंत्र रहने में वह अभिशप्त है । पति की इच्छा के विरुद्ध बेटी को उसके प्रेमी के साथ शादी कराना उसकी दमित स्वातंत्र्येच्छा का प्रस्फुटीकरण है । फिर वह घर छोड़कर बेटी और दामाद महिम के साथ रहने लगती है । यहाँ वह अपनी दमित वासना की पूर्ति महिम से कर लेती है । माँ के साथ पति के अनैतिक संबंध को आँखों के सामने देखकर उम्मी पति को छोड़कर फिर पिता की शरण में जाती है । उम्मी की माँ महिम के साथ रहने लगती है और अन्त में बीमार महिम की जान बचाने के लिये उसे माँ के साथ भेज देती है ।

प्रतिभामा अबोध, अज्ञान साधारण घरवाली है जो हर साल पैदा होनेवाले बच्चों से परेशान है । बच्चों की देख रेख में उसका जीवन घर की चहरदीवारी में कैद है । बच्चों के आधिक्य पर प्रतिभामा दुःखी है तो निर्मला अपनी गोदी के सूनेपन पर रोनेवाली है । जीवन की यह रिक्तता वह लोकोपकार में भूल जाती है । इन्दिरा को शर्माजी से मुक्त कराकर वह अपनी बहिन के पास सुरक्षित भेजती है और उसे

नया जीवन देती है । इस प्रकार विभिन्न स्तर की स्त्रियों को प्रस्तुत करके आर्थिक सुरक्षा के ज़रिये स्त्री को आत्मनिर्भरता और तद्वारा उसकी स्वतंत्रता का आह्वान उपन्यास में हुआ है ।

हीरक जयन्ती

सन् 1962 में प्रकाशित "हीरक जयन्ती" नागार्जुन का आठवाँ उपन्यास है । इसमें स्वतंत्र भारत के चरित्रहीन, भ्रष्ट, स्वार्थी सत्ताधारियों पर नागार्जुन ने व्यंग्य किया है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति से भारत में शोषकों का एक नया वर्ग उभर आया, नेताओं और मंत्रियों का वर्ग । वास्तव में वर्तमान प्रजातंत्र में शोषण पहले के समान जारी रहा । उपन्यास में मंत्री नरपति नारायण सिंह और स्वार्थ लोभ में उसकी चापलूसी करनेवाले कुछ व्यक्तियों के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश किया गया है । कलकत्ते के एक केन्द्रीय मंत्री की हीरक जयन्ती कुछ पूंजीपतियों धूम धाम से मनाया जाता है । इससे प्रेरणा पाकर कवि मृगांक अपने प्रदेश के मंत्री बाबू नारायण सिंह की हीरक जयन्ती मनाने की योजना बनाता है । इसके पीछे उसका स्वार्थ मोह अवश्य है । समाज की उन्नत श्रेणी के अनेक व्यक्तियों को लेकर अभिनंदन के लिये समिति बनायी जाती है । हीरक जयन्ती में रूपयों की थैली और उसकी प्रशंसा में अभिनंदन ग्रंथ छपवाने का आयोजन होता है । मंत्री और समारोह समिति के पन्द्रह सदस्यों के कलुषित जीवन का वर्णन इस सिलसिले में हुआ है जिससे राजनीतिक भ्रष्टाचारों को असली रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

उग्रतारा

"उग्रतारा" का प्रकाशन वर्ष सन् 1963 है । इसका मुख्य प्रतिपाद्य नारी शोषण है ।

कामेश्वर बीस वर्षीय राजपूत नौजवान है । विवाह के छ: महीने बाद उसकी पत्नी की मृत्यु होती है । फिर अनेक दिन कोई लड़की विधुर कामेश्वर का दिल चुरा नहीं सकी । लेकिन धीरे धीरे उग्रतारा यानी उगनी की ओर वह आकर्षित होता है । उगनी भी विधवा है । स्टीमर दुर्घटना में उसके पति का देहान्त हुआ था । रूप और यौवन युक्त विधवा उगनी रूढ़िग्रस्त समाज में पुनर्विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकती थी । इसलिये उगनी, कामेश्वर के साथ गाँव से भाग जाती है । इसके लिये उन्हें नर्मदेश्वर की भाभी की सहायता मिलती है । लेकिन स्वस्थ पारिवारिक जीवन की इच्छा में निकले इन दोनों को समाज चैन से रहने नहीं देता । गाँव के कुछ परंपरावादी इस घटना को अपनी प्रतिष्ठा का सवाल मानते हैं और दोनों पकडे जाते हैं । उगनी को एक महीने की कैद और कामेश्वर को नौ मास की सजा दी जाती है । कैद की अवधि पूर्ण करके बाहर निकली उगनी निरालंब हो जाती है । कामेश्वर दूर किसी जेल में था । आश्रयहीन उगनी को जबर्दस्ती से सिपाही भभीखन सिंह अपनी पत्नी बना देता है । उगनी पचास साल के अधेड भभीखनसिंह की घरवाली बन जाती है और उससे गर्भवती हो जाती है । इतने में जेल से मुक्त कामेश्वर उगनी की ढूँढ में फेरीवाला बनकर घूमता फिरता है । जेल के कर्मचारियों के क्वार्टर में वह अपनी प्रेमिका को देखता है । नि:सहाय उगनी को वह वहाँ से बचाता है और दोनों भाग जाते हैं । नर्मदेश्वर की भाभी की उपस्थिति में, उसी के घर में कामेश्वर

गर्भवती उगनी की माँग में सिन्दूर भराता है । इस उपन्यास में लेखक ने नारी शोषण का प्रतिपादन करके उसकी स्वतंत्रता की अनिवार्यता पर संकेत किया है ।

इमरतिया

सन् 1968 में प्रकाशित "इमरतिया" "जमनिया का बाबा" नाम से सन् 1969 में पुन:प्रकाशित हुआ । इसमें नागार्जुन मन्दिरों और मठों की आड में चालू होनेवाली धार्मिक कुरीतियों और शोषण का चित्रण करते हैं ।

नारायणी नदी के किनारे स्थित जमनिया का मठ कोई परंपरागत प्रामाणिक मठ नहीं है । दस बारह वर्ष पहले वहाँ कुछ नहीं था, वीरान था । जमीन्दारी ताल्लुकेदारी प्रथा का उन्मूलन नियम पास हुआ तो जमनिया और लखनौली के दो तीन भूस्वामियों ने ज्यादा ज़मीन हडपने के लिये रातों रात मठ की स्थापना की । मठ में वे जटाधारी औघड बाबा को भी लिवा लाये । ज़मीन्दारों ने इस विचित्र आदमी को मठ का महन्त घोषित किया । यहाँ की माई इमरतीदास यानी इमरतिया, जमनिया का बाबा, साधु मस्तराम ज़मीन्दार भौंती - इन चारों की अपनी यादों के रूप में कथा विकसित होती है ।

जमनिया मठ सभी समाज विरोधी कार्यों का अड्डा है । धर्म के नाम पर सभी अनैतिक आचरण इस मठ की निगूढता में हुआ करता है । मठवालों द्वारा सिद्धई वृद्धि के लिये दुर्गाष्टमी के दिन मधुआइन लक्ष्मी के बच्चे की बलि दी जाती है । इस घटना के बाद लक्ष्मी पागल हो जाती है

और दुरूह वातावरण में उसकी मृत्यु भी होती है । इस मृत्यु के अन्वेषण में आये पुलीस अफसर को "स्त्री सुख" देकर रिकार्ड भी बदल दिया जाता है ।

एक दिन एक शिक्षित समाज सेवक स्वामी अभयानंद मठ में आता है । महन्ती दरबार को जय बोलने में इनकार करने पर मस्तराम द्वारा वह खूब पीटा जाता है । अभयानंद समाचार पत्रों के द्वारा मठ के सभी अनैतिक कार्यों को दुनिया के सामने प्रस्तुत करता है । बाबा, मस्तराम और माई इमरतीदास पुलीस के हवाले रह जाते हैं । लेकिन जेल के पुलीस अधिकारी भी बाबा के चमत्कारों से प्रभावित हो जाते हैं । इतने में बाबा और जमनिया मठ के बारे में व्याप्त जनश्रुतियों की असलियत जानने के लिये संवाददाता अन्वेषण करने निकलते हैं । उनके अन्वेषण में यह स्पष्ट हो जाता है कि जमनिया का बाबा असल में करीम बक्श नामक मुसलमान है । अपने घोर अपराधों की सजा से बचने के लिये वह नेपाल भागा था और वहाँ भी अपने कुकर्मों के लिये मारा पीटा गया था । बाबा की असलियत जानने पर इस मामले से अपने को बचाने के लिये उसके समर्थक लालता प्रसाद, राम जनम, सुखदेव, सेठ विर्धीचन्द्र, ठाकुर शिवपूजन सिंह आदि स्वार्थी "भक्त" मठ से अपना संबंध छोड देते हैं । बाबा के भक्त पुलीसवाले भी उससे विमुख हो जाते हैं । बाबा का चेला मस्तराम अपना भयानक रूप छोडकर एक नया जीवन बिताना चाहता है । इसलिये जेल में मिलने आयी इमरतिया को हरिद्वार में मिलने की सूचना देकर भेज देता है । मठों में विराजमान आध्यात्मिकता के वक्ता साधु सन्तों के भ्रष्ट जीवन पर प्रकाश डालनेवाला यह उपन्यास मनुष्य की प्रगति में बाधक रूढियों और अंधविश्वासों के आमूल नाश पर ज़ोर देता है ।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यासों में जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति पहले प्रेमचन्द में दृष्टव्य है। अपने समय की सच्चाई के प्रति यह संवेदनशीलता और तत्कालीन प्रचलित मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रभाव ने उन्हें समाज के दलित दमित वर्ग, विशेषकर किसान वर्ग के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करने में प्रेरित किया। उनके अधिकांश उपन्यास कृषक जीवन की दयनीयता और अपने अधिकारों के लिये जमीन्दारों से उनके संघर्ष पर आधारित है। प्रेमचन्द के बाद इस परंपरा को यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन जैसे मार्क्सवादी प्रगतिवादी रचनाकारों ने प्रश्रय दिया। इन्होंने स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के दो विशिष्ट पहलू - किसान ज़मीन्दार संघर्ष तथा मज़दूर पूंजीपति संघर्ष का यथार्थ चित्र अंकित किया। यशपाल के उपन्यासों में तत्कालीन पूंजीपति मज़दूर संघर्ष का सक्रिय और सशक्त रूप दिखायी पड़ता है। इनके अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, रेणु आदि के द्वारा भी समाज के दो वर्गों के बीच का संघर्ष चित्रित किया गया। आधुनिक उपन्यासकारों में नागार्जुन वर्गसंघर्ष के प्रमुख प्रवक्ता रहे हैं। विषमतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के लिये वर्ग संघर्ष को अनिवार्य माननेवाले नागार्जुन सही अर्थ में प्रेमचन्द परंपरा का उत्तराधिकारी है। प्रेमचन्द के समान उन्होंने भी आंचलिक परिवेश में गांव के पीड़ित वर्ग की समस्याओं को प्रस्तुत किया। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रेमचन्द के समान किसान ज़मीन्दार संघर्ष की प्रधानता है। नगर की पूंजीवादी सभ्यता नहीं, गांव का सामन्तवादी शोषण उनके उपन्यासों का विषय रहा है। नागार्जुन ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रजातंत्र में राजनीतिक नेताओं द्वारा जनशोषण का भी चित्रण किया। प्रेमचंन्द की तुलना में नागार्जुन की विशेषता यह है कि प्रेमचन्द ने गरीबी और शोषण की अभिव्यक्ति करके

भी इनसे मुक्ति का मार्ग नहीं बताया । लेकिन नागार्जुन के पात्र पीडा और अपमान सहकर भी जीवन में आस्था रखनेवाले, भविष्य के प्रति सुन्दर सपने संजोनेवाले हैं । ये, संघर्ष में अन्तिम विजय के लिये आतुर है । निःसंदेह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग में प्रस्फुटित यह यथार्थवादी सामाजिक चेतना नागार्जुन में आकर प्रौढ़ और परिमार्जित रूप प्राप्त कर चुका है ।

चौथा अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग - संघर्ष

चौथा अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग - संघर्ष

हर समाज में दो वर्ग हुआ करते हैं - एक साधन संपन्न वर्ग और दूसरा साधनहीन वर्ग । इस वर्गीकरण का आधार आर्थिक है । प्रत्येक समाज का संपन्न वर्ग अर्थ और तज्जन्य अधिकारों के बल पर आर्थिक दृष्टि से गरीब वर्ग को सताता आ रहा है । अल्पसंख्यक संपन्नों द्वारा बहुसंख्यक गरीबों के शोषण और दमन सदियों से चालू है । इसके विरुद्ध समय समय पर शोषित जनता मुक्ति की आकांक्षा करती रहती है और उसके लिये प्रयत्नरत भी रहती है । इतिहास ऐसे वर्ग समरों का साक्षी है । समाज में इन दो वर्गों के बीच का संघर्ष जितना प्रखर होता है, जितनी तीव्रता से शोषित वर्ग शोषक के विरुद्ध संघर्षरत रहता है, सामाजिक जीवन में उतनी ही तीव्रता से प्रगति संभव होती है । नागार्जुन ने अपने अधिकांश उपन्यासों में

वर्ग संघर्ष का सक्रिय पक्ष उभारते हुए सामाजिक प्रगति को वाणी दी है ।

नागार्जुन के उपन्यासों का कालखण्ड अंग्रेज़ों के भारत आगमन से लेकर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तथा उसके बाद तक विस्तृत है । इस लंबी अवधि की ज्यादातर घटनाओं के साथ समय समय के शोषण और दमन भी उनके उपन्यासों में समाहृत है । अंग्रेज़ी आधिपत्य में शासक अंग्रेज़ों द्वारा गरीब वर्ग का शोषण हुआ तो सामंती समाज में यह शोषण ज़मीन्दारों द्वारा और औद्योगीकरण से पूंजीपतियों द्वारा ज़ारी रहा । स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी गरीब जनवर्ग शोषण की पकड से मुक्त नहीं हुआ । सत्ताधारी नेताओं द्वारा शोषण का सिलसिला चालू ही रहा । नागार्जुन के उपन्यासों में शोषण के विभिन्न आयामों और उसके विरुद्ध संघर्ष का सही चित्रण हुआ है । उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त संघर्ष प्रमुखतया इस प्रकार है :-

1. साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध जन संघर्ष
2. किसान-ज़मीन्दार संघर्ष
3. मज़दूर-पूंजीपति संघर्ष
4. सत्ता तथा नौकरशाही शोषण के विरुद्ध आम जनता का संघर्ष
5. शोषण के विरुद्ध नारी का संघर्ष तथा
6. धार्मिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष ।

1. साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध जनसंघर्ष

अपने माल के लिये विस्तृत बाज़ार की खोज में पूंजीपति वर्ग दुनिया के कोने कोने को छानता रहता है । इस क्रम में वह हर जगह घुसता है, हर स्थान में अपना संपर्क कायम करने को बाध्य

होता है । मुनाफा बढ़ाने के क्रम में, अपने व्यापार क्षेत्र को विस्तृत करने के उद्देश्य में दूसरे देशों में वह अधिकार जमाता है । इस प्रकार पूंजीवाद साम्राज्यवाद में परिवर्तित होता है ।[1] भारत में अंग्रेज़ साम्राज्यवाद की नींव भी इसी प्रकार रखी गयी थी ।

अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेज़, भारत में पहले व्यापारियों के रूप में आए और यहाँ की राजनीतिक अराजकता से लाभ उठाकर अपनी कूटनीति, सामुद्रिक सामरिक शक्ति और सैनिक संगठन से इस देश में अपना शासन स्थापित करने में सफल हुए । ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा ब्रिटीश साम्राज्यवाद ने भारत में विकास प्राप्त किया । भारत ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया, जिसका कार्य ब्रिटेन को कच्चा माल भेजना था । अंग्रेज़ों ने यहाँ के स्थानीय उद्योग धंधों की बर्बादी की । भारतीय जनता पर उनका नृशंस अत्याचार होने लगा ।

<u>अंग्रेज़ी शोषण और अत्याचार का चित्रण</u>

अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों पर हुए शोषण और अत्याचार नागार्जुन के "बाबा बटेसरनाथ", "कुंभीपाक", "नयी पौध" आदि उपन्यासों में अभिव्यक्त है । अंग्रेज़ी शोषण की चक्की में पिसनेवाले भारतीयों का खासकर यहाँ के गरीब किसानों का दयनीय जीवन "बाबा बटेसरनाथ" में विस्तार से वर्णित है ।

---

1. Manifesto of the Communist Part - Marx Engels, p.46

अंग्रेज़ी शासन भारत की अपार संपत्ति और यहाँ के गरीबों के श्रम के शोषण पर आधारित था । अत: उनकी सत्ता का दुष्परिणाम यहाँ के साधारण जनता को भुगतना पड़ा । ये, भयानक शोषण और अत्याचारों के शिकार रहे । रूपउली गाँव में अंग्रेज़ी शोषण का विकराल रूप "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का वटवृक्ष यों प्रस्तुत करता है "धनी अंग्रेज़ देहात में आकर बसते थे और निरीह निर्धन ग्रामीणों को अपनी सेवा के लिये गुलाम बना देते थे । वह उनका पूरा मालिक था - मेहनत का, जान का और माल का भी । xxxx शहर हो चाहे देहात, व्यापार-वाणिज्य का क्षेत्र हो या किसानी ज़मीन्दारी का, जज-कलक्टर होता हो या सेक्रेटेरियट - सभी जगह गोरी चमड़ीवालों की तूती बोलती थी । कानून और हुकूमत उनके बूटों की कीलों के नीचे थे । राजाओं के मुकुट और ज़मीन्दारों के तुर्रेदार पग्गड़ फिरंगियों के रास्ते की धूल के ज़र्रों को चूमने के लिये बेताब दीखते थे ।[1]"

अंग्रेज़ी आधिपत्य ने कृषि प्रधान देश भारत के देहातों को पूर्ण रूप से चौपट कर दिया । उनके आगमन के पूर्व सुशासित, आत्म-निर्भर गाँवों का वातावरण धीरे धीरे कलुषित होने लगा । यातायात की सुविधा और अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से अंग्रेज़ों ने भारतीय गाँवों का शासन अपने हाथ में ले लिया । अंग्रेज़ों द्वारा ज़मीन्दारी प्रथा लागू होने से कृषक जीवन और भी दयनीय हो गया । देशी ज़मीन्दार शोषण में अंग्रेज़ों के सहायक रहे । भारतीयों का खूब शोषण करके अंग्रेज़ आडंबरपूर्ण जीवन बिताते थे । शोषण और विलासिता बाबा बटेसरनाथ के शब्दों में "एक साहब आकर बस गया ।

----

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ.5।

क्या ही शानदार कोठी बनवायी थी उसने । महाराज बहादुर से दो सौ एकड ज़मीन सौ साल के पट्टे पर नील की खेती के लिये उसको मिली थी । xxxxxxx प्रति बीघा तीन कट्ठा ज़मीन में नील की खेती करने के लिये किसान मज़बूर किये जाते थे । xxxxx जो नहीं मानता, उसे कई तरह से परेशान करते थे[1] ।"

अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद ने भारत के स्थानीय उद्योगों का गला घोंट दिया । इंग्लैंड में निर्मित कपडे, लोहे के सामान और हर प्रकार के माल आयात होने से यहाँ के लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन हो गया । मशीनीकरण प्रक्रिया ने देहातों में परंपरागत उद्योगों में जुटे श्रमिकों को बेकार बना दिया । "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का रूपउली गाँववाले ऐसे शोषण के शिकार है[2] ।"

गाँव के गरीब वर्ग पर अंग्रेज़ों के अत्याचारों की कोई हद नहीं । वे कई तरह पीडित किये जाते है । छोटी सी गलती पर उग्र दण्ड उन्हें सहना पडता है । जैकिसुन के दादे पर हण्टरों की बौछार इसलिये पडता है कि वह साहब को सलाम करने से चूक गया था[3] । इसी प्रकार अंग्रेज़ राज को जय बोलने में इनकार किये जीवनाथ को मार कर गिरा दिया जाता है[4] । अकाल जैसी विडंबना के अवसर शोषण उसके भयानक रूप में प्रकट होता है । अकाल से पीडित जनता जब एक जून के भोजन के लिये तडपती है, तो अंग्रेज़ शासक इस अवसर का

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ.60-61
2. वही, पृ.71
3. वहीं, पृ.61
4. वही, पृ. 90

लाभ उठाते है । भूख मिटाने की लालच में रेल कंपनी में काम करने आये गरीबों के मेहनत का खूब शोषण किया जाता है । अपने कठिन श्रम के लिये उन्हें दुअन्नी ही मिलती है जो उनके एक वक्त के खाने के लिये भी पर्याप्त नहीं[1] ।

शोषण के विरुद्ध जनसंगठन और संघर्ष

उन्नीसवीं शती का आरंभ भारत में साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जनता के मुक्ति आन्दोलनों का काल है । अंग्रेज़ी आधिपत्य से मुक्ति के लिये भारतीय जनता अनेक उपायों को - संघर्ष के अनेक मार्गों को अपना रही थी । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये गांधीजी के नेतृत्व में यहाँ असहयोग आन्दोलन, नमक आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोडो आन्दोलन आदि संपन्न हुए । नागार्जुन के उपन्यासों में इन देशव्यापी जनसंघर्षों का विस्तृत प्रतिपादन है ।

सन् 1920 में अंग्रेज़ों को देश से भगाने के प्रयत्न में असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ । अदालत, विद्यालय तथा सरकारी उपाधियों का पूर्ण बहिष्कार हुआ । इस देशव्यापी आन्दोलन का वर्णन बाबा बटेसरनाथ करता है । "सन् 1920 के अन्त में कांग्रेज़ ने असहयोग और बहिष्कार का नया लडाकू प्रोग्राम अपनाया था । बडे नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी । राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम की धारा लोक चेतना के समतल मैदान में उतर आयी xxxxx असहयोग का वह जमाना अद्भुत था ।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 45

देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पन्दित होकर अंगड़ाइयाँ ले रहा था । xxxx गाँधीजी को छोड़कर तमाम प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये - मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चित्तरंजनदास, लाला लजपतराय वगैरह । उन्हें जेलों में बन्द कर दिया गया । स्वराजी कैदियों की तादाद 30,000 तक पहुँच गयी[1] ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्वतंत्रता संग्राम की एक नयी सीढ़ी है । अंग्रेज़ों के जनविरोधी कानूनों से ऊबी भारतीय जनता इन नियमों को तोड़ने के लिए तैयार हो गयी । नमक जैसी महत्वपूर्ण, सर्वसुलभ वस्तुओं को भी कर के बोझ से दुर्लभ बनाने के अंग्रेज़ों का श्रम जनता सह नहीं सकी । इस नियम के उल्लंघन के परिप्रेक्ष्य में गाँधीजी के नेतृत्व में अनेकों ने नमक बनाकर नियम को तोड़ा । रूपउली गाँववाले भी स्वतंत्रता संग्राम के इस नूतन कदम से अपरिचित नहीं । गैर कानूनी ढंग से नमक बनाकर दयानाथ लोगों को उद्बोधित करता है, जो अंग्रेज़ी-नीति के विरुद्ध औसत भारतीय के विद्वेष का परिचायक है । वह कहता है "इसे आप मामूली मिट्टी मत समझें । यह तो स्वाधीनता दिलानेवाली दवा है । इसके ज़र्रे-ज़र्रे से अंग्रेज़ सरकार खौफ खाती है । इस नमक की एक चुटकी एक ओर जालिमों का सौ मन बारूद दूसरी ओर वह इस की बराबरी नहीं कर सकता[2] । कानून तोड़ने के अभियोग में जैनरायन, जानू राउत, दयानाथ जैसे रूपउलीवाले गिरफ्तार किये जाते हैं[3] ।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ.72
2. वही, पृ.76
3. वही, पृ.77

अंग्रेज़ी शोषण से साधारण भारतीय का निकट परिचय उसे शासन का विरोधी बना देता है । देश भर के लोग अपने सुख दुःख की पर्वाह किये बिना, शिक्षा और आजीविका को भी छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ते हैं । विद्यार्थी स्कूल, कालेज छोड़ दिये तो सयाने दफ्तरी-मास्टरी का बहिष्कार करके बाहर निकले । नागार्जुन के "बलचनमा", "नयी पौध", "हीरक जयन्ती" आदि उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन के इस विशेष पहलू का उल्लेख मिलता है । "बलचनमा" उपन्यास का फूल बाबू अपने गाँव से पाटना में वकालत पढ़ने आता है । लेकिन देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम में प्रभावित होकर कालेज छोड़ देता है और नमक सत्याग्रह में भाग लेकर जेल जाता है[1] । इसी प्रकार "हीरक जयन्ती" के रामसागर और देवनंदन प्रसाद पढ़ाई छोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के भागीदार बननेवाले हैं[2] । आजीविका भी त्यागकर लोग स्वतंत्रता संघर्ष में जुड़ जाते हैं । "नयी पौध" का नीलकंठ मल्लिक सन् 30-32 के राष्ट्रीय आन्दोलन में हाई स्कूल की मास्टरी छोड़कर, नमक बनाकर जेल जाता है और साल भर की सजा काटता है[3] ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अवलंबित इन संघर्षात्मक मार्गों में गुलामी से मुक्त होने की लोगों की इच्छा तीव्रतर होती दिखायी पड़ती है । भारत में अपना शासन सुदृढ बनाने के लिये अंग्रेज़ों द्वारा अपनायी फूट डालो और शासन करो की नीति के विरुद्ध बंगाल में हुए जनसंघर्ष लोगों के प्रबल विरोध का परिचायक है । "बंगाल विभाजन में 'वहाँ के शिक्षित और अशिक्षित समूची जनता ने अंग्रेज़ी शासकों की कुटिल नीति का विरोध किया । नौजवानों ने कई गोरे अफसरों को मार डाला और क्रान्ति की परंपरा शुरू हुई ।

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ.41
2. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ. 13-27
3. नयी पौध - नागार्जुन, पृ. 65

दस महीने के अन्दर नब्बे हज़ार मर्दों, औरतों और बच्चों को कैद की सजा दी गयी । जेलें ठसाठस भर चुकी थी । बेंतों, हण्टरों, लाठियों और गोलियों का सिलसिला चला । लेकिन जनता की हिम्मत नहीं टूटी ।[1] यह शोषण और अत्याचार के विरुद्ध हुए मुक्ति संघर्ष का सही चित्रण है ।

निष्कर्ष

यह नि:संदेह कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यासों पर तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आन्दोलनों का विस्तृत प्रभाव पड़ा है । अत: शोषक, अत्याचारी, साम्राज्यवादी शासकों के विरुद्ध उभरी जनचेतना को उन्होंने अपने उपन्यासों में वाणी दी है ।

2. किसान-ज़मीन्दार संघर्ष

सामन्तीय व्यवस्था में ज़मीन्दारों का अधिनायकत्व कायम था । गाँव की सारी संपत्ति-भूमि, तालाब, पोखर, चरागाहे - सबके सब इनकी अधीनता में थी । गाँव की भूमि पर ही नहीं, उसमें काम करनेवाले गरीब खेतिहर किसानों पर भी इनका पुश्तैनी अधिकार था । गाँव के साधनहीन श्रमिक वर्ग की मेहनत के मूल्य में परंपरा से पलनेवाला यह वर्ग सदियों से उनका शोषण करता आया है, उनको अपने गुलाम बनाते आया है । इन दो वर्गों का स्वरूप, ज़मीन्दारी शोषण, शोषण से मुक्ति के लिये कृषक वर्ग द्वारा अपनाये गये विभिन्न

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 78-79

संघर्षात्मक उपायों का प्रतिपादन नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ", "वरुण के बेटे", "दुःखमोचन" आदि उपन्यासों में हुआ है ।

ज़मीन्दारी शोषण और अत्याचार

विलासिता और आडंबर के पर्याय बिहार के देहाती ज़मीन्दारों और सदियों से उनकी गुलामी भुगतनेवाले गरीब खेत-मज़दूर और अल्प जोत के किसानों का सजीव वर्णन नागार्जुन ने किया है ।

वैभव में पलनेवाले ज़मीन्दार अपनी अपार संपत्ति के बल पर गाँव के गरीब किसानों को सताना अपना अधिकार माननेवाले हैं । वे गाँव के मालिक है, और ग्रामीण जीवन के नियन्ता भी । न्यायान्यायों के निर्णय का अधिकार उन्हीं को सौंपा है । ये ज़मीन्दार अन्याय और अत्याचार के केन्द्र हैं । रतिनाथ की चाची उपन्यास में ज़मीन्दार रायबहादुर दुर्गानंदन सिंह ऐसे ज़मीन्दार का सही प्रतिरूप हैं । " आसपास की पाँच कोस ज़मीन पर उनकी छत्रछाया थी । xxxx ब्याज की दर प्रति मास डेढ रुपये सैकडा थी । राजाबहादुर पुराने अँगूठे को साल-साल नया करवाते जाते । सूद भी मूल बनता जाता । चक्रवृद्धि का यह क्रम राजाबहादुर की शरीर वृद्धि के लिये रसायन का काम कर रहा था[1] ।" अपनी ज़मीन्दारशाही और सूदखोरी से सारे इलाकेवालों को तंग करनेवाला यह ज़मीन्दार माँ के श्राद्ध में जनता से ऐंठे पैसे को खुलकर खर्च करके "धर्म-दिवाकर" की गौरवपूर्ण उपाधि प्राप्त करने में ज़रा भी नहीं हिचकता[2] ।"

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ.83
2. वही, पृ.84

गाँव के संपन्न जमीन्दार गरीबों के श्रम का निर्दय शोषण करते हैं । "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में जमीन्दारी विवाह का वर्णन अमानवीय शोषण का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसका आँखों देखा वर्णन बटेसरनाथ के ही शब्द में "सोलह मज़दूर एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे; उस पर दरी और जाजम बिछी थी । मय साज-बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी - तबला डुग्गी, सारंगी, मंजीरा सब साथ दे रहे थे xxxxx और राजा का बेटा ब्याह करने जा रहा है ।[1]" केवल विलासिता के लिये ही मनुष्य श्रम का इतना निन्दनीय शोषण किया जाता है ।

अपने उपर निर्भर गरीबों से ज़मीन्दारों का व्यवहार बिल्कुल अमानवीय है । ज़मीन्दार रमादत्त सिंह सीधा-सादा किसान शत्रुमर्दन राय को लाल चींटों से कटवाकर कोडे लगाता है । इस दण्ड का कारण यह है कि उसके बाप ने जमीन्दार से जो तीस रूपये कर्ज लिया था, उसका कर्ज और सूद वह लौटा नहीं सका[2]। अपनी गुलामी करनेवालों की छोटी सी गलती पर कठिन से कठिन दण्ड देना जमीन्दारों के लिये मनोरंजन का काम है । "बलचनमा" उपन्यास में ऐसे अनेक अवसरों का परामर्श मिलता है । उपन्यास का मालिक, गुलामों को अवसर, अनवसर पर अपमानित करने में आनंद का अनुभव करता है । बात बात पर गालियों की झडी मारनेवाले मालिक से अपने दिन रात की सेवा के बदले बलचनमा को कान भर गालियाँ ही मिलती है । गालियों से सन्तुष्ट न होने पर मालकिन झाड़ू उठाकर उसे पीटती भी है[3]। यही नहीं दादी की अन्तिम इच्छा की

1· बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ· 33

2· वही, पृ· 36

3· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 6

पूर्ति के लिये मालिक के पोखर से मछली पकड़नेवाले बलचनमा की पीठ पर मालकिन आम की आधी जली केली से दाग कर देती है[1]।"

ज़मीन्दारी शोषण का एक अन्य पहलू "वरुण के बेटे", "बाबा बटेसरनाथ" आदि उपन्यासों में दिखायी पड़ता है। अंग्रेज़ी शासन काल में ही चुनाव जीतकर प्रान्तीय शासन में आये कांग्रेज़ी मंत्रिमंडल द्वारा ज़मीन्दारी प्रथा के उन्मूलन की योजना बनायी जाती है, तो जमीन्दार अपने पास की भूमि पोखर आदि एक एक करके बेचने लगते है फलत: इन पर आश्रित श्रमिक जनता संकट में पड जाती है। ऐसी स्थिति में शोषण और अत्याचार दुगुना हो जाता है। "वरुण के बेटे" का जमीन्दार गाँव का महान जलाशय गढपोखर पड़ोस के जमीन्दार को बेचकर गरीब मछुओं के उपजीवन का साधन उनसे छीनता है[2]।" उसी प्रकार "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में भी जमीन्दार वर्षों से किसानों द्वारा जोती रही ज़मीन और सार्वजनिक उपभोग की भूमि बेचकर कमाता है[3]।

गाँव का ज़मीन्दार वर्ग अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये समय समय के शासक वर्ग से समझौता रखता है। अपने अधिकारों पर ठेस न पहुँचाने के लिये ये पहले अंग्रेज़ों से साँठ-गाँठ करते हैं तो बाद में कांग्रेज़ी मंत्रिमंडल का हाथ में हाथ मिलाते हैं। फिर भी इनसे अपनी स्वार्थ सिद्धि न हो पाने का आतंक भी उनमें है। अत: जमीन्दारी उन्मूलन के नियम से परेशान जमीन्दार राज बहादुर कांग्रेज़ नेता को धमकी देता है "आप की खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे। उसके

1· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 24

2· वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ· 59

3· बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ·99

बाद जाकर जमीन्दारी प्रथा उठा दीजियेगा[1] ।" गरीबों के श्रम और धन पर जोंक के समान चिपके रहनेवाले इन ज़मीन्दारों के लिये अपने अधिकारों का नष्ट होना असह्य है । ऐसे निष्ठुर, अन्यायी जमीन्दारों के अधीन उनके शोषण और अत्याचार सहकर जीनेवाला अभिशाप्त एक गरीब वर्ग है । उसके बारे में आगे हम देखेंगे ।

जमीन्दारी शोषण का शिकार गाँव का गरीब कृषक वर्ग

ज़मीन्दारी शोषण के शिकार गरीब वर्ग के अन्तर्गत गाँव के किसान ही नहीं खेत-मज़दूर, कुली, बनिहार आदि भी आते हैं । नागार्जुन के अधिकांश उपन्यास मिथिलांचल में सदियों से शोषण में जूझनेवाले इन गरीबों के दयनीय जीवन की दस्तावेज़ है । शुभंकरपुर गाँव का गरीब कुल्ली राउत, रामपुर गाँव का बलचनमा, मलाही गोंढियारी गाँव का अभावग्रस्त मछुआ खुरखुन, रूपउली गाँव का शत्रुमर्दनराय सबके सब पीढियों से शोषित जनवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं ।

बलचनमा पुश्त दर पुश्त मालिकों की गुलामी करने में विवश गरीब वर्ग का सही प्रतिनिधि है । बाप की मृत्यु के बाद मालिक के यहाँ काम करनेवाला बलचनमा गुलामी की श्रृंखला की नवीनतम कडी है । उसके परदादा को अपने गाँव के ज़मीन्दार ने दहेज में दामाद के साथ दिया था । तभी से चले आये शोषण की परंपरा के सातवें पुश्त का अंश है बलचनमा[2] ।"

1· रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ·84

2· बलचनमा - नागार्जुन, पृ·54

निम्नवर्गीय गरीब का जीवन पूर्ण रूप से संपन्नों पर आश्रित है। बलचनमा जैसा निम्नवर्गीय, मालिकों के जूठन पर पलता है। अत: मालिकन से बलचनमा की दादी का यह कथन "आप ही का तो आसरा है। नहीं तो हम गरीब जनमते ही बच्चों को नमक न चढा दे। अपना जूठन खिलाकर, अपना फेरन फारन पहनाकर ही तो हमारा परतपाल करती है,[1] इस सर्वसमर्पण का ही द्योतक है। गरीबी के कारण अपने नन्हें पोते को शोषण में सौंपती हुई बूढी दादी यह कहने में विवश हो जाती है "कादो, मडुआ, मकई, सांवा, कांवन चाहे जिसकी भी रोटी दे दो, खुशी खुशी से खा लेगा और दो चुल्लू भर पानी पीकर सन्तोख की सांस लेता उठ जायेगा[2]।"

मालिक के यहां गालियां, पिटाई, तिरस्कार, दुतकार, फटकार और अपमान से होकर गुज़रनेवाला बलचनमा बचपन में ही ज़मीन्दारी निष्ठुरता का साक्षी हो चुका है। मालिक के बाग से दो आम तोडने के अपराध में उसके दरवाज़े के खंभे पर बंधे, भयानक मार-पीट सहकर आंसू भरे मुंह से नि:सहाय खडे बाप, मालिक के पैर पकडकर दया के लिये विनती करनेवाली दादी, दु:ख से हाय हाय मचानेवाली मां, डरकर मां से सटकर रोनेवाली बहन का चित्र बालक बलचनमा को अपने वर्ग की नि:सहायता से परिचित कराते हैं।

गांव के निम्नवर्ग पर मालिकों का पूरा अधिकार है। बलचनमा के अनुसार "गरीबों" की हड्डी हड्डी, नस नस और रोएं रोएं उनका मौरूसी हक है। पोसने, पालने, सडने, गलाने और मारने

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ.4
2. वही, पृ.4

पीटने का उनका पूरा हक है।[1] जुगल कामत जैसे गरीब, संपन्न मालिकों के यहाँ काम करने के लिये जनमते है, काम करते करते बढते है और काम में ही अपने को समाप्त कर देते है। कर्ज और गुलामी से सिर से पैर तक डूबा हुआ कामत मलेरिया की सख्त बीमारी में गल पचकर जब मरता है, तभी अपने दुःख दरिद्रों से छुटकारा पा सकता है[2]।

संपन्न वर्ग पर आश्रित गरीबों का जीवन अत्यन्त दयनीय है। बलचनमा जैसे गरीबों का जीवन कई छह आँसू से सींचा गया है[3]। पर्याप्त भोजन के बिना, आवश्यक कपडों के बिना, प्राकृतिक विडंबनाओं से लडकर इनका जीवन आगे बढता है। ओढने बिछाने के अभाव में बलचनमा का परिवार कठिन सर्द से बचने के लिये आम की गुठली का गूदा मसल मसलकर फाँकता है। लकडियाँ न होने पर बकरी की सूखी मेंगनियाँ जलाकर रात काटते है[4]।

"वरुण के बेटे" उपन्यास के मछुओं का जीवन गरीब वर्ग के अभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मछुओं की बस्ती में जाल बुनते या धागा बाँटते बैठे अर्धनग्न बूढे, हुक्का गुडगुडाती या टिकिया सुलगाती बुढियाँ, भूख मिटाने के लिये तालाबों में केकडे या कछुए खोजते हुए भटकनेवाले नंग धडंग लडके, जलते चूल्हों पर रखी काली हाँडियाँ, उसके करीब बैठकर हल्दी लाल मिर्च पीसनेवाली फटी पुरानी बोरी बिछाकर सोये पडे बच्चे- सबके सब गरीबी और गन्दगी के साकार रूप है[5]।

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 13
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 79
4. वही, पृ. 13
5. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 17

"बाबा बटेसरनाथ" में नागार्जुन ने अभाव में जूझनेवाले गरीब ग्रामीणों का चित्रण किया है । रूपउली गाँव में हुए अकाल के वर्णन में अभाव का घोर रूप प्रस्तुत किया गया है । "गाँव में तीन ही परिवार ऐसे हैं जिन्हें जून अन्त तक चावल नसीब होता रहा xxxx बाकी दस एक घर ऐसे थे जिनमें सिर्फ बच्चों को भात मिलता था, सो भी मचलने पर । सयाने जुन्हरी, मकई, अरहर और चनों पर निर्भर थे xxx जो निचले स्तर पर थे, उन्हें शकरकन्द भी एक ही जून मिल पाती थी । अकाल पीड़ित लोग भूख से तड़पकर पेड़ों के खालों से लेकर ईंट तक पीसकर खाते हैं[1] ।

ज़मीन्दारी शोषण के विविध आयाम

गाँव का संपन्न ज़मीन्दार गरीबों के श्रम का खूब लाभ उठाता है । "बलचनमा" उपन्यास में ज़मीन्दारी शोषण के विविध पहलुओं का वर्णन है । मालिकों के यहाँ काम तो कम नहीं है । बलचनमा को भैंस चराने से लेकर मालिक की उंगलियाँ चटकाने तक का सारा काम करना पड़ता है । यह शोषण उनके श्रम तक सीमित नहीं । सूद, ब्याज आदि के नाम पर संपन्न ज़मीन्दार मेहनतकश वर्ग को ज़िन्दगी भर निचोड़ते रहते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी मनमानी खूब चलती है । "बलचनमा" में फूल बाबू के पिता गरीबों को चार चार छः छः आठ आठ रुपया देकर ऐसी नाच नचाते हैं कि मरने पर भी उन्हें छुटकारा नहीं मिलता[2] । ज़मीन्दार सूद के नाम पर बलचनमा की अल्पमात्र भूमि को हड़पने की ताक में रहता है । पिता की मृत्यु पर

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ.43
2. बलचनमा - नागार्जुन, पृ.39-40

बलचनमा की माँ मालिक से बारह रुपये कर्ज लेती है जो सूद पर सूद देकर भी ज्यों का त्यों खड़ा रहता है । इसके बदले उसकी दृष्टि बलचनमा के थोड़े से खेत पर है जिसे हड़पने का भरसक प्रयास वह करता रहता है[1] ।

अकाल जैसी आपत्ति के समय यह ज़मीन्दारी शोषण उसकी चरम सीमा पर पहुँचती है । भूख से पीड़ित गरीब वर्ग मालिकों से अनाज लेने में विवश हो जाता है । निम्न वर्ग की इस निःसहायता से कुछ लाभ उठानेवाले जमीन्दार देते समय कम देकर भी वापस लेते वक्त अधिक ही ले लेते हैं । इसका समर्थन करके मालकिन कहती है "हमारे यहाँ पड़ा रहेगा तो समय पर इनके ही काम आयेगा[2] ।"

शोषण और अत्याचार के विरुद्ध निम्न वर्ग का जागरण

सन् 1917 की रूसी क्रान्ति की विजय से दुनिया भर में समाजवादी आदर्शों का प्रचार हुआ । तानाशाही शासक पर रूसी जनता की यह ऐतिहासिक विजय संसार भर के श्रमिकों को शोषण और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की प्रेरणा दी । श्रमिक वर्ग के हितैषी समाजवादी विचारों का प्रचार त्वरित गति से होने लगा । भारत के शोषित पीड़ित जनवर्ग पर भी इस नवजागरण का असर पड़ा ।[3] नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ" "वरुण के बेटे", आदि उपन्यासों में शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 12
2. वही, पृ. 18
3. Sociological Background of Indian nationalism- R. Desai-P183

श्रमिक वर्ग के इस जागरण का प्रतिपादन है ।

"रतिनाथ की चाची" उपन्यास का ताराचरण जुझारू श्रमिक का प्रतीक है जो अपने चारों ओर की गतिविधियों का अच्छा खासा परिचय रखता है । समाजवादी विचारों पर आकृष्ट ताराचरण रूस की नवीन प्रगति के बारे कहता है "पचीस साल से रूसवालों ने अपने यहाँ जो नया संसार बनाया है, उसके अन्दर जाकर राक्षसों की बडी से बडी फौज भी मात खा जायेगी ।"[1] अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से ताराचरण जैसे निम्नवर्गीय की यह पहचान और परिचय उस वर्ग में आये जागरण का परिचायक है । ताराचरण के द्वारा शुभंकरपुर गाँव के गरीब कृषक अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाते हैं ।

"बलचनमा" उपन्यास का बलचनमा फूलबाबू के साथ पटना में रहकर राजनीतिक गतिविधियों से परिचित हो जाता है जिससे अपने अधिकारों के प्रति वह बोधवान हो जाता है । इस नयी जागृत चेतना से अपने वर्ग की मुक्ति का विचार उसके मन में स्थापित होता है । नये वर्ग-बोध से वह इस प्रकार सोचता है "अंग्रेज़ बहादुर से सोराज लेने के लिये बाबू भइया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला गुल्ला और झगडा झंझट मचा रहे हैं । इसी तरह कुली मजदूर और बहिया खवास अपने हक के लिये बाबू भइया से लडना पडेगा ।"[2] इसी वर्ग-बोध से "रतिनाथ की चाची" उपन्यास का ताराचरण किसानों को ज़मीन्दार द्वारा आयोजित नाटक के बहिष्कार करने की प्रेरणा देता है । किसानों से वह कहता है "जमाना बदल गया है । हम अब अंग्रेज़ों की नाक में कौडी बांधते है तो राजबहादुर की क्या बिसात ? उसका दामाद ही खुद आकर हमें लिवा ले जाय ।"[3]

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ.143
2. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 74
3. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 144

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का वटवृक्ष रूपउली गाँव के गरीब कृषक वर्ग को जागरण का संदेश देकर उसे उकसाता है । गाँव के श्रमिकों के नेता जैकिसुन से वह कहता है "तू जिस युग में पैदा हुआ है, वह राजाओं, जमीन्दारों और सेठ साहुकारों का युग नहीं, बल्कि तेरे जैसे आम नौजवानों का जमाना है[1] । उसी प्रकार "वरुण के बेटे" उपन्यास के मछुए निम्न वर्ग में उभरे जागरण का सशक्त प्रमाण है । अपने उपजीवन का एकमात्र साधन गढपोखर पर रोक लगानेवाले जमीन्दार पर उनका रोष भभक उठता है । अपनी हक के प्रति बोधवान गोनड दृढ स्वर में कहता है "यह पानी सदा से हमारा रहा है । किसी भी हालत में हम इसे छोड नहीं सकते । पानी और माटी न कभी बिके हैं और न कभी बिकेंगे । गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है, जिन्दगी का निचोड है[2] ।"

अपने अधिकारों से सचेत निम्नवर्ग अब शोषकों से परिचित हो गये हैं और वे शोषण से जागरूक भी है । शोषण के विभिन्न रूपों को पहचानकर वे खूब जान लेते हैं कि किसी बाहरी शक्ति से अपना उद्धार संभव नहीं । "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास के दयानाथ के अनुसार "गरीब के घर में पैदा हुआ ही गरीब का संकटमोचन बनेगा[3] ।" बलचनमा भी ढोंगी राजनीतिक नेताओं के झूठे प्रलोभनों से दूर रहने की आवश्यकता महसूस करता है । वह जान लेता है कि इन नेताओं द्वारा निम्न वर्ग का उद्धार कभी संभव नहीं होगा । अतः वह कहता है "सोराज मिलने पर बाबू भइया लोग आपस में दही मछली बाँट लेंगे । जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं, आगे भी तर माल वही उडायेंगे ।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 53
2. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 27
3. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 94

हम लोगों के हिस्से में सीठी ही सीठी पडेगी ।"[1] बलचनमा की यह पहचान उस संपूर्ण वर्ग के जागरण की सूचना है ।

गरीब, निम्नवर्गीय जनता राजनीतिक शोषण से भी परिचित है । "बलचनमा" उपन्यास के रामपुर गाँववाले काँग्रेज़ी शोषण से अच्छी तरह परिचित है । भूचाल के अवसर रिलीफ फण्ड खोलकर रुपया डकारने वाले काँग्रेज़ियों का अन्याय निम्नवर्गीय कुन्ती सह नहीं पाती । दो देकर दस रुपये चढानेवाले रिलीफ फण्ड उसकी दृष्टि में बडे लोगों की आमदनी बढाने का एक और साधन मात्र है ।[2]

निम्नवर्गीय जागरण और शोषण के प्रति उनकी पहचान उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाता है । यह सचेतनता संपन्न जमीन्दारों के हर अन्याय के विरुद्ध खडे होने में उन्हें प्रेरित करती है । यह कृषक जागरण अनेक सीढियों से होकर संघर्ष की चरम सीमा तक पहुँचती है । उसके क्रमिक विकास पर आगे विचार किया जायेगा ।

<u>समाजवादी तथा साम्यवादी आदर्शों से शोषित निम्नवर्ग का आकर्षण</u>

शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और संघर्ष से सामाजिक समानता की स्थापना घोषित करनेवाले समाजवादी और साम्यवादी आदर्शों से श्रमिक वर्ग का आकर्षण सहज ही है । मालिकों के खेतों में खून-पसीना एक करनेवाले गरीब किसान, खेतिहर मज़दूर और अन्य श्रमिक वर्ग तुरन्त ही इस आकर्षण में पड जाते हैं । मेहनतकश

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 70

2. वही, पृ. 122

जनता को उसके अधिकारों के प्रति सचेत बनाकर, उच्चवर्गीय अन्याय के विरुद्ध उन्हें खडा करने में उद्यत समाजवादी आदर्शों से नागार्जुन के उपन्यासों के अनेक पात्र प्रभावित होते दिखायी देते हैं ।

समाजवाद मानव श्रम को प्रगति का मूल आधार मानता है । नागार्जुन के अधिकांश निम्नवर्गीय पात्र श्रम के महत्त्व पर आस्था रखनेवाले हैं । "बलचनमा" उपन्यास का बलचनमा अपने हाथ के लगाये धान की छुप छुप आवाज़ में सुरैया के तान का आनंद अनुभव करता है । मेहनतकश जनवर्ग के लिये अपना श्रम ही सर्वस्व है । ऐसे श्रम के महत्त्व पर बलचनमा कहता है "अपनी माँ बहनों और बहू-बेटियों के हाथ-पैर हमारे यहाँ सिर्फ छूने मसलने या नाचने थिरकने का सामान नहीं हुआ करते, हमारी ज़िन्दगी का सहारा है वह हाथ पैर[1] । श्रमिक वर्ग अपने श्रम का विश्वासी है और यही विश्वास उसे उच्चवर्गीय अन्यायों के विरुद्ध आवाज़ उठाने में सक्षम बनाता है । बलचनमा मज़दूरी में खराब अनाज मिलने पर उसे वापस देने का साहस दिखाता है[2] ।

नागार्जुन के अनेक पात्र देशव्यापी समाजवादी और साम्यवादी विचारों से अभिभूत है । बलचनमा के अनुसार साम्यवादी जो कुछ कहते हैं, उसे अमल में लानेवाले हैं[3] । साम्यवादी, भूमि पर श्रम करनेवाले को उसका सही अधिकारी मानते हैं । अतः इस विचार से ओत प्रोत होकर "बलचनमा" के किसान ये नारे बुलन्द करते हैं "कमानेवाला खायेगा, ज़मीन जिसकी, जोते बोये उसकी ××××

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 116-117
2. वही, पृ. 118
3. वही, पृ. 118

ज़मीन्दारी प्रथा नाश हो[1]।"

"बाबा बटेसरनाथ" में समाजवादियों के प्रवर्तन का प्रतिपादन नागार्जुन यों करते हैं "मधुबनी सबडिविज़न के अन्दर किसानों के बीच कम्युनिस्टों का भारी असर था। पूरा वक्त लगाकर काम करनेवाले कई दर्जन नौजवान थे। अन्याय के विरुद्ध सब कुछ करने में उद्यत उनका एक पैर बाहर, दूसरा जेल के अन्दर। इन्होंने बेइमान अफसरों, तानाशाह थानेदारों और सब डिविज़न के ऊँचे अधिकारियों की नींद हराम कर दी थी[2]।" "वरुण के बेटे" उपन्यास में साम्यवादी पार्टी का थाना सभापति मोहन माझी मछुओं का नेतृत्व करता है। नाव चलाने और मछली पकडने के काम में सीमित मछुओं की नयी पीढी में आये परिवर्तन से उन्हें बोधवान बनाकर उनकी असीम शक्ति से उन्हें परिचित कराता है[3]। "दुखमोचन" उपन्यास में कपिल के भाई और भाभी वामपंथी विचारों से प्रभावित है[4]।

"बलचनमा" उपन्यास में ही साम्यवादी विचारों से नागार्जुन का लगाव चरमसीमा पर पहुँचते दिखायी पड़ता है। मेहनतियों के औजार हँसिया हथौडावाले झण्डे से आकर्षित बलचनमा सोशलिस्टों को रोजी रोटी की लडाई के बहादुर सिपाही मानता है[5]।

1· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 118
2· बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ· 105
3· "उन दिनों केवल नाव चलाना और मछलियाँ पकडना हमारा पेशे थे। अब हमारी बिरादरी खेती भी करती है, मजदूरी भी। पढ लिखकर कुछ एक भाई-बहन ऊँचे ओहदों पर पहुँच रहे हैं। xxx पुरानी दीवारें ढह रही है, नये प्रकार की विशाल बिरादरी उनका स्थान लेने आ रही है। एकता का यह आलोक देहातों में प्रवेश कर चुका है।" वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ·31
4· दुखमोचन - नागार्जुन, पृ· 80
5· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 130

यह साम्यवादी प्रभाव उसे कामरेड बना देता है । उसका दृढ विश्वास है कि अपने वर्ग की मुक्ति इन आदर्शों से ही संभव होगी । समानता और प्रगति का आह्वान करनेवाले साम्यवादी समाज के बारे में बलचनमा यह जान लेता है कि ऐसी व्यवस्था में "जमीन्दार महाजन की फाजिल धन संपदा उन्हीं में बंट जायेगी, रोजी रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढाई-लिखाई, बुढापे की बेफिक्री खान पान और रहन-सहन का ठौर-ठिकाना, दवा-दारु, पथ-पानी का इन्तज़ाम यह सब सभी के लिये सुलभ होगा, दरभंगा के महाराज हो चाहे पाटना के लाट साहब-मुफ्त खाना किसी को नहीं मिलेगा सब काम करेगा, सब दाम पायेगा ×××× पैसे के बल पर कोई किसी को बंधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा ।[1] शोषण मुक्त समाज के प्रति बलचनमा की यही आकांक्षा उस जैसे श्रमिकों को साम्यवादी आदर्शों के निकट संपर्क में लाते हैं

निम्नवर्गीय संगठन और किसान सभा का प्रवर्तन

समाजवादी आदर्शों के प्रभाव से अपने हक के प्रति जुझारु मेहनतकश वर्ग संपन्न वर्ग के अत्याचारों के विरुद्ध संगठित होने की आवश्यकता महसूस करने लगता है । गांव के शोषित, पीडित किसानों और अन्य श्रमिक वर्गों को ज़मीन्दारी निष्ठुरता से मुक्त कराने के उद्देश्य से स्थापित किसान सभाओं के द्वारा श्रमिकों का संगठन संपन्न हुआ, श्रमिक वर्ग में वर्ग बोध जगाकर अन्याय और शोषण के विरुद्ध उन्हें "उपस्थित कराने में किसान सभाओं की योगदान उल्लेखनीय है ।[2]

1• बलचनमा - नागार्जुन, पृ• 123

2• [illegible] पृ• 54

विशेषकर बिहार के किसान-जमीन्दार संघर्ष में किसान सभा के सहयोग और प्रेरणा महत्वपूर्ण है । "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में किसान सभा के प्रवर्तन का प्रतिपादन है । प्रगतिपूर्ण विचारवाले ताराचरण के द्वारा किसान कुटी की स्थापना होती है, जिससे शुभंकरपुर गाँव के किसानों में नयी चेतना जागृत होती है । हरेक किसान अपनी हैसियत से इस उद्यम की सहायता करता है । लोटा, थाली, कड़ाही से लेकर घड़े तक देकर वे कुटी के विकास में सहयोग देते हैं । गरीब गौरी किसान कुटी के प्रवर्तनों से आकृष्ट होकर अपना एकमात्र कंबल देकर इसके लिये सहायता पहुँचाती है[1] ।

स्वामी सहजानंद के अथक परिश्रम और संगठन कुशलता से स्थापित किसान सभा बिहार में ज़ोर पकड़ती है । तत्कालीन कृषक जागरण में किसान सभाओं की देन नागार्जुन के "बाबा बटेसरनाथ", "बलचनमा", "वरुण के बेटे" आदि उपन्यासों में वर्णित है । "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में किसान सभा और ग्राम कमेटियों को रूप देकर दयानाथ रूपउली के किसानों की प्रगति के लिये तन मन से मेहनत करता है । जनशक्ति के संगठन और रूपउली के जन आन्दोलन को जनसंघर्ष की जिला और प्रदेश व्यापी धारा से मिलाने का प्रयत्न भी उसके द्वारा संपन्न होता है । ग्राम कमेटी की स्थापना के दो ही महीनों के अन्दर प्रथम रेहुआ थाना किसान सम्मेलन को भी वह रूप देता है[2] । किसानों में सभा के प्रवर्तनों की प्रतिक्रिया भी आवेशजनक है । किसान सभा के सदस्य बनने के लिये एक आना फीस देकर छप्पन लोग तक किसान सभा के सदस्य बन जाते हैं । दयानाथ, जैकिसुन जैसे श्रमिक घूम घूमकर

1· रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ· 85

2· बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ· 110

लोगों को किसान सभा का उद्देश्य और लक्ष्य समझाते हैं । किसान सभा के व्यापक प्रवर्तन के लिये कौंसिल चुनायी जाती है । जैनारायन झा टुनाई पाठक जैसे संपन्नों द्वारा सरकारी भूमि की बेदखली के खिलाफ गाँववालों का संयुक्त मोर्चा संगठित करने का श्रम भी रुपउली गाँव की किसान सभा द्वारा संपन्न होता है[1] ।

"बलचनमा" उपन्यास में डॉ॰ रहमान और राधेबाबू के नेतृत्व में किसान सभा का प्रवर्तन शुरू होता है जिससे निम्नवर्ग में नयी स्फूर्ति उत्पन्न होती है । किसान सभा के द्वारा आयोजित मीटिंग में गरीब किसान अत्यन्त उत्साह के साथ भाग लेते हैं । महपुरा में हुई सभा में अपने संकटों के हल के लिये चार सौ किसान एकत्रित हो जाते हैं । श्रमिक जनता में इतना जोश उत्पन्न होता है कि लतीफ नामक किसान अपने पाँच कट्ठे की लहलहानेवाली खेत काटकर किसान सभा की मीटिंग के लिये जगह तैयार करता है[2] ।

किसान सभा के नेता अपने ज़ोरदार भाषणों में परिश्रमी वर्ग को जमीन्दारी अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर होने का उपदेश देते हैं । रामपुर गाँव के किसानों को अपने अधिकारों से जागरूक बनाने के लिये स्वयं किसान सभा के नेता स्वामीजी आते हैं । वे किसानों को यह उपदेश देते हैं कि कभी भी बाहरी नेताओं पर भरोसा न रखें । अपने नेता स्वयं बनने का उनका आह्वान श्रमिकों को जगाने में पर्याप्त है । किसानों में आत्मविश्वास

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ॰ 109
2. बलचनमा - नागार्जुन, पृ॰131

जगाते हुए स्वामीजी कहते हैं "लेक्चर चाहे लाख दे जाय, उनसे न एक दाना चावल पैदा होता है, न गेहूँ और न घी दूध ही ·xxxxxxxx आप लोग लीडरों से लाख अच्छे हैं । आप सब कुछ पैदा करते हैं तो अपने लीडर भी आप ही पैदा कीजिये । जो आपका आदमी होगा, वही आपकी तकलीफों को समझेगा ।[1] किसानों में संगठन का बोध जगाते हुए वे बताते हैं " संगठित होकर एक हो जाइये, जान जाय तो जाय, मगर ज़मीन नहीं छोड़िये ।[2]

किसान नेताओं के जोशीले भाषणों से ओत प्रोत श्रमिक किसान सभा के सदस्य बनने में उत्सुकता दिखाते हैं । सभा के लिये अपनी मेहनत का एक हिस्सा देने में वे आनंद का अनुभव करते हैं । निम्नवर्गीय कुन्ती स्वयं आकर दुअन्नी देकर कहती है "देवता के परसाद के लिये यह चुटकी पिसान गरीबिन का भी ।"[3] कुन्ती का यह वाक्य अपने वर्ग की संगठन शक्ति पर उसके विश्वास का परिचायक है ।

"वरुण के बेटे" उपन्यास में मोहन माँझी के द्वारा मछुओं का संगठन होता है । वह मछुए संघ को किसान सभा से जुड़ाकर आगे बढ़ाता है । वह जानता है कि जुझारू किसान सभा की सहायता मछुओं के संघर्ष के लिये अनिवार्य है । अतः इकन्नी वसूल करके वह मछुओं को किसान सभा के सदस्य बनाता है ।[4] इस प्रकार तत्कालीन किसान सभा के सुचारू ढंग के प्रवर्तनों ने किसानों को जमीन्दारी

1· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 132

2· वही, पृ· 132

3· वही, पृ· 144

4· वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ· 31

अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने में, उनसे संघर्ष करने में बहुत अधिक सहायता पहुँचायी ।

अत्याचारी ज़मीन्दारों के विरुद्ध संगठित किसान और अन्य श्रमिक वर्गों का संघर्ष

सन् 1937-39 के आसपास बिहार प्रान्त में अनेक जगह किसान और जमीन्दारों के बीच संघर्ष हुए । देहातों का शासन कांग्रेस मंत्रिमण्डल के अधीन हो जाने पर ज़मीन्दारों में यह भय उत्पन्न हुआ कि तुरन्त ही ज़मीन्दारी उन्मूलन होनेवाला है । भयभीत ज़मीन्दार अपने पास की भूमि, पोखरें सब बेचकर कमाने लगे । अपने जोत की भूमि पर दूसरों के हस्तक्षेप होने पर कृषक, पोखरों पर आश्रित मछुए सब डर गये । अपने अधिकारों के लिये वे आवाज़ उठाने लगे । यह बिहार के अनेक गाँवों में किसान-ज़मीन्दार संघर्ष का मूल कारण बन गया । नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "वरुण के बेटे" "बाबा बटेसरनाथ", आदि उपन्यासों में ऐसा वर्ग संघर्ष दिखायी पड़ता है ।

"रतिनाथ की चाची" उपन्यास में अपने जोत की भूमि की हिफाज़त के लिये संगठित होकर संघर्षरत होनेवाले किसानों का चित्र नागार्जुन यों खींचते हैं । गजब का जोश था किसान बित्ता भर भी ज़मीन छोडने के लिये तैयार नहीं थे ××××× सभा, जुलूस, दफा एक सौ चवालीस, गिरफ्तारी सजा, जेल, भूख - हडताल, रिहाई यह सिलसिला किसानों को ठंडा नहीं कर सका [1] ।

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 98

"बलचनमा" उपन्यास में भी जमीन्दार की अन्यायपूर्ण बन्दोबस्तियों के विरुद्ध कृषक वर्ग संघर्ष के लिये उद्यत होता है । ज़मीन्दारी अन्याय के खिलाफ एकत्रित किसान यह तय कर लेते हैं कि लाश गिरें तो गिरें मगर अपने खेत दूसरों के दखल में नहीं जाने देंगे[1] ।

"वरुण के बेटे" उपन्यास के मछुए अपनी संगठित शक्ति पर विश्वास रखते हुए ज़मीन्दारों के विरुद्ध संघर्ष के पथ पर अग्रसर होते हैं । मछुओं के पुश्तैनी अधिकार गढपोखर को देपुरा के ज़मीन्दार सतघरा के ज़मीन्दार को बेचता है और नये खरीददार द्वारा मछली पकड़ने की रोक लगा दिया जाता है । इस अन्याय के खिलाफ मछुए इस हठ को ठान लेते हैं गढपोखर पर हमारा अपना अधिकार है । ज़मीन्दार जल कर लेता था, हम देते थे । नया खरीददार दूसरे तीसरे गाँव के मछुओं को मछलियाँ निकालने का ठेका देता चलेगा और हम पुश्तैनी अधिकारों से वंचित होकर रलते फिरेंगे[2] ।" वे यह दृढ संकल्प लेते हैं कि यह नया प्रभुत्व गैरकानूनी है, सर्वथा गलत है । वे गढपोखर की सीमाओं के अन्दर उन्हें घुसने नहीं देंगे[3] ।"

"बाबा बटेसरनाथ" में ज़मीन्दार द्वारा सार्वजनिक उपभोग की भूमि की बिक्री से कृषक-जमीन्दार संघर्ष शुरू होता है । ज़मीन्दार से भूमि लिये बुनाई पाठक और जैनरायन सार्वजनिक उपयोग की पोखरों पर हल चलाने और गाँव के पुराने वटवृक्ष कटवाने के श्रम

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ.145
2. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 27
3. वही, पृ. 126-127

शुरू करते हैं तो गाँव का श्रमिक वर्ग संगठित होकर इसके विरुद्ध हो जाता है । इन सभी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष का मूल कारण और उसकी शुरुआत मूलत: एक ही है । धीरे धीरे संघर्ष अपना सक्रिय रूप ग्रहण करता है ।

श्रमिक जागरण के दबाव का श्रम

शोषित वर्ग पर आये नवजागरण से भयभीत जमीन्दार उसकी संगठित शक्ति के दबाव की पूरी कोशिश में लगे रहते हैं । कृषक संघर्ष की पराजय जमीन्दारों के लिये अनिवार्य है । अत: किसी भी मूल्य पर इसका दबाव भी उनके लिये अत्यन्त आवश्यक बन जाता है । नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची" का जमीन्दार अपने मनमानीपन के विरोधी किसानों को घूसखोर किसान सेवकों द्वारा वश में लाने का प्रयास करता है । धन के लोभ में अपने संगठन को गिरवी रखनेवाले ऐसे कृषक सेवकों द्वारा ज़मीन्दारों का काम आसान बन जाता है । "रतिनाथ की चाची" का रमापति झा ऐसा कृषक सेवक है जो चौदह बीघा ज़मीन और बारह सौ के कर्ज की माफी के प्रलोभन में ज़मीन्दार का पक्षपाती बन जाता है[1] । "वरुण के बेटे" उपन्यास का गोना साहनी भी इसी प्रकार अपने वर्ग को धोखा देनेवाला है[2] ।

ज़मीन्दार वर्ग कृषकों और अन्य श्रमिकों की संगठित शक्ति को पराजित करने के लिये धन और उन्नतों पर अपने परिचय का खूब उपयोग करता है । "बलचनमा" का ज़मीन्दार अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए

1· रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ·86

2· वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ·59

पुलीस, एस•डी•ओ•, कलक्टर जैसे उन्नत अधिकारियों की सहायता से संघर्षरत किसानों को काबू में रखने का प्रयास करता है[1]। सरकारी अफसरों से अपनी रिश्तेदारी से "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का टुनाई पाठक जैसा संपन्न अपने उद्देश्य के विरुद्ध रहनेवाले किसान नेताओं को पुलीस में फंसाकर किसानों की हिम्मत नष्ट कराने का प्रयत्न करता है[2]। दुखमोचन उपन्यास का ज़मीन्दार नित्याबाबू निःस्वार्थ सेवक दुखमोचन के साथियों को गाजे के मामले में फंसाकर उन्हें कष्ट देता है[3]।

देहातों के शासन के लिये जनता द्वारा चुने कांग्रेज़ी मंत्रि-मण्डल ही जनता के मुख्य शत्रु है। शोषण में ज़मीन्दारों के साथ रहनेवाले कांग्रेज़ी नेता श्रमिकों के मुक्ति संघर्ष को दबाने में उनको सहायता देते हैं। "रतिनाथ की चाची" में किसान-ज़मीन्दार संघर्ष के साथ कांग्रेज़ी मंत्रिमंडल के गठबन्धन पर परामर्श नागार्जुन यों देते हैं "दुनिया भर में यह बदनामी फैली कि बिहार की कांग्रेज़ी पर ज़मीन्दारों का असर है। जवाहरलाल तक ने खुल्लम खुल्ला यह बात कही है[4]। कृषकों पर पीठ और ज़मीन्दारों की ओर मुंह रखकर बैठनेवाले कांग्रेज़ी नेता का असली प्रतीक है "बाबा बटेसरनाथ" का उग्रमोहनदास एम•एल•ए•। वटवृक्ष के कटाने के टुनाई पाठक के श्रम पर उग्रमोहन दास की सहायता मांगनेवाली जनता की शिकायत पर वह ध्यान तक नहीं देता[5]।

1• बलचनमा - नागार्जुन, पृ• 148

2• बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ• 87

3• दुःखमोचन - नागार्जुन, पृ• 54-55

4• रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ• 84

5• वही, पृ•84-85

कृषक जागरण और संघर्ष का सक्रिय पक्ष

मार्क्स के आर्थिक, सामाजिक विचारों का हामी नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अन्याय के विरुद्ध संघर्ष सक्रिय संघर्ष की अनिवार्यता पर ज़ोर दिया। साम्यवादी होने के नाते उनके उपन्यासों में वर्ग संघर्ष पूरी तीव्रता और वेगता में उभरकर आया है। लेखक के ही शब्दों में "शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला कदम हो जाता है। संघर्ष के लिये जो प्रतीक मुखरित होते हैं, उन्हें उभारता हूं, ताकि रग रग में माहौल पैदा हो जाय।"[1] श्रमिक वर्ग के संघर्ष को उन्होंने निकट से देखा, स्वयं संघर्ष का नेतृत्व भी ले लिया। अत: वे मानते हैं कि वर्ग-संघर्षों से वे असंपृक्त नहीं रह सकते। क्योंकि उनके अनुसार "अस्सी प्रतिशत जनता हमारी इष्ट देवता है जो जीवन के आसपास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हूं। समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूं।"[3] अत: समाज के इस सक्रिय, घटना प्रवाह से अविच्छिन्न नागार्जुन के उपन्यासों में संघर्ष के अंश का तीव्रतर होना स्वाभाविक ही है। "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "वरुण के बेटे", "बाबा बटेसरनाथ" इन चार उपन्यासों में वर्ग संघर्ष का सबसे क्रियात्मक अंश पाया जाता है।

"रतिनाथ की चाची" के किसान अन्यायपूर्ण मार्ग पर भूमि बेचनेवाले ज़मीन्दार के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। वे यह निश्चय कर लेते हैं कि अपनी जोत की भूमि पर किसी का अधिकार नहीं होने देंगे।

---

1. नागार्जुन का रचना संसार - विजयबहादुर सिंह से बातचीत
2. वही,

संघर्ष की चरम सीमा पर सरकार द्वारा 144 दफा लगाकर जमीन को लाल साफे और लंबी लेठी की अपनी निगरानी में ले लिया जाता है। इसके विरुद्ध किसान सत्याग्रह करते हैं ×××××× सत्याग्रही खूब पीटे जाते है। इस संघर्ष में दो कुर्मियों और एक ब्राह्मण की मृत्यु हो गयी।"[1] संघर्ष पूर्णतया सफल न होने पर भी ज़मीन्दारों के सिंहासन हिलाने में यह सक्षम हुआ। यही नहीं किसान नेता ताराचरण ज़मीन्दारों से यह मनवा लेने में सफल होता है कि खेत किसानों की जोत में रहेंगे।"[2]

"बलचनमा" में निम्नवर्गीय किसान बलचनमा द्वारा संघर्ष का नेतृत्व लिया जाता है। सैकड़ों सालों से गाँव के कुछ मुसलमानों, ग्वालों और केवट लोगों के अधीन रहनेवाली भूमि को अपने नाम चढवाकर ज़मीन्दार उन्हें बकाया मालगुज़ारी का समन भिजवाता है तो किसान वर्ग अन्याय के विरुद्ध संघर्षरत हो जाता है। वे एक स्वर में संकल्प लेते हैं कि ज़मीन नहीं छोड़ेंगे, चाहे कुछ भी हो जाय"[3] फसल "तैयार हुई तो उस पर दफा 144 लगाया जाता है। किसानों का संघर्ष इतना बढ जाता है कि अन्त में फसल की निगरानी के लिये आये मिलिटरी द्वारा ही वह काटा जाता है[4]।

अपने विरुद्ध खडे होनेवाले किसानों को ज़मीन्दार लगातार सताता रहता है। लेकिन निम्न वर्ग इन ज़मीन्दारों के अन्यायों के सामने चुप्पी नहीं साधते। "बलचनमा" उपन्यास का बलचनमा अपनी बहिन पर ज़मीन्दार के अत्याचार का खुलकर विरोध करता है।

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 98
2. वही, पृ.97
3. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 145
4. वही, पृ. 147

मालिक के द्वारा खूब सताने पर भी वह धैर्य नहीं खोता । दृढ निश्चय के साथ वह कहता है "कैद काटूँगा, फाँसी चढूँगा, गाँव से उजड जाऊँगा मगर इस सैतान के आगे सपने में भी सिर न झुकाऊँगा ।"[1]

"बलचनमा" का कृषक वर्ग ज़मीन्दारी अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष के पथ पर आगे बढता है । मार-पीट, धमकी और आर्थिक विपन्नता के सामने वे सिर नहीं झुकाते । अपनी जान देकर भी अपने हक की हिफाज़त के लिये लडने में वे तैयार रहते हैं । संघर्ष के तीव्रतर, भयानक दिनों को मन में देखकर बलचनमा का यह कथन "संघर्ष में किसी लास गिर सकती है xxxx किसी की क्या कितनों की लास गिर सकती है । उनमें में भी न हो सकता हूँ ।"[2] वास्तव में संघर्ष आत्मसमर्पित किसान की निर्भीकता का परिचायक है ।

"वरुण के बेटे" में भी वर्ग संघर्ष का तीव्र रूप परिलक्षित होता है । सैकडों सालों से गढपोखर से मछली पकडे आये मछुओं से उनके एकमात्र जीवनोपाय गरोखर छीनने के सिलसिले में संघर्ष शुरू होता है । गढपोखर के नये खरीददार सतघरे का जमीन्दार मछुओं को वहाँ से मछली पकडने में रोक लगाता है । महाजाल के समय मिले अपार जलवैभव पर कब्जा करने के लिये जमीन्दार दारोगा, अंचलाधिकारी आदि के साथ आकर मछुओं को धमकाता है । लेकिन मछुए अपने सामने ढेर में पडे अपने श्रम के फल से वंचित रहना नहीं चाहते । लालची ज़मीन्दार को ललकारते हुए मछुओं के नेता मोहन माझी कहता है

1• बलचनमा - नागार्जुन, पृ• 64

2• वही, पृ•149

"कोई रोक तो भला हमारा माल ।"[1] वे अपनी बन्दोबस्ती का पट्ठा अधिकारी वर्ग को दिखाते हैं जिसमें स्पष्ट है कि पुश्त दर पुश्त गढपोखर से मछली निकालने का हक मलाही गोंढियारी के मछुओं का चला आया है । मालिक बदलने पर आसामी नहीं बदलती । मछुओं के इस तर्क के सामने अधिकारी वर्ग को घुटने टेकना पड़ता है ।[2] अपने हक के लिये लडनेवाले साधनहीन श्रमिक वर्ग की यह विजय चाहे तात्कालिक ही हो, उसे संघर्ष के मार्ग पर आगे बढने की प्रेरणा देनेवाली है । ज़मीन्दार, अधिकारी वर्ग पर अपनी पकड के सहारे मछुओं को सताने लगता है । गढपोखर पर दफा 144 लगवाकर मछुओं को जलाशय में प्रवेश करने से रोक दिया जाता है । गढपोखर की मछली पर जीवन यापन करनेवाले मछुए इसका विरोध करते हैं । अत: गढपोखर के पहरे में आयी पुलीस की भी पर्वाह न कर के वे पोखर से मछली पकडने लगते हैं, तो संघर्ष चरमसीमा पर पहुँचता है ।[3] डरा धमकाकर, मुँह के कौर छीनकर, छाती पर संगीन की नोक का दबाव डालकर मछुओं पर अपना प्रभुत्व मनवा लेने में आमाद ज़मीन्दार को मछुए साफ उत्तर देते हैं "इन्किलाब ज़िन्दाबाद, गढपोखर हमारा है"[4] यही नहीं वे ज़मीन्दार को जलाशय में घुसने भी नहीं देते ।

संघर्ष की इस चरम स्थिति पर भी ज़मीन्दार समझौते के लिये तैयार नहीं । वह डेप्युटी मजिस्ट्रेट और पुलीस की सहायता से गढपोखर पर अधिकार जमाने आता है । डेप्युटी मजिस्ट्रेट द्वारा अलग

---

1. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 60
2. वही, पृ. 60
3. वही, पृ. 94
4. वही, पृ. 99

अलग मुचलका देने का उपदेश मछुए स्वीकारते नहीं । अपने अधिकार से वंचित रहने से अधिक गिरफ्तार होना बेहतर समझनेवाले मछुए पुलीस गाडी में बैठकर भी संघर्ष की विजय के नारे बुलन्द करते हैं "इन्कलाब ज़िन्दाबाद xxxxxxxx मछुआ संघ ज़िन्दाबाद, हक की लडाई जीतेंगे xxxxx जीतेंगे जीतेंगे, गढपोखर हमारा है, हमारा है[1]। ये नारे वास्तव में श्रमिक वर्ग की विजय की शंखध्वनि है ।

"बाबा बटेसरनाथ" में किसान-ज़मीन्दार संघर्ष का क्रियात्मक रूप देखने को मिलता है । सार्वजनिक उपभोग की भूमि अन्यायपूर्ण मार्ग में दूसरों को बेचकर कमानेवाले ज़मीन्दार के विरुद्ध जनसंघर्ष फूट निकलता है। ज़मीन्दार से ऐसी भूमि और पोखर खरीदकर उस पर हल चलानेवाले जैनरायन और टुनाई पाठक पर पहले जन विद्वेष भभक उठता है । गाँव के किसान दयानाथ के नेतृत्व की भारी भीड इनसे हल छीन लेती है और रोकने के सभी श्रम को पराजित करती है[2]। यह, संघर्ष की पहली सीढी है जिसमें श्रमिक वर्ग की विजय होती है । जैकिसुन, जीवनाथ जैसे कृषक नेताओं को झूठे अभियोग में पुलीस से पकडवाने का ज़मीन्दारों का श्रम भी कृषक जनता द्वारा पराजित होता है[3]। उपन्यास में पुराने वटवृक्ष द्वारा कृषक संगठन और उनके संघर्ष की विजय पर यों संकेत किया गया है "तुम लोगों ने बस्ती की हवा ही बदल दी । अब तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड सकते । मैं आशीर्वाद देता हूं रूपउलीवालों की यह एकता हमेशा बनी रहे । सुखमय जीवन के लिये तुम्हारी यह सामूहिक

---

1. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ.99
2. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ.100
3. वही, पृ. 97

प्रचेष्टा कभी मन्द न हो ।[1]" यह आशीर्वाद सचमुच श्रमिक संघर्ष की विजय और तज्जन्य प्रगति की सूचना है ।

वर्ग-संघर्ष से प्रगति

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष से समाज में होनेवाले परिवर्तनों का उल्लेख हुआ है । ये परिवर्तन निश्चय ही प्रगति के सूचक है । वे सार्वजनिक प्रगति के लिये उपयुक्त अनेक मार्ग अपने उपन्यासों में स्वीकार करते दिखायी देते देते हैं ।

वर्ग-संघर्ष की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि श्रमिक वर्ग के संगठन की उत्तरोत्तर बढती शक्ति है । यह वास्तव में प्रगति की सूचना है । प्रतिगामी शक्तियों को नेस्तनाबूद करके आगे बढनेवाली जनशक्ति "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ" और "वरुण के बेटे" उपन्यासों में देख सकते हैं । "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास की समाप्ति ही स्वाधीनता, शान्ति, प्रगति के सन्देश से होती है[2] । उसी प्रकार अपनी धरती को बनाये रखने के श्रम में ज़मीन्दारों से संघर्ष करके मरने में उद्दत बलचनता के ये शब्द "किसान की आज़ादी आसमान से उतरकर नहीं आयेगी, वह परगट होगी नीचे-जुती धरती के भुरभुरे ढेलों को तोड़कर[3]" वास्तव में संघर्षरत किसान की वाणी है । बलचनमा की यह पहचान उसके वर्ग की प्रगति को ही सूचित करती है ।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ॰ 115
2. वही, पृ॰ 117
3. बलचनमा - नागार्जुन, पृ॰ 152

"वरुण के बेटे" का मछुओं का नेता मोहन मांझी अपने वर्ग की भलाई के लिये, उनकी प्रगति के लिये कार्यरत है । मलाही गोंढियारी गाँव के परिवर्तित रूप के बारे में उसकी आकांक्षा उस वर्ग की प्रगति की आकांक्षा है । भविष्य के बारे में वह कल्पना करता है "मलाही गोंढियारी ग्रामांचल मछली पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जायेगा । वैज्ञानिक प्रणाली से यहाँ मछलियाँ पाली जायेंगी xxxxx मलाही गोंढियारी का एक एक परिवार गरोखर की बदौलत सुखी संपन्न हो जायेगा[1] । शोषण रहित समाज की यह कल्पना, जिसके साक्षात्कार के लिये मछुए संघर्ष करते हैं । बिलकुल प्रगतिपूर्ण है ।

सार्वजनिक श्रम के द्वारा अनेक सुधारवादी कार्य "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में रूपउलीवालों द्वारा संपन्न होते हैं । धनिकों से छीन ली गयी पुरानी पोखर पर बिना वेतन काम करके उसका उद्धार करनेवाले गाँव के किसान प्रगति के परिचायक हैं[2] ।

संघर्ष के सिलसिले में संपन्न वर्ग के अनेक व्यक्ति अपनी वर्गगत भूमिकायें छोड़कर हक के लिये लड़नेवाले श्रमिक वर्ग का साथ देते हैं । यह भी निम्न वर्ग की प्रगति और तद्द्वारा सामाजिक प्रगति का कारण बन जाता है । "बलचनमा" उपन्यास का उच्चवर्गीय ब्रजबिहारी इतना संपन्न है जो अखबार पढ़कर अशिक्षित किसानों को अपने चारों ओर की गतिविधियों से परिचित कराता है । मधुबनी, दरभंगा जैसे शहरों में जाकर वह किसानों के लिये खबरें लाता है[3] । संपन्न घराने का राधे बाबू भी श्रमिक किसानों के उद्धार के लिये रात दिन काम करता है ।

---

1. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 26
2. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 109
3. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 143

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास का वकील श्यामसुन्दर बाबू दयानाथ के विरुद्ध ज़मीन्दारों द्वारा दिये मुकदमे में बिना फीस लिये वकालत करता है।[1] उसी प्रकार "वरुण के बेटे" का हीराजी जमीन्दारी घराने का होते हुए भी मछुओं के संघर्ष का हामी है। वह रकम ही नहीं, अपने साइकल भी देकर श्रमिकों के संगठन को सहयोग देता है।[2]

निष्कर्ष

मिथिलांचल के निम्नवर्गीय संघर्ष का प्रामाणिक रूप नागार्जुन के उपन्यासों में मिलता है। यह कृषक आन्दोलन वस्तुत: शोषण के प्रति, अपने अधिकारों के प्रति किसानों की जागरूकता का परिणत फल है। नागार्जुन ने किसानों के संघर्ष का जो सक्रिय पक्ष अपने उपन्यासों में उभारा है, उससे यह साबित होता है कि कृषकों में आया नवजागरण प्रगति की ओर संकेत है। नागार्जुन के अनेक औपन्यासिक पात्र साम्यवादी दर्शनों से प्रभावित है जो अन्याय के सामने झुकते नहीं, अपने हक के लिये लड़ते हैं और उसे पाकर ही पीछे हटते हैं।[3] नागार्जुन यह भी सूचित करते है कि निम्न वर्ग की रक्षा वास्तव में उसी के हाथ में है, जो श्रम करता हैं।[4] अपने अधिकारों के प्रति सचेत, जागृत श्रमिक वर्ग ही शोषणहीन, सामाजिक व्यवस्था का पथप्रदर्शक है।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 102
2. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 72
3. उपन्यासकार नागार्जुन - [illegible] - पृ. 47

   [illegible] - [illegible] - [illegible] - पृ. 167-68

3. मज़दूर - पूंजीपति संघर्ष

उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त भारत में औद्योगीकरण प्रक्रिया की शुरुआत का समय है । इस समय यहाँ कुछ कल कारखाने स्थापित हुए । इनमें कुछ भूमिहीन किसान और देशी उद्योगधंधों से वंचित कुछ कारीगर जीविकोपार्जन के लिये भर्ती होने लगे । धीरे धीरे कल कारखानों ने औद्योगिक नगरों को जन्म दिया । औद्योगीकरण ने शोषक और शोषित के दो नये वर्गों को जन्म दिया एक संपन्न पूंजीपति वर्ग और दूसरा साधनहीन मज़दूर वर्ग । नागार्जुन के उपन्यासों में औद्योगीकरण की उपज इन दो वर्गों का परामर्श काफी मात्रा में नहीं हुआ है । उनके कुछ उपन्यासों में सांदर्भिक तौर पर ही पूंजीपति - मज़दूर संघर्ष का उल्लेख मिलता है ।

मज़दूर संगठन और संघर्ष

सन् 1920 में मज़दूरों की प्रतिनिधि सभा अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेज़ का जन्म हुआ । इस संस्था के द्वारा शहरों के मज़दूरों में वर्ग भावना विकास लेने लगी । सन् 1929 में साम्यवादी दल ने अखिल भारतीय मज़दूर संघ पर अधिकार जमाया । इस नये नेतृत्व में मज़दूरों द्वारा देश के विभिन्न भागों में हडतालें हुई, संघर्ष हुए ।[1] नागार्जुन के "बाबा बटेसरनाथ", "दुखमोचन", "इमरतिया" आदि उपन्यासों में पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध मज़दूरों के विद्रोह की झलक मिलती है ।

---

1. [illegible] - [illegible] - पृ - [illegible]

"बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में आसाम बंगाल में हुए हड़तालों के बारे में बटेसरनाथ के परामर्श से तत्कालीन मज़दूर आन्दोलन का परिचय मिलता है[1]। "दुखमोचन" में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मज़दूरों के हलचल का उल्लेख है। इस पर संकेत करके दुखमोचन कहता है "लन्दन में आजकल बड़ी अशान्ति है। जहाज़ी मज़दूर हज़ारों की तादाद में हड़ताल करनेवाले हैं, समूचा शहर उसका साथ देगा"[2] यह श्रमिक वर्ग की असीम शक्ति का परिचायक है।

ईमरतिया" उपन्यास में जमनिया की फैक्टरी में मज़दूरों की हड़ताल का उल्लेख है। अपने श्रम का उचित वेतन न देने पर चीनी के कारखाने में हुई हड़ताल के बारे में बाबा का कथन मज़दूरों के संगठन और संघर्ष का द्योतक है। वामपंथी विचारवाले मज़दूरों के संघर्ष का विवरण वे यों देते हैं "चीनी के कारखाने में लाल झंडेवालों ने हड़ताल कर दी है। पचास पचपन मज़दूर पकड़े गये। पिछली रात बड़ी देर तक नारे लगाते रहे। जेलर से लेकर मिनिस्टर तक मुर्दा बनाया जाता रहा। नौजवानों के गलों में ज़ोर बहुत था, जेलर को आखिर झुकना पड़ा। हड़ताली हवालातियों की माँग जेलर को मंज़ूर करनी पड़ी[3]।" मज़दूरों का यह नारा "इन्किलाब ज़िन्दाबाद किसान-मज़दूर एकता ज़िन्दाबाद श्रमिक वर्ग की संगठित शक्ति का परिचायक है। हड़तालों की विजय मज़दूरों की संगठित शक्ति की विजय है। इमरतिया में मज़दूर संघर्ष की विजय पर उपन्यासकार यों प्रकाश डालते हैं "हड़ताल करनेवाले

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ॰ 71-73
2. दुखमोचन - नागार्जुन, पृ॰ 33
3. इमरतिया - नागार्जुन, पृ॰ 62

मज़दूरों की मांगों के लिये संयुक्त समाजवादी पार्टी की स्थानीय शाखा के नेतृत्व में विशाल जनसभा का आयोजन होता है जो एक गंभीर विजय हो जाती है[1]।

निष्कर्ष

नागार्जुन ने श्रमिक वर्ग के संघर्ष के अन्तर्गत किसान-ज़मीन्दार संघर्ष को ही अधिक प्रधानता दी है। गाँवों की श्रमिक जनता के संघर्ष की अभिव्यक्ति के सिलसिले में शहरों के मज़दूर-संघर्ष पर उन्होंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। फिर भी प्रसंगवश मज़दूर जागरण, उनके संगठन और शोषक पूंजीपतियों के विरुद्ध उनके संघर्ष का उल्लेख किया है। इन दो तीन प्रासंगिक परामर्शों से ही देशव्यापी मज़दूर संघर्ष से पाठक परिचित हो जाते हैं। मज़दूर-पूंजीपति संघर्ष में शोषित मज़दूरों की विजय का परामर्श भी वे देते हैं जो इस वर्ग की प्रगति की सूचना है।

4. सत्ता तथा नौकरशाही के विरुद्ध आम जनता का संघर्ष

नागार्जुन के उपन्यासों में दो वर्गों के बीच का संघर्ष ज़रूर मिलता है। लेकिन यह वर्ग हमेशा ज़मीन्दार-किसान या पूंजीपति-मज़दूर नहीं होता। साधारण जनता के शोषण में लगे, उनपर अत्याचार करनेवाले हर शोषक वर्ग को नागार्जुन ने चुन चुनकर अपने उपन्यासों में

---

1. इमरतिया - नागार्जुन, पृ.79-80

प्रस्तुत किया । अतः उनके उपन्यासों में दिखायी देनेवाले शोषक - शोषित संघर्ष के परामर्श में स्वतंत्रताप्राप्ति के पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर भारत के कांग्रेसी नेताओं के शोषण और जनद्रोहमय कार्यों में लगे समय समय के नौकरशाहियों के शोषण और अत्याचारों से परिचित होना ज़रूरी है । इन शोषकों के विरुद्ध उभरती जनचेतना को उन्होंने वाणी दी है ।

सत्ताधारी कांग्रेसियों का भयानक शोषण

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय भागीदार कांग्रेसियों के जनशोषण का उग्र रूप नागार्जुन के "बाबा बटेसरनाथ", "बलचनमा", वरुण के बेटे आदि उपन्यासों में चित्रित है ।

सन् 1937 के आम चुनाव की जीत से भारत में देहातों के शासन का अधिकार कांग्रेस को मिला । जमीन्दारी घराने के अनेक व्यक्ति मंत्री बन गये । अभिजात वर्ग के इन नेताओं के लिये राजनीति विशुद्ध मनोरंजन का साधन है । "बाबा बटेसरनाथ" का एम.एल.ए. उग्रमोहनदास ऐसे नेता का प्रतीक है । वोटिंग के छः रोज़ पहले रूपउली आकर द्वार द्वार पर हाथ जोड़कर लोगों से वोट भिक्षा मांगनेवाले उग्रमोहन बाबू चुनाव के बाद जनता की समस्याओं के प्रति उदासीन है ।[1]

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 94

जनसेवक नेताओं द्वारा जनता के श्रम और धन का खूब शोषण होता है। "बलचनमा" में भूचाल से पीड़ित ग्रामीणों के लिये एकत्रित रिलीफ फंड की काफी रकम नेता लोग ही ऐंठते हैं[1]। स्वयं शोषित जनता के सहायक घोषित करनेवाले ये नेता आवश्यकता पर उनके साथ नहीं देते। "बलचनमा" उपन्यास में बहिन पर मालिक के अत्याचार में सहायता मांगनेवाले बलचनमा को जमीन्दार का रिश्तेदार होते हुए भी कांग्रेसी फूलबाबू निराश लौटाता है[2]।

आम जनता की वोटों से अधिकार की कुर्सियों पर विराजमान कांग्रेसी नेताओं के शोषण का "वरुण के बेटे" में भयानक रूप प्रस्तुत है। कोसी बांध की योजना का श्रमदान कांग्रेसियों द्वारा जनता के धन और श्रम के शोषण का परिचायक है। यह श्रमदान नेताओं के लिये मनोरंजन मात्र है। नेताओं के लिये चाय, बिस्कुट, पान सिगरेट, मिठाई, पूड़ी, कचौड़ी, दूध, दही, रेडियो-रिकार्ड, माइक-लाउडस्पीकर, अखबार, पत्र-पत्रिका कैमरेवालों की भरमार थी ही। इसी कोलाहल में रात दिन मेहनत करनेवाले श्रमिकों को उधार लेकर खाकर खाली हाथ वापस जाना पड़ता है। गांवों से बांध के काम में आये इन श्रमिकों को अपने कपड़े तक छोड़कर भागना पड़ता है[3]।

सभी अनैतिक आचरणों से कांग्रेसी शासन का संबंध है। अनैतिकता का अड्डा जमनिया मठ के गैरकानूनी करतूतियों से कांग्रेसी नेताओं का अटूट संपर्क है। अत: वे मठ के बाबा के लिये जेल में भी शाही सुविधाओं का प्रबन्ध करते हैं। जमनिया मठ के बाबा के शब्दों में कांग्रेस और समाजवादियों का अन्तर व्यक्त है। जमनिया फैक्टरी में

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 121
2. वही, पृ. 64
3. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 36

हुए मज़दूर संघर्ष के वर्णन में वे कहते हैं "जमनिया फेक्टरी में मज़दूरों ने दो साल पहले हड़ताल की थी । लेकिन वहाँ लाल झंडा नहीं था, तिरंगा था xxxxx लाल झंडेवाले ज़िद्दी होते हैं । झंडा उठा लेंगे तो परेशान कर देंगे, मिलवालों की नाक का पानी निकाल देंगे xxxx तिरंगेवाले तो मठवालों को मिलाकर ही चलते हैं । उन्हें मदद मिलती है मठ से ।"[1] बाबा का यह कथन कांग्रेज़ी अत्याचारों का अच्छा खासा परिचायक है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत का कांग्रेज़ी शोषण

स्वतंत्र भारत में कांग्रेज़ियों ने आज़ादी के फलों को अपने वर्ग हितों तक संकुचित कर दिया । परंपरागत ज़मीन्दारों और पूंजीपतियों की शृंखला में शोषण की एक नयी कड़ी, एक नया वर्ग पनपा - कांग्रेज़ी नेताओं और मंत्रियों का वर्ग । वर्तमान भारत के कांग्रेज़ी नेताओं को परंपरागत सामन्तवाद का जनतांत्रिक संस्करण कहा जा सकता है ।

स्वतंत्र भारत में सत्ताधारी कांग्रेज़ियों द्वारा शोषण ज़ारी रहा । स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति को "कुंभीपाक" उपन्यास में नागार्जुन यों व्यक्त करते हैं "15 अगस्त 1947 से पहले का वह राजनीतिक मैदान बहुत बदल गयी है । इशारा बदल गया है । खिलाड़ियों की नीयत बदल गयी है xxxxxx पहलेवाला वह लक्ष्य जाने किधर ओझल हो गया ? हाँ इतना तो है कि हर बुरे भले काम में महाप्रभुओं का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ अवश्य होगा ।[2]

1· इमरतिया - नागार्जुन, पृ·63
2· कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ· 32-33

कांग्रेज़ी मंत्रियों के लिये अपनी स्वार्थ पूर्ति ही सबसे प्रमुख है । "कुंभीपाक" का मंत्री जानकीनाथ गांधीजी को चित्र में सुरक्षित रखकर विदेशी वस्त्र पहनकर, मुलायम गद्देदार कुर्सियों पर बैठकर जनशासन करनेवाला है । आत्म निर्भरता, स्वदेश प्रेम और महान त्याग का प्रतीक खादी अब के नेताओं के लिये अपनी कार्यसिद्धि का साधन मात्र है[1] ।

"हीरक जयन्ती" उपन्यास आज के कांग्रेज़ी नेताओं और मंत्रियों पर किया गया व्यंग्य है । इसका मंत्री नरपति बाबू ढोंगी कांग्रेज़ी का प्रतीक है, जिसकी कथनी और करनी में आकाश पाताल का अन्तर है । जनसेवा की झूठी स्वांग भरनेवाले मंत्री की राय में "शासन और सत्ता की ज़रा भी लालसा हमारे अन्दर नहीं है । हां, इस बात की लालसा ज़रूर है कि जनता जनार्दन की सेवा के लिये अन्तिम क्षण तक हम अपने तन मन का उपयोग कर सकें[2] ।

अधिकार लिप्सा और स्वार्थ ने स्वतंत्र भारत के नेताओं को पथभ्रष्ट कर दिया है । किसी न किसी मार्ग में राजनीति में पैर जमाना हर किसी की इच्छा बन गयी है । इसके लिये अपनानेवाले मार्ग अकसर घृणित होते हैं । "हीरक जयन्ती" उपन्यास का पिछडवर्गीय ब्रजबिहारी घोष और बुझावन राम अपने स्वार्थ के लिये उन्नत जातिवालों द्वारा अपने वर्ग पर किये जानेवाले अत्याचार पर चुप रहते हैं[3] ।"

---

1. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 33

2. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ.129

3. वही, पृ.55-56

देश के कांग्रेज़ी नेतृत्व और संपन्न वर्ग दोनों अन्योन्याश्रित है। यही वर्तमान भारत की सबसे बडी दुर्दशा है। राजनीति अब कुछ धनिकों की रखैल बन गयी है। "बाबा बटेसरनाथ" में इस विषय पर उपन्यासकार का मत यों व्यक्त होता है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में स्थापित प्रजातंत्र "गरीबों और मूर्खों के लिये नहीं हुआ करती, वह तो खाते पीते सयानों की चौपड है[1]।"

समाज के संपन्न हमेशा अपने हितों की रक्षा के लिये मंत्रियों और राजनीतिक नेताओं की खुशामदी करते हैं तो राजनीतिज्ञों को चुनाव में पानी के समान रुपये बहाने के लिये संपन्नों की आवश्यकता है। "हीरक जयन्ती" उपन्यास का रामनिरंजन अग्रवाल जैसे संपन्न अच्छी तरह जानते हैं कि नरपति बाबू जैसे नेता अधिकार में आ जाय तो चुनाव में व्यय की गयी रकम थोडे ही दिनों में वे वापस जुटा सकते हैं[2]। राजा रेवती रंजन प्रसाद, गोपी वल्लभ आदि भी ऐसे ही स्वार्थी, मौका परस्त संपन्न है। विनोबाजी के भूदान यज्ञ के लिये सदा पानी के अन्दर डूबी रहनेवाली पांच बीघा ज़मीन का दानपत्र देनेवाला रेवती रंजन इस जनसेवा मे अपनी कार्यसिद्धि करनेवाला है[3]। गोपी वल्लभ के लिये राजनीति गांजे के व्यापार से लेकर सभी कार्यों की सिद्धि के लिये अत्यन्त आवश्यक है[4]।

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 95
2. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ. 105
3. वही, पृ. 16
4. वही, पृ. 17

काँग्रेज़ी नेताओं और मंत्रियों के शोषण और भ्रष्टाचारों की कोई सीमा नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकास के नाम पर अनेक योजनायें भारत में स्थापित हुईं। सार्वजनिक भलाई के लिये पास की गयी लाखों की संख्या में आधी भी जनता तक नहीं पहुँच पायी। "हीरक जयन्ती" में इन भ्रष्टाचारों का विशद वर्णन है। बुझावनराम जैसा व्यक्ति कुए खोदने में बीस हजार रुपये सरकार से लेता है और पुराने कुओं का जीर्णोद्धार करके पूरी रकम अपनाता है[1]। सरकार की लघु सिंचाई योजना आदि के नाम पर नेता और उनके चंचागीरी करनेवाले खूब कमाते है।"[2] नरपति बाबू जैसा ढोंगी, भ्रष्टाचारी मंत्री अवर्णों और परिगणितों के नाम सेवा मण्डल, छात्रावास, आश्रम आदि स्थापित करके उनमें उच्चजातिवालों को रहने देता है[3]। मंत्री पुत्र होने की योग्यता पर नरपति बाबू का बेटा गांजे की चोरबाज़ारी से लेकर सभी गैरकानूनी कार्यों को निर्भीकता से चालू कराता है[4]।

सत्यधारी शोषण के विरुद्ध उभरती नयी चेतना

शोषित, पीड़ित वर्ग निरन्तर अत्याचार सह नहीं सकता। कभी कभी भ्रष्टाचारी सत्ताधीशों के विरुद्ध यह दलित वर्ग आवाज़ उठाता दिखायी देता है। सत्ताधारियों के अन्याय और अत्याचार के खिलाफ जन संगठन और उनका विद्रोह नागार्जुन के "बलचनमा", "बाबा बटेसरनाथ", "कुंभीपाक", "इमरतिया" आदि उपन्यासों में यत्र-तत्र दिखायी पड़ता है।

---

1. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ.54

2. वही, पृ.50-51
3. वही, पृ.142

"बलचनमा" में कांग्रेज़ी सत्ताधारियों के शोषण पर बलचनमा का कथन "जब कांग्रेज़ मिनिस्टर हो जायेंगे तो गरीबों की भलाई होगी इनसे या बडे बाबू लोगों की" इस शोषण के प्रति निम्न वर्ग का सन्देह है ।

आज़ादी प्राप्ति के पहले हर भारतीय का सपना था कि स्वतंत्र भारत में शोषण और अन्याय का अन्त होगा । लेकिन थोडे ही दिनों में साधारण जनता यह जान गयी कि आजादी नेताओं और उच्चवर्गीय संपन्नों तक आकर रुक गयी है । "बाबा बटेसरनाथ" का दयानाथ इसी विचार को व्यक्त करता है । उग्रमोहनदास जैसे कांग्रेज़ी नेताओं की अन्यायपूर्ण करतूतियां देखकर वह कहता है "आज़ादी ! छि ! आज़ादी मिली है हमारे उग्रमोहन बाबू को, कुलानंद दास को । कांग्रेज़ की टिकट पर जो भी चुन गये है । उन्हें मिली है आज़ादी । मिनिस्टरों को और ऊँचे दर्जे की आज़ादी मिली है । सेक्रेटेरियेट के बडे साहबों को भी आज़ादी का फायदा पहुँचा है[1] । "कुंभीपाक" उपन्यास का रिक्शावाला शोषण और अत्याचार के प्रति निम्न वर्ग में आये जागरण का प्रतीक है । मज़दूरी कम देनेवाले मंत्री मित्र दिवाकर पर उसका रोष यों जलता है "सफेद पोश डाकू । कसाई कहीं का । किस सफाई से गरीबों का गला काटता है[2] ।"

निम्न वर्ग अपने ऊपर होनेवाले शोषण और अत्याचार से अब परिचित हो गया है और वह निर्भीकता से यह व्यक्त करता भी है । "कुंभीपाक" उपन्यास में मंत्री का चपरासी शासकीय भ्रष्टाचारों की जो खुलकर आलोचना करता है, वह शोषण से निम्न वर्ग की पहचान और उसके विरोध का पर्याप्त प्रमाण है । रिक्शेवाले से वह कहता है "इन

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 95
2. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 32

कोठियों के अन्दर तो अन्याय पनाह लेता है सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में कैद है । उसे तुम तक पहुँचने में दस बीस वर्ष लग जायेंगे अभी ।[1] अधिकारी वर्ग के विरुद्ध, जनसाधारण के विद्वेष का विस्फोटक अंश "इमरतिया" में है । सभी अनैतिक आचारों का अड्डा जमनिया मठ के अत्याचारों का अखबारों द्वारा अनावरण होता है । जमनिया मठ के धन के बल पर लोकसभा चुनाव लडे सेठ विर्धीचन्द्र के आदमी की पराजय पर अखबारों का विवरण "ढोंग और अंधविश्वास के सहारे उपार्जित की हुई मठवालों की यह धनराशि श्मशान की भस्म की भांन्ति व्यर्थ साबित हुई"[2], सत्ताधारी वर्ग पर आम जनता के वक्ता समाचार पत्रों की निर्भीकता को स्पष्टकर देता है ।

शासकीय भ्रष्टाचारों का सविस्तार प्रतिपादन करनेवाले "हीरक जयन्ती" उपन्यास में भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनसाधारण के संघर्ष का चित्रण है । मुख्यमंत्री के अन्याय के विरुद्ध छात्रों का प्रदर्शन भ्रष्टाचार के खिलाफ संगठित पीड़ित वर्ग की शक्ति/की घोषणा है । पुलीस के आक्रमण में मरे विद्यार्थियों की लाशें सजाकर विराट जुलूस चलाते हुए सत्ताधारियों को ललकारनेवाले छात्र वास्तव में अपने अधिकार के बल पर मनमानीपन पर तुले शासकों के विरुद्ध जनता के विद्रोह का प्रतीक है[3] ।

---

1. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 32
2. इमरतिया - नागार्जुन, पृ. 95
3. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ. 83

नौकरशाही शोषण के विरुद्ध जन संघर्ष

भारत के राजनीतिक क्षितिज में समय समय पर सत्ता में आये शासकों के साथ मिलकर यहाँ के नौकरशाही वर्ग भी जनता के शोषण और दमन में लगे रहे। नौकरशाही आधिपत्य की यह बढ़ती ताकत वस्तुतः जनसाधारण की प्रगति के लिये हानिकारक है। यह अधिकार प्राप्त वर्ग अकसर शासन के ऊँचे ओहदों पर विराजमान कलक्टर, पुलीस अधिकारी आदि हुआ करता है। जनता पर अपने अधिकारों का प्रयोग करनेवाले ये रिश्वतखोर है और समाज के संपन्नों के हितैषी है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के सिवा न्यायान्याय का विवेचन इन्हें कभी नहीं आता। नागार्जुन के "बाबा बटेसरनाथ", "बलचनमा", "वरुण के बेटे" "हीरक जयन्ती", "उग्रतारा", "इमरतिया", आदि उपन्यासों में नौकरशाही हस्तक्षेप के कारण न्याय से वँचित रहनेवाले पीड़ित वर्ग का विरोध चित्रित है।

नौकरशाही अन्याय और भ्रष्टाचार

अधिकार प्राप्त वर्ग संपन्न के आतिथ्य के, उसके प्रलोभनों के सामने न्याय का पर्वाह नहीं करता। "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास में सार्वजनिक उपभोग की भूमि पर व्यक्तिगत आधिपत्य की जाँच करने आये पुलीस अफसर संपन्न टुनाई पाठक के यहाँ खूब खा पीकर शिकायत दिये जैकिसुन, दयानाथ आदि गरीब किसानों पर झूठे मुकदमे अदा करता है।[1]

---

1. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 87

"बलचनमा" उपन्यास में भी जमीन्दार और अधिकारी वर्ग के इस अन्योन्याश्रय पर संकेत है । किसानों के संघर्ष को दबाने के लिये जमीन्दार पुलीस, दारोगा, कलक्टर आदि उन्नत अधिकारियों की सहायता माँगता है[1] । बाढ, अकाल जैसी विडंबनाओं के समय पीड़ित वर्ग पर अधिकारियों का व्यवहार वास्तव में नृशंस और निष्ठुर है । "वरुण के बेटे" उपन्यास में बढते पानी से बचने के लिये मालगाडी के डिब्बों में शरण लिये आबालवृद्ध गरीब ग्रामीणों को स्टेशन मास्टर धमकी देकर वहाँ से निकालने का प्रयास करता है[2] ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी नौकरशाही शोषण जारी रहा । "हीरक जयन्ती" में निरक्षरता निवारण, समाज कल्याण और ग्रामोद्योग के नाम पर काम मिले अनेक युवकों से नियुक्ति के लिये विभागीय हेड क्लर्क एक एक सौ की दक्षिणा लेता है[3] । अधिकारी वर्ग अवसर अनवसर पर गरीबों को सताने में नहीं हिचकता, लेकिन अन्यायी सम्पन्न के रोए तक छूने का साहस उनमें नहीं । मुजरिम को दण्ड देने में नियुक्त पुलीस भी कैदियों के धन वैभव के अनुसार उसे अधिकाधिक सुविधायें देकर संतुष्ट रखता है । "इमरतिया" में सभी गैरकानूनी कार्यों के लिये अभियुक्त जमनिया मठ के बाबा को जेल में सुविधाओं का इन्तजाम होता है । स्वयं जिलाधीश ही बाबा को शाही कैदी की तरह रखने की विशेष अनुमति देता है[4] । पैसेवालों को अलग सुविधायें प्राप्त करानेवाले जेल अधिकारियों की रीति और संकेत 'उग्रतारा' में मिलता है[5] ।

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 132
2. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 79
3. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ. 119
4. इमरतिया - नागार्जुन, पृ. 50
5. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 13

अन्याय के विरुद्ध जनजागरण

अधिकार प्राप्त सरकारी अफसरों के विरुद्ध साधारण जनता के विद्रोह की झलक "बलचनमा", "वरुण के बेटे" आदि उपन्यासों में है। "बलचनमा" उपन्यास में जमीन्दार के अनुरोधानुसार किसानों के दबाव में आये दारोगा और एस॰डी॰ओ॰ को किसानों का हितैषी डॉ॰ रहमान यह चेतावनी देता है कि एक बूंद भी खून गिरा तो उसकी जिम्मेदारी उन पर होगी। किसानों के विरुद्ध, जमीन्दारों के पक्ष में घूमनेवाली पुलीस को इस प्रकार सशक्त वाणी में वे ललकारते हैं[1]।

"वरुण के बेटे" में गरीब मछुए अपने अस्तित्व के लिये रेलवे अधिकारियों से लड़ते हैं। बाढ पीड़ित गरीब मछुओं को मालगाडी से जबर्दस्ती खाली करानेवाले स्टेशन मास्टर की निष्ठुरता पर हर एक मछुआ क्रोध से उबल उठता है[2]। खाली कराने के लिये मिलिटरी के आने की खबर पर भी वे भयभीत नहीं होते। खुरखुन निर्भीक होकर ललकारता है "देखें हमें तोप से उडाती है मिलिटरी[3]।" मछुओं को दिलासा देकर वह कहता है "अब हमारी मर्जी के बिना कोई तुम्हें बाहर निकाल नहीं सकता[4]। मछुए यह दृढ निश्चय लेते हैं कि एकाध व्यक्ति मरें तो भी वे हार नहीं मानेंगे। यही नहीं बाढ का पानी हटते तक डिब्बा खाली न कराने के उनके निश्चय के सामने अधिकारी वर्ग को झुकना पड़ता है[5]।

1· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 134

2· "आग लगा दूंगा, स्टेशन में ईंट से ईंट बजा दूंगा"
वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ· 74

3· वही, पृ· 75

4· वही, पृ· 75

5· वही, पृ· 75

निष्कर्ष

स्वतंत्र भारत का ज्यादातर समय कांग्रेज़ी शासन का काल है । भारत की आज की दु:स्थिति का प्रमुख कारण भी सालों से इस देश के शासन की गद्दी पर बैठे कांग्रेज़ी शासक है । इनके भ्रष्टाचारों से आम भारतीय परेशान है । भ्रष्टाचारों और अत्याचारों में हर बदलती सरकार को सहायता देनेवाली नौकरशाही वर्ग आम जनता के रक्त चूसते पनपते हैं । जनता से प्रतिबद्ध कलाकार नागार्जुन ने सत्ताधारी तथा नौकरशाही शोषण को यथावत् प्रस्तुत करके इनके अत्याचारों के विरुद्ध आम जनता के सशक्त विद्रोह को वाणी दी है । उनकी जनवादिता इन प्रसंगों में प्रत्यक्ष दृष्टव्य है ।

5. शोषण के विरुद्ध नारी का संघर्ष

भारतीय स्त्री युग युगों से अस्वतंत्र रही है । शैशव में पिता, यौवन में पति और वार्धक्य में पुत्र द्वारा संरक्षित भारतीय नारी का अपना कोई अलग अस्तित्व ही नहीं । इस प्रकार अपने चारों ओर की दुनियाँ की गतिविधियों से अपरिचित होकर अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ होकर जीनेवाली नारी पुरुष द्वारा बनाये नैतिक नियमों के अन्दर दम घुटती मरती है । संरक्षण में बाध्य पुरुष द्वारा सदियों से वह पीड़ित और दमित होती आ रही है । समाज तो अनेक दकियानूसी विचारों और जर्जरित मान्यताओं के पिंजरे में उसे बंधा रखता है । देवी, पतिव्रता, गृहलक्ष्मी जैसे विशेषणों से विभूषित कर युग युगों से पुरुष स्त्री वर्ग से अपनी स्वार्थ सिद्धि करके आये हैं । ऐसी भारतीय नारी के

दयनीय जीवन को प्रस्तुत करके आधुनिक युग में नारी के जीवन में आये नवीन परिवर्तनों की ओर नागार्जुन अपने उपन्यासों के ज़रिये हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं ।

समाज में नारी का शोषण - विविध आयाम

रूढ़िग्रस्त समाज में स्त्री हमेशा शोषण का शिकार रहती है । ज्यादातर रूप में अनमेल विवाह, बहुविवाह, वैधव्य, वेश्यावृत्ति द्वारा समाज में स्त्री का शोषण होता है । इन समस्याओं में फंसी नारी का जीवन नागार्जुन के सभी उपन्यासों में चित्रित है ।

अनमेल विवाह

समाज में स्त्री को अपने पति चुनने का अधिकार नहीं । उसके लिये योग्य वर घरवाले ही ढूंढते हैं, जो अक्सर उनके लिये अयोग्य ही होता है । अपने पिता या घर के सयानों के चुने वर के साथ उसे जीना पड़ता है। ऐसे विवाह में स्त्री की रुचि या उसकी कल्पना की कोई प्रधानता नहीं होती । इस प्रकार के अनमेल विवाहों द्वारा स्त्री अधिक शोषित रहती है । नागार्जुन के "नयी पौध" उपन्यास में मिथिलांचल के सौराठ की मेले का वर्णन है जहाँ विवाह केवल एक व्यापार मात्र है । वर वधुवाले एकत्रित होनेवाले इस मेले में अर्थलोलुप पुरुष द्वारा स्त्री की बिक्री होती है । "नयी पौध" उपन्यास के खोंखई पण्डित के लिये ऐसी बिक्री नयी नहीं है । अपनी छः कन्याओं को छः सौ से लेकर ग्यारह सौ तक की रकमों में बेचकर वह पैसा कमाता है । वह

अपनी चौदह वर्षीय नतनी विश्वेश्वरी के लिये साठ साल के चतुरानन चौधरी को चुन लेता है । पांचवीं बार दूल्हा बननेवाला चौधरी चार सयाने लड़कों का पिता भी है । इस विवाह में उसका प्रमुख आकर्षण दूल्हे से मिलनेवाले नौ सौ रुपये है[1] ।

"उग्रतारा" की उगनी भी अनमेल विवाह का शिकार है । निरालंब, निरीह युवति उगनी पचास साल के अधेड़ सिपाही भभीखनसिंह की पत्नी बनने में विवश की जाती है । अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये उगनी की मांग पर सिन्दूर भरकर भभीखनसिंह यह स्वांग मारता है कि देहात की आवारा छोकरी को इज्जतदार घराने की मर्यादा देकर उसने बड़ा किया[2] । "कुंभीपाक" उपन्यास की चंपा भी अपने पति के साथ कभी मेल नहीं खा पाती है । दस हज़ार देकर मां-बाप ने अनपढ चंपा के लिये पढाकू पति खरीदा । शिक्षित पति हमेशा चंपा से उपेक्षित रहता है और दूसरों के सामने उसे प्रस्तुत करना योग्य नहीं मानता जिससे चंपा का जीवन यातनामय बन जाता है[3] ।

बहुविवाह

भारतीय समाज में प्रचलित बहुविवाह की प्रथा स्त्री की स्थिति को अधिक शोचनीय बना देती है । एक ही समय अनेक स्त्रियों से शादी करने का, अनेक पत्नियां रखने का अधिकार समाज ने पुरुष को दिया है, जिसका दुष्परिणाम बेचारी स्त्री को भोगना पड़ता है । तीन तीन विवाहितायें और पांच पांच रखेल रखकर भी चूड़ियों से सूनी कलाई की

---

1. नयी पौध - नागार्जुन, पृ. 21
2. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 10
3. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 83-84

और लालची दृष्टि रखनेवाले पुरुषों के समाज में अपने पति की अनेक पत्नियों में एक होकर रहने में स्त्री विवश की जाती है । "रतिनाथ की चाची" का मेवालाल ठाकुर दो पत्नियों के रहते पचास साल में एक कन्या का पाणिग्रहण करता है तो भोला पण्डित पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पैंतालीस वर्ष की आयु में दूसरी शादी करनेवाला है।[1] इस बहुविवाह प्रथा में स्त्री सम्मान और आदर का योग्य नहीं । वह केवल पुरुष की वासनापूर्ति का साधन मात्र रह जाती है । यह प्रथा वास्तव में स्त्री की कोमल भावनाओं पर पुरुष का आक्रमण है । इसमें उसका खूब शोषण और तिरस्कार होता है ।

वैधव्य

वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक नारी के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आया । समाज में उसका सम्मानित स्थान नहीं था । औसत नारी की स्थिति यह है तो विधवा की नियति इससे भी बदतर है । विधवा के प्रति समाज का दृष्टिकोण अब भी परंपरावादी, दकियानूसी है । उसके जीवन से संबंधित हर बात पर समाज हमेशा उत्सुकता दिखाता है । गाँव में विधवा का जीवन नरकतुल्य है । बिहार जनपद के रूढ़िग्रस्त समाज में विधवा के यातनापूर्ण जीवन को नागार्जुन ने अपने अनेक उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "नयी पौध", "दुखमोचन" और "उग्रतारा" में विधवा पर समाज के अत्याचार और अन्याय की अभिव्यक्ति हुई है ।

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 77

"रतिनाथ की चाची" में गौरी का वैधव्य, पिता की कुलीनता के मोह से उत्पन्न दरिद्र, रोगी, ब्राह्मण वैद्यनाथ झा की कुलमहिमा पर आकृष्ट होकर गौरी के पिता उसे अपनी कन्या सौंपता है। पत्नी और दो अबोध शिशुओं को इस दुनिया में छोड़कर गौरी के पति की मृत्यु हो जाती है। सालों बाद निरालंब गौरी पर उसके देवर जयनाथ के आक्रमण से वह गर्भवती हो जाती है, जिससे विधवा गौरी समाज के दुत्कार और उपहास का पात्र बन जाती है। गाँववालों की आँखों में वह व्यभिचारिणी, पतिता, भ्रष्टा, कुल्टा और छिनाल बन जाती है। समाज उसे क्षमता देने को तैयार नहीं। उसके सयाने बच्चे प्रतिभासा और उमानाथ उसे अपमान और उपेक्षा में अकेले छोड़ते हैं। वैधव्य जीवन के कड़ुए आसव पीकर गौरी कहती है "किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का संयोग नहीं मिला। पुरुष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विषपान करती आयी है।"[1] गौरी का प्रस्तुत कथन निःसहाय नारी जीवन की दयनीयता का प्रमाण है।

"बलचनमा" उपन्यास में बलचनमा की दादी और माँ विधवा होने के नाते समाज के शोषण और दमन सहनेवाली स्त्रियाँ है। मालिक के झाँट झपट ही नहीं, मार पीट खाकर बलचनमा की माँ अपने पितृहीन बच्चों का पालन करती है। यही नहीं मालिक की भूखी आँखों से अपनी सयानी बेटी के संरक्षण का भार भी उसके ऊपर है। "उग्रतारा" उपन्यास में विधवा उगनी का जीवन समाज के नैतिक नियमों की सीमा में घुटकर दुःखपूर्ण बन जाता है। विधवा विवाह को निषिद्ध माननेवाले समाज में नये जीवन की आकांक्षा में कामेश्वर के साथ भागनेवाली उगनी जीर्ण शीर्ण परंपराओं के विश्वासी गाँववालों द्वारा पकड़ी जाती है

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 89

जिससे वैधव्य जीवन से बचने का मार्ग उसके सामने बन्द हो जाता है[1]।

"नयी पौध" उपन्यास में रामेश्वरी और उसकी चार बहनों का वैधव्य अनमेल विवाह का परिणत फल है। पिता के धनलोभ के शिकार ये बहनें रोगी और बूढों से शादी की जाती है और चारों को वैधव्य का दुःख भोगना पड़ता है। "कुंभीपाक" की इन्दिरा का जीवन घुटी हुई तबीयत के युवकों और आदर्शहीन अधेडों के बीच एक विधवा तरुणी का दयनीय जीवन है। चार महीने का गर्भ होने पर एक अत्याचारी रिश्तेदार द्वारा डाक्टरी इलाज के बहाने धर्मशाला में छोडी जानेवाली विधवा इन्दिरा के जीवन के अनेक कठोर अनुभव समाज में विधवा स्त्री की निःसहायता का परिचायक है।

वेश्यावृत्ति

समाज की अधिकांश वेश्यायें पुरुष के स्वार्थ की उपज है। ये, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, बहुविवाह प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों से उद्भूत है। स्त्री जीवन से खिलवाड करनेवाले पुरुष ही समाज में वेश्याओं की बढती संख्या का कारण है। नागार्जुन के "कुंभीपाक", "इमरतिया" आदि उपन्यासों में वेश्या बनने में विवश नारी का दुःख अभिव्यक्त हुआ है।

"कुंभीपाक" उपन्यास के चंपा का घृणित जीवन पुरुष वर्ग की निष्ठुरता और शोषण का उत्तम उदाहरण है। विवाह के दो साल बाद विधवा होनेवाली चंपा से उसका जीजा अनैतिक संबंध स्थापित

---

1. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 29

करता है । जीजी की मृत्यु के बाद भी वह उसे स्वीकारता नहीं । वहाँ से चंपा का जीवन गंदे और गलत रास्ते से होकर गुज़रता है । सफदर नामक मुसलमान के साथ पाकिस्तान भागनेवाली चंपा फिर भारत आकर वेश्या के रूप में जीने लगती है और वह लडकियों की बिक्री में भी भागीदार बनती है । स्नेह और संरक्षण की प्यासी चंपा के जीवन को कलंकित करने का पूर्ण उत्तरदायित्व समाज के कायर, कापुरुष को है ।

"कुंभीपाक" का तिलकधारी दास, शर्मा जैसे व्यक्ति अबोध, सरल, गरीब लडकियों की असहाय स्थिति का लाभ उठाकर कमानेवाले नपुंसक है । ऐसे व्यक्तियों द्वारा लडकियाँ वेश्यायें बनायी जाती है । संजीवनी आश्रम की आड में लडकियों की बिक्री करनेवाले मैनेजर के लिये स्त्री आसानी से पैसा कमाने का साधन है । स्त्री जीवन को नि:सार, निर्मूल्य मानते हुए वह कहता है "समाज जिनको वापस लेने के लिये तैयार नहीं, उन लडकियों के लिये दुनिया गेंद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चय नहीं कि गोल पर पहुँच जायेगी[1] ।"

स्त्री शरीर का शोषण वेश्यालयों तक सीमित नहीं । सभ्य समाज में मठ, आश्रम जैसी धार्मिक संस्थाओं की आड में होनेवाले स्त्री का शारीरिक शोषण भयानक है । यहाँ अवधूतिनी के समान जीनेवाली स्त्रियों की स्थिति वेश्याओं से भी बदतर है । "इमरतिया" उपन्यास का जमनिया मठ नारी शोषण में किसी वेश्यालय से भी आगे है । इस मठ में बेचारी स्त्रियाँ मठ के धनार्जन के साधन है । ये मठ से संरक्षित उन्नतों की रखैल हैं । जमनिया मठ की गोरी अनेक पुरुषों की काम पूर्ति का साधन बनकर वासना की पुतली बन जाती है । वह स्वयं कहती है "मैं डायन हूँ । कच्चा चबाने के लिये मुझे आदमी चाहिये[2] ।" इन मठों में नारी इतनी नि:सहाय है कि अपने उपर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध वह मुँह नहीं खोल पाती । यहाँ स्त्री अपने मन की सभी कोमल

---

1. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 72
2. इमरतिया - नागार्जुन, पृ. 23

भावनाओं से दूर केवल वासना का पुतला मात्र रह जाती है । बाबा की कीर्ति और मठ के धनार्जन के लिये आयोजित यज्ञ में मठ की सधु आइन लक्ष्मी की गोद से छीनकर छः महीने का नन्हा बच्चा हवनकुंड में फेंका जाता है[1] । जमनिया मठ में एक हद तक स्त्री, भक्तों के आकर्षण का केन्द्र है । इस आकर्षण को बनाये रखने केलिए मठवाले स्त्रियों का काफी मात्रा में उपयोग करते है । स्वयं बाबा के अनुसार "इमरतिया जायेगी तो जलेबिया आ जायेगी । एकाध सधुआइन न रहे तो मठ उदास लगता है । भक्तों की तबीयतें उचटी उचटी सी रहती है[2] ।" इस प्रकार वेश्यालयों और धार्मिक मठों द्वारा भद्र समाज में स्त्री शोषित रहती है ।

निम्नवर्गीय नारी का शोषण

अर्थाभाव के कारण समाज में स्त्री का शोषण अधिकाधिक होता रहता है । सामन्तीय समाज में मालिक जमीन्दारों द्वारा निम्न वर्गीय गरीब स्त्री का शारीरिक शोषण होता है । निम्नवर्गीय स्त्री के शरीर पर भी अपना अधिकार माननेवाले जमीन्दारों की आँखें हमेशा श्रमिक स्त्रियों के इर्द गिर्द घूमती रहती है । इन स्त्रियों की अबोधता, ईमान्दारी और मालिक पर अटूट विश्वास का लाभ उठाकर संपन्न जमीन्दार वर्ग उनके शरीर पर अधिकार जमाता है । "बलचनमा" उपन्यास में बलचनमा की माँ अपने ऊपर अन्याय करनेवाले मालिक के विरूद्ध कुछ नहीं कहती । उसका दृढ विश्वास है कि जिन लोगों के जूठन खाकर, फेरन फारन पहन ओढकर अपनी ज़िन्दगी गुदस्त करते हैं,

---

1. इमरतिया - नागार्जुन, पृ.23
2. वही, पृ.25

उनके विरुद्ध होना पाप है।[1]" परंपरागत मूल्यों पर गरीबों की यह अंधी आस्था ज़मीन्दारों के लिये उनका शोषण आसान बना देती है।

शोषण के प्रति जागरूक नारी

वर्तमान युग में नारी के प्रति समाज के दृष्टिकोण में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार समाज में नारी की स्थिति में आन्दोलनात्मक सुधार का प्रमुख कारण रहा है। शिक्षित नारी समाज में अपने अस्तित्व के प्रति - अपने सामाजिक अस्तित्व के प्रति और सर्वाधिक अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगी। इस प्रकार जागृत नारी में पुरुष के शोषण, अन्याय और दमन से मुक्त होने की इच्छा प्रबल होती गयी। आनंद की बात यह है कि यह जागरण शहर की शिक्षित नारियों तक ही सीमित नहीं रही, गाँव की अशिक्षित स्त्रियाँ भी इस नवजागरण से प्रभावित हो गयी। नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची" से लेकर "इमरतिया" तक के उपन्यासों में स्त्री जागरण का क्रमिक विकास हम देख सकते हैं।

नारी स्वतंत्रता के विभिन्न सोपान - जागरण का प्रारंभिक चरण

नागार्जुन के अनेक स्त्री पात्र सामाजिक शोषण से परिचित दिखायी पड़ते हैं। समाज की उपेक्षा और उपहास के सामने वह निर्भीक रहती है। पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों में भी इस जागरण की झलक मिलती है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में गौरी की माँ

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 84

अपनी गर्भवती विधवा पुत्री को समाज की उपहास भरी दृष्टि से बचाती है। बद किस्मत और निरन्तर दुःख दुरितों से गुज़रकर जीवन की सभी कठिनाइयों को साहस के साथ सामना करने का हिम्मत उसमें है। समाज के आक्रमण पर वह यों विद्रोह करती है "मैं रूई का फाहा नहीं हूं कि लोग फूंक देंगे और उड जाऊंगी"[1]। "बलचनमा" में बलचनमा की माँ जागृत नारीत्व का प्रतीक है। अपनी बेटी पर जमीन्दार के अत्याचार की कोशिश को रोकनेवाली वह माँ, धमकियाँ सुनकर और मार पीट खाकर भी अभिमान खोने नहीं देती[2]। अशिक्षित, अबोध, स्त्री का यह विरोध जागरण का सूचक है। पुरानी पीढी के इन दोनों स्त्रियों में अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की चेतना काफी मात्रा में मिलती है।

दूसरा चरण - नारी शिक्षा का प्रचार और उससे परिवर्तन

नारी शिक्षा के बढते प्रचार से स्त्री की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखायी पडता है। आधुनिक युग में स्त्री के सर्वांगीण विकास में स्त्री शिक्षा का महत्व अपरिमेय है। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भारत में विशेषकर यहाँ के गाँवों में नारी की स्थिति धीरे धीरे सुधरती दिखायी पडती है। इसका प्रमुख कारण शहरों के समान गाँवों में भी नारी शिक्षा को प्राप्त व्यापक प्रोत्साहन है। पुरानी परंपरागत विश्वासों पर अधिष्ठित ग्रामीणों की दृष्टि में स्त्री का शिक्षित होना अनावश्यक है। "नयी पौध" उपन्यास में विश्वेश्वरी का नाना उसे उच्चशिक्षा देने का विरोध करता है[3]। लेकिन गाँव की हवा धीरे धीरे बदलने लगी है। नागार्जुन के उपन्यासों के अनेक ग्रामीण पात्र नारी

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 37
2. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 59 मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्ज़त का सौदा करना अच्छा नहीं।
3. नयी पौध - नागार्जुन, पृ. 26

शिक्षा के महत्व पर बोधवान है । अनपढ़ बलचनमा का कहना "जब लड़कियाँ भी लड़कों की तरह पढ़ी लिखी होने लगेंगी तभी इस मुल्क का उद्धार होगा ।[1]" इस विचार का प्रतिफलन है ।

शिक्षित नारी, समाज में अपना अलग अस्तित्व महसूस करने लगी है । हर बात में वह अपना अलग स्वतंत्र दृष्टिकोण रखती है, अनुशीलन करती है और खुद निर्णय भी लेती है । पुरुष के समान नौकरी करके कमानेवाली स्त्री अब आत्मनिर्भर हैं । यह आत्मनिर्भरता एक हद तक उसमें आत्मविश्वास जगाता है । "नयी पौध" उपन्यास की वाचस्पति की माँ ऐसी ही आत्मनिर्भर नारी का प्रतीक है जो अनेकों के विरोध को बेपरवाह करके, कई दहकते अंगारों का सामना करके कन्यापाठशाला की मास्टरनी का काम संभालती है[2] । "उग्रतारा" के नर्मदेश्वर की भाभी शिक्षित है और वह अपने गाँव की बहुत सारी बहू बेटियों को पढ़ाने का काम भी अपने ऊपर ले लेती है । नारी शोषण और अस्वतंत्रता के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाली नर्मदेश्वर की भाभी कायर पुरुषों पर यों प्रहार करती है । अपने गाँव के युवकों के बारे में उसका विचार है "सुन्दरपुर मढ़िया के नौजवान गोबर है, ऐसे गोबर जिस पर उँगलियाँ रखें तो काठ बनेंगी, कण्डे नहीं । यह जागृत नारी के स्वतंत्र दृष्टिकोण को प्रमाणित करता है[3] ।

1· बलचनमा - नागार्जुन, पृ· 99

2· नयी पौध - नागार्जुन, पृ· 107

3· उग्रतारा - नागार्जुन, पृ· 30

शोषण के प्रति स्त्री की पहचान

आज की नारी अपने परिवेश के प्रति काफी जुझारु हो चुकी है। अपने वर्ग पर होनेवाले शोषण और अन्याय पर वे अब जागृत है। धर्म के नाम पर, कुलीनता के नाम पर, पुरानी मान्यताओं और परंपरागत विश्वासों की आड में अपने शोषण करनेवालों के विरुद्ध स्त्री अब जाग गयी है। आज की नारी किसी को अपने शोषण करने नहीं देती। "कुंभीपाक" उपन्यास की चंपा, कम्पाउण्डर की बीबी निर्मला आदि पात्र इस प्रकार के शोषण के विरुद्ध लड़नेवाली स्त्रियाँ है।

ज़िन्दगी के कडुए अनुभवों से गुज़रकर चंपा अपनी जैसी स्त्रियों के, समाज द्वारा शोषण खूब पहचानती है। आश्रम, मठ आदि की ओट में बेचारी युवतियों को व्यभिचार की ओर घसीटनेवालों की असलियत से चंपा अपने वर्ग को सचेत बनाती है[1]।

स्त्रियों की बिक्री करनेवालों के हाथ से भुवन यानी इन्दिरा को बचानेवाली कम्पाउण्डर की बीबी निर्मला आज की जागृत नारी का उज्वल प्रतीक है। समाज विरोधियों के हाथ से इन्दिरा को बचाकर वह उसे अपनी भाभी के पास पहुँचाती है और उसे आगे पढाने की इन्तज़ाम करती है। इन्दिरा को उसके भ्रष्ट जीवन से

---

1. "ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे है - स्वार्थियों के अखाडे xxxxxxx अब वक्त आ गया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें" कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ.107

उबारनेवाली निर्मला अपने चारों ओर की स्त्रियों के शोषित जीवन से परिचित है । सन्तान लाभ के लिये पुनपुन नदी के किनारे सन्तों की जमात जाकर भभूत चढवाने का उपदेश देनेवाली प्रतिभामा पर उसका क्रोध स्त्री शोषण के प्रति उसके जागृत दृष्टिकोण की सबूत है । झूठे, सदाचारहीन धार्मिक नेताओं पर उसकी घृणा यों प्रकट होती है "ऐसी जगहों में कौन से मन्त्र पढे जाते हैं और कैसी भभूत चढा जाती है मुझे मालूम है xxxxxxxxx सन्तान के लिये यही सब करना होगा तो मैं टेढे मेढे रास्तों पर नहीं चलूँगी, सीधी सडक पकडूँगी[1] ।

"उग्रतारा" उपन्यास की उगनी परंपरागत मान्यताओं के खिलाफ प्रगतिपूर्ण विचार रखनेवाली है । अधेड सिपाही भभीखनसिंह के साथ अपनी शादी को वह विवशता का बन्धन समझती है और उससे मुक्त होना चाहती है । वैवाहिक जीवन से ऊबकर वह सोचती है "स्त्री पुरुष के उम्र का फासला, वैदिक विधियों से, अग्नि में आहुतियों से, माँग में सिन्दूर भरने से नहीं मिटता[2] । उगनी का यह विचार जीर्ण शीर्ण नैतिक मान्यताओं के विरुद्ध है और इसलिये प्रगतिपूर्ण है ।

आज की नारी अपने श्रम पर निर्भर रहनेवाली है । अत: उसका शोषण अब संभव नहीं । वह किसी से नहीं डरती और किसी को अपना आत्माभिमान चौपट करने नहीं देती । "हीरक जयन्ती" उपन्यास की पुष्पा अपने नारीत्व को बनाये रखने के लिये मंत्री नरपति बाबू से भी झिडकती है और इस क्रोध में नृत्य नाट्य केन्द्र का अपना काम भी छोड देती है[3] ।

1· कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ· 112

2· उग्रतारा - नागार्जुन, पृ· 35

3· हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ· 67

नारी स्वतंत्रता और समानता के स्वर

आधुनिक युग में नारी पुरुष के बराबर अधिकार केलिये संघर्ष कर रही है । समाज में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रह गया है जो नारी के लिये अप्राप्य है । अब वह गृहस्वामिनी के सीमित दायरे से ऊपर उठकर अपनी आजीविका आप खोजने लगी है । अतः आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तौर पर नारी स्वतंत्रता और समानता की लहर ज़ोर पकड़ने लगी । नागार्जुन के अनेक[1] स्त्री पात्र स्वतंत्रता और समानता की तीव्र इच्छा प्रकट करनेवाले है ।

"हीरक जयन्ती" उपन्यास की ललनजी की पत्नी मध्यवर्गीय गृहस्वामिनी है जो लड़की को बोझ माननेवाले वातावरण में अपनी बेटियों के भविष्य पर ज़रा भी विचलित नहीं होती । घर के चहरदीवारों में बन्द उसका विचार शिक्षित नारियों से भी काफी सुधारवादी है । बारात में खूब खर्च करके लड़की को गहनों से सजाने और आडंबरपूर्ण विवाह कराने के लड़केवालों की हज़ारों माँग के सामने परेशान नहीं है । अपनी बेटियों के बारे में उसका यह विचार कि "लड़कियाँ क्वारी क्यों रहेंगी ? पढ़ लिख के काम करेंगी, आप अपना दूल्हा खोज लेंगी । कम पढ़ी लिखी लड़कियाँ भी इस तरह के धंधे कर सकती है । बूढ़े माँ बाप को पाल सकती है"[2] वास्तव में नारी जीवन के बदलते परिवेश का सशक्त प्रमाण है । इसी प्रकार "वरुण के बेटे" की मधुरी नारी-स्वतंत्रता की सशक्त वक्ता है । मछुए परिवार की अनपढ़ लड़की मधुरी पुरुषाधिपत्य के समाज में अपना स्वतंत्र अस्तित्व अनुभव करनेवाली है । ससुर की

---

1. उपन्यासकार नागार्जुन - बाबूराम गुप्त, पृ. 39
2. हीरक जयन्ती - नागार्जुन, पृ. 92

कामवासना से तंग आकर पति का घर भी छोडकर भागने का साहस वह दिखाती है । पति से अलग होकर रहनेवाली मधुरी अपने ऊपर हमदर्दी दिखानेवालों को मुँह तोड जवाब देती है "बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुज़ार सकती क्या ?[1] सामूहिक आदर और सामाजिक मर्यादा के लिये पुरुष की ज़रूरत वह महसूस नहीं करती । हर क्षेत्र में वह स्त्रियों को पुरुष तुल्य अधिकार की आकांक्षा करती है और इस समानता के लिये लडती भी है । स्त्रियों के राजनीतिक बोध पर उपहास करनेवाले डेप्यूटी मजिस्ट्रेट से वह निर्भीक होकर पूछती है "जिनगी और जहान औरतों के लिये नहीं है क्या[2] ? मधुरी का यह प्रश्न उसके स्वतंत्र विचार का परिचायक है ।

"उग्रतारा" के नर्मदेश्वर की भाभी, "नयी पौध" की विश्वेश्वरी और "कुंभीपाक" की चंपा समानता के लिये लड़नेवाली औरतें है । समाज की निन्दा सहकर विधवा उग्रतारा को अपने देवर के मित्र कामेश्वर से शादी कराके परंपरागत सामाजिक रीति का विरोध करनेवाली नर्मदेश्वर की भाभी समानता के लिये विवेक से काम लेने के पक्ष में है । उसके अनुसार "व्यभिचार का अन्त तभी होगा जब स्त्री पुरुष में समान रूप में समझदारी पैदा होगी[3] ।" "नयी पौध" की विश्वेश्वरी स्त्री को पुरुष के समान अधिकारों की प्राप्ति चाहती है । शासन में स्त्री को स्थान देने में झिझकने वाले पुरुषों से वह पूछती है "यहाँ जो ग्राम सरकार कायम हुई है, उसके एगारह सो मेम्बर है, जनानी भी एक्को गो है[4] ?

---

1. वरुण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 93
2. वही, पृ. 96
3. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 31
4. नयी पौध - नागार्जुन, पृ. 118

कुंभीपाक की चंपा भी पुरुष और स्त्री में कोई भेद नहीं मानती । उसके अनुसार मर्द और औरत का हर क्षेत्र में समान अधिकार है । नारी समानता और स्वतंत्रता के इच्छुक चंपा के मत में "मर्द और औरत एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते । एक की बोली दूसरे के लिये शहद है । एक की चितवन दूसरे के लिये बिजली है[1] ।" चंपा ऐसे समाज की कल्पना करती है "जहाँ नर नारी मिल जुलकर आगे बढते हैं, जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को नहीं देता, जहाँ पुरुष बल होगा, स्त्री बुद्धि होगी, स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान[2] ।"

नारी जीवन में प्रगति

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी समाज के पग पग की प्रगति का संकेत मिलता है । शिक्षित, स्वावलंबी नारी का शोषण अब पहले के समान आसान नहीं । "कुंभीपाक" में चंपा अपने वेश्या जीवन से मुक्त होकर "गृह शिल्प कुटीर" की स्थापना करके अपने श्रम पर जीने लगती है[3] । अपने अधिकारों से सचेत स्त्री का स्वावलंबित जीवन शोषण से उसे मुक्त कराता है ।

नारी में आये परिवर्तन से आज संपूर्ण समाज बोधवान है । अब पुरुष का नारी संबंधी दृष्टिकोण ही बदल चुका है । स्त्री अब हेय नहीं, शोषण और दमन की वस्तु नहीं । पुरुष भी स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को मानने लगा है । बलचनमा उपन्यास का राधे बाबू परंपरागत

---

1. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ.109
2. वही, पृ.94
3. वही, पृ. 113

विश्वासों के खिलाफ अपनी बेटियों को भी स्कूल भेजता है। विकास के अवसरों से उन्हें वंचित रखना वह नहीं चाहता।[1] "कुंभीपाक" उपन्यास का रायसाहब पुरुष में आये परिवर्तन का प्रतीक है। स्त्री की अपरिमेय शक्ति का परिचय देकर वह चंपा को प्रेरणा देता है "हमीं ने त्याग की देवी और प्राणेश्वरी कहकर स्त्रियों की भावुकता को अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिये हमेशा उकसाया है। अब वह नहीं चलेगा। xxxxxx श्रम, प्रज्ञा, सहयोग, विवेक और सुरुचि सभी आवश्यक है। जीवन में इन पाँचों का समन्वय करना होगा। पुरुषों की बपौती नहीं है, स्त्रियों का भी साझा है इनमें।[2]"

नारी के प्रति समाज के बदलते दृष्टिकोण ने स्त्री की स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन का कारण बना। वैधव्य, अनमेल विवाह और बाल्य विवाह के अभिशाप से अब नारी धीरे धीरे मुक्त हो रही है। नारी जीवन में आये परिवर्तनों का उल्लेख नागार्जुन के अनेक उपन्यासों में हुआ है। "उग्रतारा" में विधवा उग्रतारा का कामेश्वर के साथ विवाह,[3] "दुखमोचन" के कपिल और माया का अन्तर्जातीय विवाह[4] तथा "नयी पौध" में बूढे के साथ विश्वेश्वरी की शादी रोककर प्रगतिशील युवक वाचस्पति के साथ उसके विवाह[5] में नारी जीवन में आये परिवर्तनों पर उपन्यासकार संकेत करते है। अनमेल विवाह और विधवा विवाह के समान बाल्य विवाह संबंधी सामाजिक दृष्टिकोण भी काफी बदल चुके हैं। "नयी पौध"

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 98
2. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 109
3. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ.80
4. दुखमोचन - नागार्जुन, पृ.109
5. नयी पौध - नागार्जुन, पृ.129

उपन्यास का दिगंबर ऐसा प्रगतिशील युवक है जो शैशव में ही नारी को विवाह की गाँठ में बंधित करके उसकी सर्वांगीण प्रगति को रोकनेवाली सामाजिक रीति का विरोध करता है । अपनी सत्रह वर्षीय बहन की शादी के बारे में पूछनेवालों को वह उत्तर देता है "क्या जल्दी पड़ी है xxxx आदमी का बचपन तो बीस साल की उम्र तक चलता है[1] । यही नहीं समाज की कटु आलोचना को पर्वाह किये बिना वह उसे आगे पढ़ाता है ।

निष्कर्ष

भारतीय समाज में नारी परंपरा से शोषित और पीड़ित रही है । पीढ़ी दर पीढ़ी बेटी, बहू, पत्नी, माँ की सीमित दायरे में रहकर वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व कुर्बान कर रही थी । लेकिन प्रगतिशील कलाकारों ने नारी के पृथक स्वतंत्र अस्तित्व को महसूस किया और नारी को भी पुरुष के बराबर अधिकारों की प्राप्ति के लिये आवाज़ उठायी । प्रगतिशील उपन्यासकार नागार्जुन ने नारी जीवन में बाधक अनेक समस्याओं को पहचाना और उन्हें अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त भी किया । इन समस्याओं को सुलझाने का उपाय उन्होंने अपने नारी पात्रों के द्वारा प्रस्तुत किया । नागार्जुन का हर स्त्री पात्र चाहे पुरानी पीढ़ी का हो, चाहे नयी पीढ़ी का, अपना अलग अस्तित्व और व्यक्तित्व रखनेवाली है । निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि नारी स्वतंत्रता और समानता की उनकी अदम्य आकांक्षा उनके सभी उपन्यासों में स्पष्ट दृष्टिगत होती है।[2]

---

1. [illegible] - नागार्जुन
2. उपन्यासकार नागार्जुन - [illegible] - पृ - 89

6. धार्मिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष

भारतीय समाज में धर्म का सबसे प्रमुख स्थान है। हर भारतीय का जीवन चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, धर्म के ठेकेदार धार्मिक आचार्यों द्वारा नियंत्रित होता है। प्रत्येक धर्म के अपने अलग विश्वास और आचार होते हैं, अनेक अनाचार और अंधविश्वास भी इनमें मिले हुए है। ग्रामीण जीवन में धर्म के नाम पर होनेवाले अंधविश्वासों और अनाचारों का प्रचलन काफी मात्रा में दिखायी पड़ता है। नागार्जुन के अधिकांश उपन्यासों की पृष्ठभूमि मिथिला के पिछड़े हुए अंचल है। सदियों से गरीबी और अज्ञान से अभिशाप्त गाँववालों में धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों की जड़ें गहरी है। इन गाँवों का नियंत्रण भी एक हद तक यहाँ के मठाधीशों, साधु-सन्तों के हाथ में है। पाण्डे, पुरोहित, बाबा सब यहाँ ईश्वरतुल्य माने जाते हैं। धर्म के ठेकेदार ये व्यक्ति गरीब, अनपढ जनता की धार्मिक भावनाओं से खूब फायदा उठाते है। नागार्जुन ने अपने अनेक उपन्यासों में धर्म के नाम पर होनेवाले शोषण के विभिन्न आयामों का विस्तृत वर्णन किया है।

जाति प्रथा और छुआछूत

जाति प्रथा और छुआछूत की भावना मानव जीवन की सबसे बडी विसंगतियाँ है। जाति के नाम पर मनुष्य को मनुष्य से पृथक रखने की यह असभ्य रीति ग्रामीण समाज में स्पष्ट परिलक्षित है। भारतीय गाँवों में पहले ही ब्राह्मणाधिपत्य जोरों पर दिखायी पड़ता है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये धार्मिक रूढियों और अंधविश्वासों को प्रश्रय देनेवाले ब्राह्मणों के शोषण और अत्याचारों का विशद वर्णन नागार्जुन के

"रतिनाथ की चाची" उपन्यास में मिलता है। इस उपन्यास का जयनाथ अपने ब्राह्मणत्व पर अभिमान ही नहीं अहंकार भी रखता है। उसके अनुसार निम्न जातिवालों को शिक्षित होने और ज्ञानार्जन करने का अधिकार नहीं। गायत्री मंत्र जानने के अपराध में सत्तर साल का बूढा निम्न जातीय कुल्ली राउत पर वह यों जलता है "साले की चमडी उधेड दूंगा। शूद्र हो तो शूद्र की भान्ति रहे[1]।

गाँव की ब्राह्मण जाति हर छोटी बात पर जातीयता का रंग चढाती है। "रतिनाथ की चाची" उपन्यास में जयदेव की पुत्रवधु के यहाँ से लायी मिठाइयाँ गाँव के ब्राह्मण इसलिये नहीं लेते कि वह वधु बंगालीहै और पिता ईसाई[2]। गाँव के ब्राह्मण परंपरागत विश्वासों से ज़रा भी विचलित नहीं होते। अँग्रेज़ी पढने के इच्छुक रतिनाथ को उसका पिता म्लेच्छ भाषा पढने की अनुमति नहीं देता। उसके आग्रह के विरुद्ध वह रतिनाथ को संस्कृत पाठशाला में भेजता है।

छुआछूत की भावना मिथिलांचल में ज़ोरों पर है। "रतिनाथ की चाची" के शुभंकरपुर के ब्राह्मणों का विश्वास है कि निम्नजातिवाले के स्पर्श से सवर्ण का शरीर अशुद्ध हो जाता है[3]। अछूतों का मन्दिर प्रवेश भी निषिद्ध है। अछूत कुल्ली राउत के बारे में रतिनाथ का विचार निम्नजातिवालों की स्थिति का सही रूप प्रस्तुत करता है। रतिनाथ सोचता है "अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता तो

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 50
2. वही, पृ. 79
3. वही, पृ. 51

निश्चय ही इसके बदन पर फटे पुराने कपडे न होते हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे न पलते । उन्हें कभी पहनकर इसके बच्चे न पलते । उन्हें कभी स्कूल पाठशाला जाने का अवसर नहीं मिलता । क्या मर्द, क्या औरत - इन लोगों का जीवन बडी जातिवालों की मेहरबानी पर निर्भर है ।[1]

रूढियों और अंधविश्वासों का प्रभाव

अशिक्षित, अबोध ग्रामीण जनता परंपरा से रूढियों और अंधविश्वासों में जकडी रहती है । धर्म के नाम पर प्रचलित अनाचारों पर वे जोंक के समान चिपके रहते हैं । अपने विश्वासों को ये किसी भी हालत में छोडने को तैयार नहीं है । "नयी पौध" उपन्यास के गोगच्छिया गाँववाले अपनी पीडाओं का मूल भगवान पर ढूंढते हैं । हर छोटी बात पर ये मिन्नतें मानते हैं और अपनी इच्छा पूर्ति के लिये पशुबलि तक देते हैं[2] । इसी प्रकार "बाबा बटेसरनाथ" उपन्यास के रूपउली गाँववाले बर्बर, विचित्र विश्वासों के पीछे पागल है वे वटवृक्ष की उपासना करते है और अभीष्ट सिद्धि के लिये बरगद बाबा के सामने बलि भी चढाते हैं[3] ।

गाँव के लोग बाढ़ अकाल जैसे प्राकृतिक विक्षोभों को देवी देवताओं का कोप मानकर उनसे मुक्ति के लिये तरह तरह की पूजा, पाठ करते है । रूपउली गाँव में दुर्भिक्ष होने पर गाँव के ब्राह्मण इन्द्र भगवान को सन्तुष्ट करने के लिये मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाकर पूजते है[4] । आग को भी ये ईश्वर मानकर उसकी उपासना करते है ।

1· रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ· 5।
2· नयी पौध - नागार्जुन, पृ· 86-87
3· बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ· 5।
4· वही, पृ· 39

"दुखमोचन" उपन्यास के टमका कोइली गाँव में अग्नि संहार ताण्डव करते समय मुखदेव चीनी और दही मिलाया चिउडा "आग्नेय स्वाहा" कहकर अग्नि की तरफ फेंक देता है । यही नहीं दुखमोचन की मामी के अनुसार यह भयंकर अग्निपात "भगवान की मर्जी थी लगता है अग्नि महाराज बहुत भूखे थे ।"[1]

धर्मभीरु ग्रामीण आध्यात्मिकता के अगुआ साधु सन्तों पर विश्वास रखते हैं । ऐसे समाज सन्त और बाबा ईश्वर के प्रतिरूप के रूप में गिने जाते है । बाबा बटेसरनाथ में एक औघड बाबा के चमत्कारों का वर्णन यों हुआ है "जहाँ कहीं भूत प्रेत का उपद्रव उठ खडा होता, जहाँ कहीं देव देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रह्म कर्णपिशाची चुडैल आदि की खुराफातें उभरती, वहाँ औघड बाबा की गुहार होती थी ।" ग्रामीणों के अंधविश्वासों का अच्छा खासा परिचायक है प्रस्तुत वर्णन ।

धर्म के वास्ते जनशोषण

अपने स्वार्थ लाभ के लिये, शोषण कायम रखने के लिये समाज का शोषक वर्ग धर्म का उपयोग करता है । धर्म और आध्यात्मिकता शोषण को अधिकाधिक मज़बूत बनाने में काम आते है । हर छोटी सी बात पर ईश्वर और भाग्य पर विश्वास रखनेवाले गरीब, मेहनतकश वर्ग के इन विश्वासों से संपन्न और धार्मिक नेता खूब फायदा उठाते हैं । इनके द्वारा संपन्न होनेवाले अत्याचारों की कोई सीमा नहीं । नागार्जुन के "रतिनाथ की चाची" उपन्यास का भोला पण्डित धार्मिक पाखण्डता का साकार रूप है । भोला भक्त बाबा रोज़ बीस पच्चीस बार माई तारा का नाम ज़ोर से चिल्लाकर, लाल धोती पहनकर दाढी मूँछ बाल, नाखून

---

1. दुखमोचन - नागार्जुन, पृ. 128

बढाकर महात्मा बने बैठे है । लोगों में अंधविश्वास फैलानेवाला यह सन्त विधवा गौरी का गर्भ गिराने के लिये त्रिपुर सुन्दरी का पंचाक्षर मंत्र का उपाय बताता है[1] ।

नागार्जुन का "इमरतिया" उपन्यास धर्म के नाम पर होनेवाले शोषण और अमानवीय करतूतियों का पर्दाफाश करता है । इस उपन्यास का जमनिया मठ धार्मिक शोषण और अत्याचारों का अड्डा है । धर्म और आध्यात्मिकता की आड में चोरी से लेकर वेश्यावृत्ति तक के घृणित कार्य यहाँ चलते हैं । तस्करी व्यापार के केन्द्र मठ में जटाधारी बाबाओं की जटा में विदेशी माल इधर उधर होता है । भंग, चरस, गांजे जैसी मादक वस्तुओं का खूब उपयोग इस मठ में होता है[2] ।

जमनिया मठ के बाबा के चमत्कार मठ की आमदनी बढाने का उपाय मात्र है । आस पास के लोग बाबा के आशीर्वाद के लिये दिनों तक इन्तज़ार करते है । जनता में यह विश्वास फैलाने में मठवाले सफल होते हैं कि बाबा शंकर के और उसका चेला मस्तराम काल भैरव के अवतार है । आसपास की जनता में यह विश्वास है कि मस्तराम द्वारा बेंत की पिटाई होने से सभी इच्छायें पूर्ण होंगी और जितने ज़ोर से फटकार होता है, बाबा का आर्शीर्वाद उतना फलता है[3] । स्त्रियाँ मठ से अधिक आकर्षित है । सन्तानहीन स्त्रियाँ मस्तराम की पिटाई की प्रतीक्षा में रहती है ताकि उनकी कोख फूल जायें । इस अंधविश्वास से प्रेरित होकर आनेवाली स्त्रियों के धन और शरीर का खूब शोषण होता है ।

---

1. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 41
2. इमरतिया - नागार्जुन, पृ. 29
3. वही, पृ. 37

स्त्री शरीर यहाँ कौडी ज़ुमाने का साधन है । सुन्दर सधुआइनों द्वारा मठ की आमदनी बढायी जाती है[1]। [illegible] के [illegible] "[illegible] [illegible] है ।

जमनिया जैसे मठों में गरीबों के विश्वासों का खूब शोषण होता है । इस शोषण पर बाबा और समाज के संपन्नों की वृद्धि होती है । बाबा की जटा के जादू में समाज के अनेक संपन्न अपनी कार्यसिद्धि कर लेते हैं । बाबा के ही शब्दों में "यह क्या मेरी जटाओं का ही जादू नहीं था कि भोली ने अपनी चारों लडकियों की शादी में लाखों रुपये खर्च किये ? लाल्ता ने अपने बेटों को डाक्टर और इन्जीनियर कैसे बनाया ? सेठ विर्धीचन्द की तोंद तिगुनी किस तरह हुई ? ठाकुर शिवपूजनसिंह ने ट्रेक्टर कहाँ से खरीदा ?" अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये मठों से संबंध रखनेवाले उन्नतों का असलियत इस प्रस्ताव में दृष्टव्य है । शोषण में ये संपन्न मठवालों की खूब सहायता भी करते हैं । सेठ भूरालाल के अनुसार "पैसा न हो तो सब कुछ फाल्तू है, सब कुछ बकवास है ×××××× भक्त लोग वक्त पर अपनी गांठ न खोलें तो बाबा का क्या होगा ? लक्ष्मीजी रूठ जाय तो सारे मठ-मन्दिर खण्डहर हो जायेंगे ।"[2] लोगों द्वारा अर्पित सिक्कों पर आधारित मठों की असलियत इस वाक्य में व्यक्त है ।

---

1. इमरतिया - नागार्जुन, पृ. 107

2. वही, पृ. 70

धर्म और रूढियों के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण

शिक्षा के प्रचार से लोगों के धार्मिक विचारों में, धर्म संबंधी उनके दृष्टिकोण में बडा भारी परिवर्तन आ गया है। अब मनुष्य युक्ति-हीन विचारों को उसी रूप में आत्मसात करने में हिचकते हैं। गुण दोष की परख के बिना वह कुछ नहीं स्वीकारता। मार्क्स के प्रगतिवादी विचारों के प्रभाव से ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था भी बढ गयी। मार्क्सवाद से प्रभावित नागार्जुन के उपन्यासों में धर्म और ईश्वर के नाम पर प्रचलित रूढियों, अनाचारों और अमानवीय व्यवहारों पर विद्रोह स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

धर्म और ईश्वर के नाम पर प्रचलित खोखली मान्यताओं से आम जनता अब जागृत हो चुकी है। अत: धार्मिक आचार्यों का महत्व भी नष्ट हो रहा है। पण्डितों के घर में जन्मे युवक अपनी पण्डिताई पर दु:खी हो रहे हैं। इस परिवर्तन पर "नयी पौध" उपन्यास के दुर्गानंदन का दोस्त कहता है "शास्त्री और आचार्य की परीक्षायें पास करके कुछ नहीं कर सकता। जमीन्दारों द्वारा पण्डितों को दी जानेवाली वर्षभिक्षा भी रुक गयी है xxxxxx अब गेहूँ सस्ता होता है तो सत्य-नारायण की पूजा होती है"[1]।

धर्म के खोखलेपन से परिचित आदमी अब धर्म के नाम होनेवाले भेदभाव को मिटाना चाहता है। "इमरतिया" उपन्यास का मस्तराम छुआछूत की प्रथा को जड से उखाडने का आह्वान करता है।

---

1. नयी पौध - नागार्जुन, पृ.38

वह महतर, भंगी को भी समाज में साधारण मनुष्य के समान स्थान देने का पक्षपाती है[1]। धर्म की आड़में होनेवाले अत्याचारों का विरोध करनेवाला मस्तराम शिक्षा के प्रचार प्रसार से धार्मिक अंधविश्वासों और अनाचारों को दूर करने की आकांक्षा रखता है। उसके अनुसार सब पढ लिख जायेंगी और आराम का जीवन बिताने लगेंगी और गाँव गाँव के अन्दर सुख और संपदा के सामान सुलभ होंगे और अपनी अपनी मेहनत का कई गुना फल लोगों को हासिल होने लगेगी, फिर बाबा के दरबार में आशीर्वादी बेंत की फटकार खाने के लिये क्यों कोई आयेगा ?[2]

सामाजिक विषमता और शोषण के प्रति जागृत समाज का निम्नवर्ग धर्म के नाम पर होनेवाले शोषण से भी अब परिचित हो चुका है। अपने परिश्रम पर विश्वास रखनेवाले इनके ईश्वर संबंधी विचार में काफी बदलाव आ गया है। ये अब भाग्य और ईश्वर का विश्वासी नहीं है। यही नहीं इन दकियानूसी विचारों के आधार पर वे किसी को अपना शोषण करने नहीं देते। "बलचनमा" उपन्यास का बलचनमा निम्नवर्ग में आये इस परिवर्तन का सशक्त प्रमाण है। ईश्वर के नाम पर अपनी भूमि हडपने की इच्छुक मालिक और इसमें मालिक की सहायता के लिये आये पण्डित, बलचनमा में ईश्वर के प्रति विश्वास ही नष्ट कर देते हैं। पण्डित के कथन पर बलचनमा सोचता है "भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर चूर कर धाँकती थी, यह भी भगवान ठीक ही करते थे और मालिक लोग कनकजीर और तुलसी फूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परबल की तरकारी, घी, दही, चटनी

---

1. इमरतिया - नागार्जुन, पृ.30
2. वही, पृ.107

खाते थे, सो यह भी भगवान की ही लीला थी[1] ।" भाग्य और ईश्वर से संबंधित परंपरागत विश्वासों पर बलचनमा के ये वाक्य ठेस पहुँचाते है । ईश्वर के प्रति उसकी यह अनास्था और विद्रोह की भावना निम्नवर्ग में आये जागरण और उस वर्ग की प्रगति की सूचना है ।

शिक्षित युवा पीढी पुरानी मान्यताओं और परंपरागत आचारों के एकदम खिलाफ रहती है । "नयी पौध" उपन्यास के युवकों की "बमपाटी" प्राचीन मान्यताओं को चुनौती देती है । पन्द्रह वर्षीय विश्वेश्वरी को ब्याहने आये साठ साल के बूढे चतुरानन चौधरी को गाँव से भगाते हुए रूढिग्रस्त समाज के अनाचारों को वे दूर फेंकते हैं[2] । यही नहीं विवाह संबंधी परंपरागत मान्यता में भी परिवर्तन आ रहा है । आडंबरों और प्रदर्शनों पर विरोध भी बढ रहा है । "नयी पौध" उपन्यास में वाचस्पति का विवाह फिजूल खर्च न करके सादगी से काम निबटाने के शर्त पर होता है[3] ।

निष्कर्ष

जनता की प्रगति में बाधक हर बात से उन्हें बोधवान बनाना प्रगतिशील कलाकार का लक्ष्य है । धर्म और धर्म के नाम पर होनेवाली

---

1. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 13
2. नयी पौध - नागार्जुन, पृ.56
3. वही, पृ.128

अनेक अनावश्यक रीति रिस्म सामाजिक प्रगति के लिये रोडा उपस्थित करनेवाली है । जनता में अंधविश्वास फैलाकर उससे लाभ उठानेवाले साधु सन्तों के प्रति जनता में जागरण उत्पन्न होना अत्यन्त ज़रूरी बात है । समाज से संबद्ध उपन्यासकार नागार्जुन ने समाज में, विशेषकर ग्रामीण समाज में व्याप्त विभिन्न फालतू रिवाजों और आचारों के प्रति जन मन में जागरूकता उत्पन्न कराने का प्रयत्न अपने औपन्यासिक कृतियों के द्वारा किया । उनके उपन्यास इस प्रयत्न के प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

ééééééééééééé

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी कविताओं में वर्ग - संघर्ष

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी कविताओं में वर्ग - संघर्ष

सन् 1930 के आसपास का समय भारतीय साहित्य जगत में उल्लेखनीय परिवर्तनों का समय रहा। इसी समय संसार भर के शोषित, दमित श्रमिक वर्ग की सर्वांगीण प्रगति को लक्ष्य करनेवाले मार्क्स के समाजवादी चिन्तनों से भारतीय साहित्य धीरे धीरे प्रभावित होने लगा था। इस प्रभाव से अन्य भारतीय भाषाओं के समान हिन्दी साहित्य में भी बढ़ती जनशक्ति और संघर्ष की व्यापक अभिव्यक्ति हुई।

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी सिद्धान्तों से ओत-प्रोत काव्यधारा "प्रगतिवाद" के नाम से जानी जाती है। इस नयी प्रवृत्ति ने उस समय प्रचलित छायावादी काव्य प्रवृत्ति को पीछे धकेलकर अतिशय वेग में अपना पैर जमाया। इसने कवियों को काल्पनिकता की वायवी दुनिया से नीचे उतरकर यथार्थ जगत के श्रमरत मनुष्य की जीवन-समस्याओं को काव्यबद्ध करने को मजबूर बनाया। नवीन सामाजिक चेतना से युक्त प्रगतिवादी काव्यधारा ने समाज के शोषित, उत्पीड़ित जनवर्ग के

दु:ख दर्द को वाणी देकर शोषण से मुक्ति के लिये उन्हें संघर्षरत रहने की प्रेरणा दी । इस धारा के कवियों ने संपन्न ज़मीन्दारों और पूंजीपतियों के लिये मुनाफा बटोरनेवाले गरीब किसानों व मज़दूरों तक मुक्तिसंघर्ष का मंत्र पहुंचाया । इस प्रकार प्रगतिवादी काव्य का परम और चरम लक्ष्य ही सामाजिक प्रगति रहा ।

यद्यपि प्रगतिवाद के आविर्भाव के बहुत पहले ही हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में सामाजिक विषमता पर विरोध और क्रान्ति की भावना प्रस्फुटित हुई तो भी उद्देश्य और स्वरूप में प्रगतिवादी परंपरा उससे एकदम भिन्न है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में अर्थात् भारतेन्दु युग में मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित प्रगति का बिल्कुल अभाव है । इसके बाद द्विवेदी युग में तत्कालीन प्रचलित गाँधीवाद और मार्क्सवाद का प्रचलित संयोग दिखायी पड़ता है । यद्यपि माखनलाल चतुर्वेदी, गया प्रसाद शुक्ल सनेही जैसे इस समय के कवियों में समाजवादी विचारों के प्रति आकर्षण दिखायी पड़ता है, तो भी इन की रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय जनजागरण रहा । इन्होंने ब्रिटीश शासकों के तानाशाही ज़ोर-जुलुम के विरुद्ध नौजवानों की क्रान्तिकारी भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व किया ।

वस्तुत: हिन्दी कविता में मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर आधारित प्रगतिशील प्रवृत्तियों का प्रारंभ सन् 1936 के लगभग "युगवाणी" की रचनाओं अथवा रूपाभ के जन्मकाल से होता है[1] । अपने संपादकत्व में

---

1. हिन्दी साहित्य की जनवादी परंपरा - प्रो.प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ.17

निकलनेवाले "रूपाभ" में सुमित्रानंदन पन्त ने प्रगतिवादी काव्य के उद्देश्य का स्पष्टीकरण यों किया "इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों के प्रति हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं - अतएव इस युग की वास्तविकता स्वप्नों में नहीं पल सकती । उसकी जडों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है xxxxxx हमारा उद्देश्य इस इमारत में धुनियाँ लगाने का कदापि नहीं जिसका कि गिरना अवश्यंभावी है । हम तो चाहते हैं कि उस नवीन के निर्माण में सहायक होना जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है ।[1]" यह प्रगतिवादिता पन्त के "युगवाणी", "ग्राम्या", निराला के "परिमल" जैसे संग्रहों से शुरू होती है । इनके अलावा बालकृष्ण शर्मा नवीन, दिनकर शिवमंगल सिंह सुमन, रांगेय राघव, भगवती चरण वर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल अंचल, शैलेन्द्र, शील, रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर, अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेन्द्र शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमीचन्द्र जैन, विजयदेव नारायण साही, महेन्द्र भटनागर, दुष्यन्त कुमार, जैसे कवियों ने समाज के शोषित जनवर्ग से संवेदनशील रहकर उनमें वर्गबोध जागृत किया और उन्हें शोषकों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा दी । इस दृष्टि से देखें तो प्रगतिवादी कवियों की कविताओं में आम तौर पर ये प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती है -

1· वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष
2· श्रमिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति
3· शोषण के प्रति विरोध
4· शोषित वर्ग से संवेदना और जागरण का सन्देश

1· रूपाभ-पन्त - प्रगतिवादी काव्य कृष्णलाल हंस से उद्धृत । पृ 109

5. श्रम पर विश्वास और श्रमिक संगठन का प्रस्तुतीकरण
6. वर्ग संघर्ष का आह्वान
7. वर्गहीन समाज की परिकल्पना ।

इनके अलावा प्रगतिवादी कविताओं में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की उद्भावना, नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, बौद्धिकता की प्रधानता जैसी अन्य प्रवृत्तियाँ भी पायी जाती हैं । लेकिन इस अध्याय में महज वर्ग-संघर्ष की ओर उन्मुख करानेवाली उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर आधारित अध्ययन ही पर्याप्त मालूम होता है । अतः इन प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कविताओं में वर्ग-संघर्ष का अनुशीलन आगे किया जायेगा ।

1. वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष

वर्तमान समाज का ढाँचा ही वैषम्यपूर्ण है जिसमें सिर्फ दो ही वर्ग है - शोषक और शोषित । इनमें पहला अपनी पूँजी या धन के बल पर असंख्य मनुष्य के श्रम का शोषण करनेवाले संपन्न ज़मीन्दार पूँजीपति है तो दूसरा अपनी मेहनत पर जीनेवाले किसान मजदूरों का वर्ग है जो शोषित है । मानव समाज में यह श्रेणी विभाजन कोई नूतन बात नहीं । सभ्यता के विकास के साथ ही साथ यह विषमता आधिकाधिक प्रबल और प्रखर होती जा रही है । यह वर्ग चयन मनुष्य की प्रगति में बाधक है और उसके विकास को सीमित रखता है । वर्गों में विभक्त यह सामाजिक व्यवस्था मानवता के लिए घोर अभिशाप है । इसकी ओर संकेत करते हुए पंत लिखते हैं -

"आज मानवी संस्कृतियाँ है, वर्ग चयन से पीड़ित
पशु-पक्षियों सी वे अपने विकास में सीमित
इस विशाल जन जीवन के जग से हो जाति विभाजित
व्यापक मनुष्यत्व से वे आज हो रहे वंचित[1]।"

इस असमानतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था में असंख्य श्रमिकों की मेहनत पर मुट्ठी भर के लोग आडंबरपूर्ण जीवन बिताते है। उनकी विलासिता के मूल में गरीबों का श्रम ही है। ऐसी समाज में गरीबों का जीवन निर्मूल्य हो रहा है। जैसे -

"आज शोषित-शोषकों में हो गया जग का विभाजन
अस्थियों की नींव पर अकड़ा रहा प्रासाद का तन।
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी संज्ञा विसर्जन
मोल कंकड़-पत्थरों के, बिक रहा है मनुज जीवन[2]।"

सामाजिक जीवन इतना वैषम्यपूरित है कि जहाँ अर्थ होता है वहाँ सब विलासिता एकत्रित है। जहाँ दाना है, वहाँ दीन है, दीवाना है महफिल, नग्में है, साजा, शम्मा और परवाना है। लेकिन इसके विपरीत जीवन का एक अभावपूर्ण पहलू है। यहाँ मनुष्य अपनी भूख मिटाने के लिए अपने को भारी से भारी श्रम में लगा रखता है। बड़ी बड़ी अट्टालिकों की विलासिता के सामने बैठकर भारी हथौड़ी से पत्थर तोड़नेवाली स्त्री जीवन के इस अभावपूर्ण पक्ष का साकार रूप है। तोड़ती पत्थर कविता में निराला ने इस गरीबिन को यों प्रस्तुत किया -

---

1. ग्राम्या - पन्त, पृ.77
2. विश्वास बढ़ता ही गया - शिवमंगल सिंह सुमन, पृ.8

वह तोड़ती पत्थर / कोई न छायादार /
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार श्याम तन भर बंधा यौवन /
नत नयन, प्रिय कर्मरत मन / गुरु हथौड़ा हाथ / करती बार बार प्रहार /
सामने तरु मालिका, अट्टालिका प्राकार[1]।

रंग भेद, वर्ग भेद और जन्म भेद इस समाज के मूलाधार बने है। मनुष्य का सुख दुःख, भाग्य-निर्णय इन्हीं पर निर्भर है। ऐसे समाज में एक वर्ग निरन्तर शोषित रहता है। उनका मधुर श्रम एक दूसरे वर्ग - संपन्न वर्ग - के हितों के लिए बहाया जाता है। चौबीसों घंटे काम में लगे ये पेट भर खाने के लिए तरसते हैं, और उनके श्रम के शोषण में कामचोर आरामतलब, संपन्न वर्ग मजे में रहता है[2]। दुनिया की सभी सुख सुविधाओं के भोक्ता ये धनिक पृथ्वी में रेंगनेवाले हीन मानव के सामने आकाश विचरण करने वाले है। "राजासाहब का वायुयान" कविता अमानवीय शोषण और वर्ग वैषम्य का चित्र यों उपस्थित करती है -

"मैं सोच रहा था राजा साहब
करता है कोई काम नहीं
फिर भी उनको जो प्राप्त न हो
जग में ऐसा आराम नहीं

---

1. अपरा - निराला, पृ.29

2. ये कामचोर / आरामतलब / मोटे तोंदियल / भारी भरकम /
हट्टे कट्टे सब डांगर ऊंघा करते है / हम चौबीस घंटे हांफते है।
गुलमेंहन्दी - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.50

जब रेंग रहा है पृथ्वी पर
वे आसमान पर चलते हैं[1]।

ऐसे धनिकों के यहाँ कुत्ते का जन्म भी भाग्यदायक है। विपन्न के बच्चे को इन कुत्तों की सुविधायें भी प्राप्त नहीं। यहाँ गरीब युवति का लज्जा - वसन जब ब्याज चुकाने में बिका जाता है तब मालिक वर्ग तेल फुलेलों पर पानी के समान द्रव्य बहाता है[2]। एक ओर संपन्न की विलासिता चरमसीमा पर पहुँचती है तो दूसरी ओर कंकालों के दिल में लाखों ठोकरें पहुँचती है -

"उस तरफ संसार की रंगीनियाँ
इस तरफ है सैकडों गमगीनियाँ
आ रही झनकार पायल की वहाँ
और दिल पर ठोकरें लाखों यहाँ[3]।"

सामाजिक स्थिति में विषमता का प्रत्यक्ष और स्पष्ट कारण पूंजीवादी शोषण है। इस से अधिकाधिक संख्या में लोग रोज सर्वहारा होते चले जा रहे हैं। संपन्न और विपन्न के बीच की खाई दिन-ब-दिन बढती जा रही है। मुट्ठी भर लोगों की सुविधा के लिये लाखों की मेहनत का शोषण होता जा रहा है। "एकाधिकार के पंजे में" कविता में त्रिलोचन वर्तमान समाज की इस विकराल अवस्था पर संकेत करके कहते हैं -

---

1. मेरी कवितायें - भगवती चरण वर्मा, पृ.19।
2. हुंकार - दिनकर, पृ.73
3. "मजदूर" कविता - अंचल

"अधिकाधिक संख्या में लोग इधर आये दिन
सर्वहारा होते चले जा रहे हैं
और पूंजी खींच खींच करके सब दुनिया की
मुट्ठी भर पूंजीपति पहले से अधिक मोटे
होते चले जा रहे हैं[1]।"

पूंजीपतियों के शोषण में आज मानवता खण्डहर होता जा रहा है। बहू-बेटियों से लेकर दुधमुंह बच्चे तक इन के अमानवीय शोषण के शिकार हैं[2]।

पूंजीवादी समाज में गरीबी और शोषण कोई असाधारण बात नहीं। संवेदनशील कवि अपने चारों ओर होनेवाले नृशंस शोषण से मुंह मोड नहीं पाता। भारत भूषण अग्रवाल असमानतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था का वस्तुनिष्ठ चित्र यों प्रस्तुत करते हैं -

"मैंने देखा है, जो गाती रहती है कल कल निर्झर के
स्वर में अपना स्वर डुबा हुलास विलासों में भरपूर मस्ती
जब चीखा करती है, क्षुधार्थ नीचे मैदानों की बस्ती
हां मैंने अपनी आंखों देखा है विभेद यह, यह विरोध
जो साधारण घटना है अपनी पूंजीवादी प्रणाली में[3]।"

---

1. धरती - त्रिलोचन, पृ.97
2. "मुनाफा खोर / हार्डर / मृत्यु के वंशज / लगाये है अभी दूकान शोषण की / मनुजता / हो रही खण्डहर / तरसती बेटियाँ / बहुयें / तडपते दूध मुंह बच्चे / अमीरों के घरों में / नाज नखरे कर रहे है। शील
3. तारसप्तक - भारत भूषण अग्रवाल - मन्सूरी के प्रति कविता, पृ.98

वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में हर कहीं संपन्न द्वारा गरीब का शोषण होता रहता है। जब भी सौ गरीबों के शोषण पर मुट्ठी भर संपन्न उन्मत्त प्रदर्शन करते हैं तब जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित विपन्न मालिकों के जूठन की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। यह वास्तव में घोर अन्याय है कि "चाट रहे है कुछ प्राणी बाहर जूठन के दोने / चहक रहे हैं अन्दर वे लक्ष्मी के पुत्र सलोने / कला गुलाम हुई इनके, कविता पानी भरती है / सौ सौ की मेहनत इनकी मुस्कानों पर मरती है[1]।"

मानव द्वारा मानव के शोषण में मनुजता कहीं खो चुकी है। फलत: मानव यहाँ मरे चूहे के समान उपेक्षित है। यहाँ संपन्न और विपन्न के बीच का संबन्ध भक्षक और भक्ष्य का बन गया है। यहाँ एक की लघुता दूसरे की गुरुता है, एक की तडपन दूसरे का विलास है[2]।

विषमतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था का प्रतिफलन जीवन के हर क्षेत्र में दिखायी पडता है। भारत का राजनीतिक क्षेत्र भी शोषण और दमन से कलुषित है जिससे यहाँ आम आदमी की अवस्था दिन-ब-दिन बदतर होती जा रही है। अन्तर्विरोधों और सामाजिक विसंगतियों के बीच औसत भारतीय अब भी चतुर्दिक शोषण के शिकार है। यहाँ शोषण और दमन का सिलसिला सामन्तों और पूंजीपतियों में समाप्त नहीं होता। भारत का वर्तमान प्रजातंत्र संपन्नों की रखैल बनकर आम जनजीवन को चौपटकर रहा है। राष्ट्रीय संपत्ति का बहुत बडा हिस्सा पूंजीपतियों में केन्द्रित हो रहा है।

---

1. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ.34
2. कौन विषाद ? क्या मानवता / मेरे सम्मुख तो है पशुता / ये भक्ष्य और वे भक्षक है / इनमें लघुता उनमें गुरुता / इनकी तडपन / उनका विलास। विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ.41

फलस्वरूप औसत भारतीय अब भी गरीब है, शोषित है । पैसे के सामने व्यक्ति की क्षमता, उसकी बुद्धि सब व्यर्थ हो जाती है । न्याय-अन्याय, ईमानी-बेइमानी का निर्णय कौडी के बल पर होता है । प्रगतिशील कवि इस पर चिन्तित हुए बिना नहीं रह सकता । "एक बागी की स्वीकारोक्तियाँ" कवि की ऐसी संवेदना का प्रत्यक्ष प्रमाण है । देश की वर्तमान स्थिति पर उद्वेग प्रकट करते हुए दुष्यन्त कुमार कहते हैं -

मेरा देश / जहाँ बचपन भीख मांगते हुए जवान होता है / और जवानी गुलामी करते करते बुढिया जाती है / जहाँ अन्याय को ही नहीं / न्याय को भी अपनी स्थापना के लिए सिफारिशों की जुरूरत होती है / x x x बेइमानी को ही नहीं / ईमान्दारी को भी अपनी रक्षा केलिये पैसों की ताकत का सहारा लेना पड़ता है / x x x जहाँ पुस्तक-गर्मी अंगुलियाँ / बर्तन मांज मांज कर घिस जाती है / और स्नातनिक बना सकनेवाले दिमाग / पत्थर ढो ढोकर मोटे हो जाते है / जहाँ पृथ्वी की परिक्रमायें कर सकनेवाली वेलान्तिनायें / भारी जेबों और कुर्सियों के आसपास / भिनभिनानेवाली कीलरें बनकर रह जाती है ।[1]"

वर्तमान भारत में राजनीतिक नेताओं और उनके बनाये नौकर शाहियों ने मिलकर जनजीवन दुःसह बना दिया है । जनसेवा केलिये जनता द्वारा चुनी सरकार ही जनशोषण का नेतृत्व देती है । उनकी रीति जमीन्दारों और पूंजीपतियों से भी बदतर है । लंबे अरसे के निरन्तर शोषण और अस्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्र भारत में भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है । ढाई सौ वर्ष की गुलामी के बाद हाथ-पाँव की कड़ियाँ टूट गयी है । फिर भी स्वतन्त्रता आम भारतीयों केलिए पहले की

---

1. इतिहास का दर्द - दुष्यन्त कुमार,

जैसी है[1]। आजकी सरकार साधारण जनता के लिए नहीं, केवल संपन्नों के लिए है। अतः राजनीतिक शोषण पर केदारनाथ ने अपना विरोध यों प्रकट किया -

"राज करो जी, राज करो जी दिल्ली के दरबार में
गाँधीवादी आदर्शों के सत्यों की किलकार में
खोयी खोयी शाहंशाही रौनक की इनकार में
सुन्दर सुन्दर सपने देखो शासन शयनागार में
सामन्ती के आलिंगन में सामन्ती के प्यार में[2]।"

ऐसे राजनीतिक नेताओं और संपन्नों की कृपा से यह समाज हर अर्थ में भरा पूरा है, सिवा गरीब के पेट और प्लेट। यहाँ "मकान नहीं खाली, दूकान नहीं खाली / स्कूल नहीं खाली, खाली नहीं कालेज / खाली नहीं टेबल, खाली नहीं मेज़ / खाली अस्पताल नहीं, खाली है हाल नहीं / खाली नहीं चेयर, खाली नहीं सीट।" लेकिन दुःखदायक बात यह है कि आज यहाँ "खाली है हाथ - खाली है पेट / खाली है थाली, खाली है प्लेट[3]।"

साम्राज्यवादी, सामन्तवादी तथा पूँजीवादी शोषण में पड़कर मनुष्य का मूल्य घट गया है और दुनिया भर के करोड़ों का जीवन बन्दूक का बारूद बन गया है। संक्षेप में कहें तो "आज दुनिया के

---

1. ढाई सौ वर्ष के बाद / किन्तु झोपड़ी वही खड़ी है / नई ईंट तक नहीं लगी है / बड़ी गरीबी भरी पड़ी है / वही क्षुधा है / वही कर्ज है / वही सूद है / वही ज़मीन्दारों का छाल है, मानव से मानव शोषित है। रामविलास शर्मा - रूपतरंग

2. ~~स्वस्तक~~ - कहे केदार खरी खरी-केदारनाथ अग्रवाल, पृ.55

3 युगधारा - नागार्जुन, पृ.104

करोडों आदमी / सह रहे हैं धूप, सर्दी और नमी / xxxxxx भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी / कौडियों के मोल बिकती जिन्दगी / आदमी का मिट गया सम्मान है / मनुजता का अब न गरिमा गान है / xxxxx मूलधन हिंसा गुलामी सूद है / आदमी बन्दूक की बारूद है[1]।

2· श्रमिक जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति

संपन्न और विपन्न के बीच का भेद अधिकाधिक प्रखर होती रहनेवाली सामाजिक व्यवस्था में प्रगतिशील कवियों ने शोषित गरीब वर्ग का पक्ष लिया। उनकी सहानुभूति और आस्था पूर्ण रूपेण इस शोषित वर्ग पर उमड पडी। शोषित के अन्तर्गत किसान है, मज़दूर है और अन्य अनेक श्रमजीवी जो अपने भरसक प्रयत्न के बावजूद भी जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं से वंचित रहते हैं। ऐसी शोषित जनता से हमदर्दी अधिकांश प्रगतिशील कविताओं का मुख्य प्रतिपाद्य है।

कृषि प्रधान देश भारत में बहुसंख्यक ग्रामवासी कृषक वृत्ति अपनानेवाले हैं। इनमें अल्पजोत के किसान और जमीन्दारों के खेतों में काम करनेवाले खेत मज़दूर तक है। मिट्टी से लडकर अनाज पैदा करनेवाला यह श्रमजीवी वर्ग ही गाँव की आत्मा है। ग्राम वधू, कठपुतले, वह बुड्ढा, ग्राम नारी, गाँव के लड़के जैसे पन्त के "ग्राम्या" संग्रह की अधिकांश कवितायें श्रमरत गाँववालों की जिन्दगी के जीते जागते चित्र है। इनके श्रम में स्त्री पुरुष का भी भेदभाव नहीं। ग्रामनारी लज्जा से वेष्टित, अंगों की हृष्टपुष्ट, सुन्दर और श्रमरत है तो मिट्टी से जुडे रहनेवाले ग्रामीण लडके सभी अर्थ में भू के धन है[2]।

1· धूप के धान -"तैतीसवीं वर्षगाँठ" कविता - गिरिजाकुमार माथुर, पृ·92

2· ग्राम्या - पन्त, पृ·27

ऐसे ग्रामीणों में एक बहुत बडा विभाग खेती पर जीवन यापन करनेवाले कृषकों का है जो अर्ध क्षुधित है, अर्धनग्न है और सर्वोपरि शोषित है । बेबस, लाचार, जीवन से भी उदासीन इनका जीवन कठिन श्रम में गुज़र जाता है । सबेरे से साँझ तक धरती से लडनेवाले इनके लिए जेठ, पूस सब समान है । दिनकर की कविता "हाहाकार" शोषित, अभावग्रस्त, अस्वस्थ कृषक जीवन की अभिव्यक्ति यों करती है - जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं / छुटे बैल से संग, कभी जीवन में ऐसा याम नहीं / मुख में जीभ, शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं / वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं[1]।

इन किसानों को जीवन में कभी सुख या आराम अनुभूत नहीं होता । अपना सब कुछ श्रम में लगाकर ये पशुवत जीवन बिताते है । दुनियाँ के अन्नदाता ये कृषक मिट्टी के कच्चे घरों में पिसे रहते है, उनकी स्त्रियाँ गुलामी सहती सहती जिन्दगी बसर करती है । धूल, धुएं से भरी दम घुटानेवाली झोंपडियों में मानव द्वारा शोषित असंतुष्ट असंख्य मानव जी रहे है[2]। इनका एकमात्र पूँजी श्रम ही है । प्राकृतिक विक्षोभों से लडकर जीवन की सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का साहस के साथ सामना करके वे जोतते हैं, बोते हैं, सींचते है और फसल तैयार करते हैं । इस प्रकार सीला बीननेवाले खेत मज़दूर को रामविलास शर्मा यों प्रस्तुत करते हैं -

---

1. हुंकार - हाहाकार कविता - दिनकर, पृ.22

2. गाँव इसमें झोंपडी है, घर नहीं है / झोंपडी के फटकियाँ है, दर नहीं है / धूल उडती है, धुएं से दम घुटा है, मानवों के हाथ से मानव लुटा है ।
गीत फरोश - भवानी प्रसादमिश्र, पृ.36

"चाँदी का सा घात किये तप रहा
छोटा सा सूरज सिर पर बैसाख का
काले धब्बे से बिखरे वे खेत में
फटे अँगोछे में बच्चे भी साथ ले
ध्यान लगा सीला चमार है बीनने ।
खेत कटाई की मज़दूरी इन्होंने
जोता, बोया, सींचा भी था खेत को[1] ।"

अपनी हड्डी तोड मेहनत से अन्न उपजानेवाले गरीब किसान श्रम के बदले कुछ नहीं पाता । जमीन्दार, महाजन जैसे धूर्त ही इनके श्रम से लाभान्वित होते हैं । चतुर्दिक शोषण के शिकार कृषक वर्ग की बेबसी और परेशानी को पन्त ने यों शब्दबद्ध किया -

"अंधकार की गुहा सरीखी उन आँखों से डरता है मन
भरा दूर तक उनमें दारुण दैन्य दुख का नीरव रोदन
लहलहे वे खेत दृगों में हुआ बेदखल वह अब जिनसे
हँसती, उसके जीवन की हरियाली जिनके तृन तृन से
आँखों ही में घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा
कारकुनों की लाठी से जो गया जवानी में ही मारा
बिका दिया घर द्वार महाजन ने न ब्याज की कोडी छोडी
रह रह आँखों में चुभती वह कुर्क हुई बरधों की जोडी[2] ।"

---

1. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएं - सं० राजीव सक्सेना, पृ० 160
2. ग्राम्या - पन्त, पृ० 24

अपने कठिन परिश्रम से उत्पादित वस्तुओं का उपभोग इन किसानों के तकदीर में नहीं । उनका अमूल्य उत्पन्न ऋण, ब्याज चुकाने में बिका जाता है । ऋण शोधन के लिये सब कुछ बेचनेवाले ये किसान अपने लिये कुछ नहीं छोड़ते हैं । दूध, घी जैसी श्रेष्ठतर वस्तुओं का उत्पादन करके ये सूखी रोटी पर अपना निर्वाह करते हैं[1] । इनका जीवन ही खेत की फसलों पर निर्भर रहता है । यही सचमुच उनके श्रम का सपना है । लेकिन अपने हाथों से लगाये हरी भरी मटर, ईख, सरसों सभी के ऊपर मालिक के अधिकार की काली रेखा पड़ते देखकर उनके सपने चूर चूर हो जाते हैं[2] ।

किसानों की भान्ति शोषण और दमन के शिकार एक दूसरा वर्ग है मज़दूरों का वर्ग जो विश्वव्यापी मशीनीकरण की उपज है । मशीनीकरण प्रक्रिया से शहरों का आविर्भाव हुआ । इन में अनेक कल-कारखाने खुले जहाँ काम करके जीविका चलाने की आकांक्षा में निकट के गाँवों से अधिकाधिक संख्या में गरीब लोग नगरों की ओर बहने लगे । इस प्रकार पूंजीपति और मज़दूर के रूप में शोषक-शोषितों के नये वर्ग उभर आये । प्रगतिशील कवियों ने शोषित श्रमजीवी वर्ग को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया । आजीविका के लिये संपन्न पूंजीपतियों को अपना श्रम बेचनेवाले ये मज़दूर सचमुच नागरिक जीवन की रीढ है । महानगरों की विलासिता और आडंबर का आधार ही इन मजदूरों का श्रम है । यहाँ के घाट, धर्मशाला, अदालतें, विद्यालय, वेश्यालय, होटल, दफ्तर, बूचड़खाने, मन्दिर, हार सिनेमा सब कुछ श्रमजीवी की हड्डी पर टिके हुए हैं[3] ।

---

1. "गेहूं की सोच" कविता - प्रभाकर माचवे - तारसप्तक, पृ. 186
2. तृतीय सप्तक - मानव राग कविता - विजयदेव नारायण साही,
3. कानपूर की सारी सत्ता - कविता - केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 179
3. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - सं. रामविलास शर्मा, पृ. 169

इस प्रकार ये मज़दूर उत्पादन के अनिवार्य अंग है । लेकिन विरोध की बात यह है कि उत्पादन प्रक्रिया में सबसे सक्रिय भूमिका अदा करनेवाले श्रमिकों को अपने उत्पन्नों पर कोई अधिकार नहीं है । पूंजीपतियों के कल-कारखानों में तरह तरह की चीज़ों के उत्पादन में रत ये मज़दूर अपने कठिन श्रम के बाद भी परम अकिंचन रहने वाले है । वस्त्र के अंबार रचनेवाला अपना तन ओढने केलिए एक टुकडे वस्त्र केलिए तरसता है । ऐसे श्रमिकों में अधिकांश गाँव के कुली, किसान, धोबी, चमार, बढई जैसे श्रमिक है जो काम की खोज में महानगरों में आये हुए है । गाँव में स्वतंत्र वृत्ति के अभाव में विवशतावश नगरों में आये इनकी हालत पहले से भी बदतर हो जाती है । कौडियों के बदले तथाकथित श्रेष्ठ वर्ग की नौकरी करते हुए ये पशुवत जीवन बिताते हैं । मज़दूरों की जीवन विवशता का 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने मार्मिक वर्णन किया है -

बाग के बाहर पडे थे झोंपडे / दूर से जो दिख रहे थे अधगडे / जगह गंदी रुका सडता हुआ पानी / मोरियों में जिन्दगी की लन्तरानी / बिलबिलाते कीडे, बिखरी हड्डियाँ / सेहरों की परों की थी गड्डियाँ xxxx हवा बदबू से मिली / हर तरह की बासी लाई पडी हुई ।[1] इस प्रकार गरीबी और गन्दगी में जीनेवाले मज़दूरों का जीवन अत्यन्त दयनीय है । जब पूंजीपति अट्टालिकाओं में ऐशो-आराम का जीवन बिताते हैं तब उन्हें संपन्न बनानेवाले ये मज़दूर कुत्तों से भी गयी

---

1. निराला रचनावली खंड-2, पृ 44

बीती ज़िन्दगी बसर करते हैं[1]। भूख उनसे भारी से भारी काम कराती है। अत: एक जून की रोटी के लिये ये कोई भी काम करने में तैयार है। इस तरह के अनेकानेक गरीब महानगरों में है जो तरह तरह के काम करके पेट पालते हैं। प्रखर धूप में उबलती सड़कों पर रिक्शा चलानेवाला आदमी हर शहर का परिचित पात्र है। गरीबी उसे मनुष्य को ढोने में विवश बनाता है। "खुरदरे पैर" कविता का रिक्शावाला श्रमिक जीवन की विवशता का साकार प्रमाण है - धँस गये / कुसुम कोमल मैं / गुठल घुटनेवाले कुलिश-कठोर पैर / दे रहे थे गति रबड विहीन ठूँठ पैडलों को / चला रहे थे / एक नहीं, दो नहीं, तीन तीन चक्र / कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को / नाप रहे थे धरती का अनहद फासला / घंटो के हिसाब से ढोये जा रहे थे[2]।

महानगरों में अपना श्रम बेचकर जीनेवाले गरीब वर्ग को भयानक शोषण का शिकार होकर रहना पड़ता है। पूँजीपतियों द्वारा उनके श्रम का शोषण होता है तो सूदखोर महाजनों के द्वारा उनके कठिन परिश्रम से आर्जित मज़दूरी की कौडी कौडी छीन ली जाती है। बाँदा ऐसा शहर है जो गरीबों का रक्त चूसकर उत्तरोत्तर विकास प्राप्त करता है। महाजनों की इस नगरी में गाँवों से भी श्रमिक आकर अपने श्रम का फल महाजनों के सामने झोंक देते हैं और खाली हाथ लौट जाते हैं।

1· बिलबिलाते कीडे, ताबदान में किलबिल किलबिल
इधर सडी, गंदी कच्ची सी नाली का पानी पंकिल
उठते थे, अब खरे भभककर सडन और बदबू के वाँ पर
और वहीं पर बने हुए थे मानव नामक कीडों के घर
जिन कोठरियों में कुत्ते भी नहीं चाहते छिन भर रहना
उनमें श्रमिकों के बच्चों को पड़ता है दिन भर रह रहना।
हम विषपायी जनम के - शिवमंगल सिंह सुमन, पृ·45।

2· सतरंगे पंखोवाली - नागार्जुन, खुरदरे पैर, कविता

अपने परिवार की भूख मिटाने केलिए गहनें गिरवी रखकर भी घर का खर्च पूरा न कर सकने में विवश गरीबों को शहरों के महाजन बारंबार लूटते रहते हैं । उनके छोटे छोटे अरमाने इस शहर में भस्मीकृत हो जाते हैं[1] ।

श्रमरत, शोषित, गरीब वर्ग के प्रति प्रगतिशील कवियों की सहानुभूति व्यापक रही । इसलिये इस धारा के कवियों ने श्रमिक वर्ग के जीवन संघर्षों को उभारने में पूरी ईमान्दारी और प्रतिबद्धता दिखायी है । शोषित, पीड़ित जनता के प्रति आस्था के कारण इन्होंने शोषक वर्ग के विरुद्ध आवाज़ उठायी । इन कवियों ने जमीन्दार पूंजीपति जैसे शोषकों के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह करते रहे । लेकिन सामन्तवादी और पूंजीवादी ही नहीं, आम जनता के श्रम और श्रम के शोषण में लगे वर्तमान राजनीतिक नेता भी इनके विद्रोह की आग से बच नहीं पाये ।

3· शोषण के प्रति विरोध

व्यवस्था में अर्थ संपन्न, साधन संपन्न वर्ग के द्वारा साधनहीन वर्ग का शोषण एक परंपरागत नियम बन गया है । लेकिन आशा की बात है कि शोषण जितना प्रखर होता जा रहा है, उतनी प्रबलता से, उतनी तीव्रता से इस पर विरोध भी प्रकट होता जा रहा है । प्रगति के इच्छुक कवि अमानवीय शोषण और अन्यायी शोषकों से अपना विरोध सशक्त वाणी में अभिव्यक्त करते आ रहे हैं । मानव प्रगति में बाधक, मानवता का परम शत्रु शोषण जहाँ भी दृष्टिगत हो, वे उनकी गंभीर आलोचना करते दिखायी पड़ते हैं । मानव द्वारा मानव का शोषण उन्हें हमेशा अप्रिय ही लगा । पन्त ने "धनिक" कविता में नृशंस, अत्याचारी पूंजीपतियों को मनुष्य के रक्त में पलनेवाले जोंक के रूप में चित्रित किया[2] । मनुष्य का उष्ण रक्त चूसनेवाले

1· फूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल, पृ·85

2· वे नृशंस, वे जन श्रम बल से पोषित/दुहरे धनी, जोंक
जग के, भू जिनसे शोषित/नहीं जिन्हें करनी श्रम से जीविका उपार्जित /
युगवाणी - पन्त, पृ·31

इन सूदखोर व्यापारियों और जमीन्दारों का साम्राज्य तिलतिल मिटनेवाले कंकालों पर खडा है[1]।

शोषक पूंजीपति वर्ग ने संसार की अर्थ व्यवस्था को अपंग और विकृत बना दिया है। इसने ही जनसाधारण की रोजी रोटी छीनकर उन्हें कायर एवं नपुंसक बना दिया है। परिणामत: गरीब वर्ग रूखे वेश सूखे अधर और भूखे पेट से जी रहे हैं[2]। यहाँ हर दिन, हर क्षण भूख प्यास से बडी तादाद में नर, नारी और बच्चे मर मिटते हैं। इस भीषण अवस्था का प्रमुख कारण दुनिया भर के संपन्नों का शोषण है। अपने स्वार्थ लाभ केलिए वस्तुयें जमाकर कृत्रिम अकाल उत्पन्न करानेवाले जमीन्दार, पूंजीपति जैसे संपन्न आम जनता को गरीबी और भुखमरी की ओर धकेल देते हैं। अत: मुट्ठी भर लोगों की लाभेच्छा केलिये लाखों की संख्या में लोग तडप तडपकर प्राण छोडते हैं। अकाल की यह दयनीय स्थिति, जो शोषण का भीषण परिणाम है, नवीन ने यों प्रस्तुत किया -

भात के लिये श्वान को औ मानव को लडते देखा
पति पत्नी को इक रोटी के हेतु नितान्त झगडते देखा
मैने सूखे शिशु को भूखी माँ के स्तन निचोडते देखा
मैने भूखे शिशु की भूखी माँ को प्राण तोडती देखा[3]।

1· मेरी कवितायें - भगवतीचरण वर्मा, पृ·192

2· वेश रूखे / अधर सूखे / पेट भूखे / हीन जीवन / दीन चिन्तन / क्षीण आलंबन।

बेला—निराला, पृ·62

3· हम विषपायी जन्म के - बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ·453

यह दृश्य संवेदन शील कवि को इस अवस्था के कारणभूत अमानवीय शोषण का विरोधी बना देता है । निराला की कविता कुकुरमुत्ता प्रतीकात्मक रूप में पूंजीवादी संस्कृति पर किया गया प्रहार है । गुलाब को पूंजीपति का और कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाकर मनुष्य श्रम के शोषण में पले कैपिटलिस्ट समाज को कवि धिक्कारते हैं -
अबे सुन बे गुलाब / भूल मत जो पायी / खुशबू रंगो आब /
खून चूसा खाद का / तू ने अशिष्ट / डाल पर इतरा रहे है कैपिटलिस्ट /
कितनों को तूने बनाया है गुलाम ।[1]

संसार में नित्य ही लाखों व्यक्ति बेघर, निर्वस्त्र और अन्नहीन होकर अपमानित जीवन व्यतीत करते हैं । निरीह मनुष्य की इस दुरवस्था का उत्तरदायित्व समाज के संपन्न पूंजीपतियों को है जिनके कारण इधर करते हे करोडों / घर नहीं है मन खोया / बसर करते घृणित कुत्तों / सा पराजित भग्न जीवन ! / हाय ! सूखी छातियों में / है न बाकी खून भी जो / बालकों को नरक भर दे /[2] ऐसी घृणित पूंजीवादी व्यवस्था मानवता केलिये घोर कलंक है, अभिशाप है । अपने सुख में मदहोश पडे अपने स्वार्थों पर अडे रहनेवाले ये पूंजीपति असंख्य भूखे नंगों के शव पर विहार करते हैं । जनता को चूस चूसकर अपने राजमहल भरनेवाले ये सडकों पर पडे क्षुधा पीडित को ठुकराते चले जाते हैं ।

इस दुनिया के सभी अलौकिक अनुपम दीख पडनेवाली वस्तुओं के पीछे केवल मानव का अनवरत हाथ है । लेकिन मनुष्य के अथक श्रम से उद्भूत वस्तुओं के पीछे भयानक शोषण की भी कहानी है । अत: वास्तुकला

---

1. निराला रचनावली - खण्ड - 2, पृ.44
2. पिघलते पत्थर - रांगेय राघव, पृ.

के अन्यून उदाहरण के रूप में खड़े ताजमहल के निर्माण में हुए शोषण उस अद्भुत के प्रति कवि मन में आनंद के बदले घृणा पैदा कराती है । इसलिये उसकी निन्दा करके कवि पन्त कहते हैं -

हाय मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो, जग का जीवन ।[1]

मानवता और सत्य की गला घोंटनेवाली पूंजीवादी व्यवस्था जनशोषण और दमन पर आधारित है । इसे मिटाये बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र में कल्याण की कामना ही नहीं कर सकता । अतः पूंजीपतियों का अपराध अक्षम्य मानकर कवि सुमन पूंजीवाद के विरुद्ध जिहाद बोलते हैं । पूंजीवाद जन्य सामाजिक विषमता की समाप्ति की अदम्य इच्छा इन पंक्तियों में व्यक्त है -

जिन्होंने स्वार्थ वश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटी कोटि बुभुक्षितों का कौर तलक छिना लिया है ।
"लाभ शुभ" लिखकर जमाने का हृदय चूसा जिन्होंने
x x x x x x x x
बिलखते शिशु की व्यथा पर, दृष्टि तक जिनने न फेरी ।
यदि क्षमा कर दूं उन्हें धिक्कार माँ की कूख मेरी
चाहता हूं ध्वंस कर देना विषमता की कहानी ।"[2]

---

1. पूंजीवाद ने महत्व नष्ट कर दिया सबका / जीवन का, जन का, समाज का, कला का / बिना पूंजीवाद को मिटाये, किसीतरह भी / यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता
धरती - "एकाधिकार के पंजे में" कविता - त्रिलोचन, पृ.83
2. विश्वास बढ़ता ही गया - शिवमंगल सिंह सुमन, पृ.9

पूंजीवादी समाज विषमतापूर्ण है। यहां एक ओर अकाल है तो दूसरी ओर धन से बिहाल है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत संपन्न और विपन्न के बीच का फासला प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लेकिन सत्य तो यह है कि समाज में यह विरोध जितना प्रखर दिखायी देगा उतनी ही तेज़ी से पूंजीवाद का अन्त भी संभव होगा। पूंजीपतियों के असीमित दर्प, उच्चता के गर्व, पूर्णता के भान अकिंचन अभिमान सब को चकनाचूर करते हुए उसका अस्तमय अवश्य हो जायेगा। क्योंकि मानव प्रगति में बाधक यह पूंजीवादी संस्कृति मरण है, रिक्त है, व्यर्थ है[1]। ऐसे शोषण पर जनविरोध का प्रतिनिधित्व करते हुए रांगेय राघव कहते हैं - धन कुबेरों की भयंकर वासना का हलाहल मैं कण्ठ में / धर / मानवी अज्ञान की उस / पार्वती की उंगलियों से / घेर लूं ग्रीवा / अरे धिक्कार / शत शत बार[2]। यह पूंजीवादी जनशोषण अधिक काल तक नहीं टिक पाता। इसके विरुद्ध जनसाधारण की प्रतिक्रिया भयानक होगी। "जिजीविषा" के कवि महेन्द्र भटनागर शोषक पूंजीपतियों को चेतावनी देते हैं "जितना ज्यादा निर्धन जनता को लूटोगे। उतना ही बदले में मूल्य चुकाना होगा। जितना ज्यादा भोली मानवता पर चढ़ इतराओगे। उतना ही उसके सम्मुख। घुटनों के बल झुकना होगा[3]।"

लेकिन शोषण की समाप्ति क्या आसान है? बिल्कुल नहीं। भारत की स्थिति तो यही साबित करती है कि सदियों से साम्राज्यवादी, सामन्तवादी और पूंजीवादी शोषण से परेशान औसत भारतीय अब भी -

---

1. तारसप्तक -"पूंजीवादी समाज के प्रति"कविता - मुक्तिबोध, पृ॰61
2. पिघलते पत्थर - रांगेय राघव
3. जिजीविषा -महेन्द्र भटनागर, पृ॰46

अर्थात् स्वतंत्र प्राप्ति के बरसों बाद भी - शोषण के पंजे से मुक्त नहीं है । स्वतंत्र भारत में शोषकों की लिबास में आये राजनीतिक नेता यहाँ के आम आदमी को अपने लंबे लंबे भाषणों में डुबोकर बडी कुशलता से उसको अपनी स्वार्थ सिद्ध केलिये सहायक बनाते हैं । जनता द्वारा चुने इन नेताओं के कारण अनुभूत दुःख दुरितों की कोई सीमा नहीं । वर्तमान भारत की स्थिति इतना हृदयविदारक है कि

भूख अकाल बाढ बीमारी रूढि और अज्ञान
ऊपर से शासक स्वजनों की नौकरशाही शान
परेशान है जन मन फिर भी नवरचना में लीन
शान्तिव्रती यह राष्ट्र हमारा संबद्ध स्वाधीन ।[1]

देश के आजादी के लिये जिन्होंने अधिकाधिक दुःख और त्याग भोगे उन गरीबों की स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशक बाद भी पहले की जैसी है । औसत भारतीय नेताओं के जोशीले भाषण सुनकर ताली बजाने और प्रेम के कतरनों को पढकर भूख मिटाने में विवश है । ऐसी जनद्रोहमय करतूतियों पर क्रुद्ध होकर दुष्यन्त कुमार हमारे नेतृत्व की कटु आलोचना करते हैं -

नेताओं / मुझे माफ करना / ज़रूर कुछ सुनहले स्वप्न होंगे / जिन्हें मैं ने नहीं देखा / मैं ने देखा / जो मशालें उठाकर चलते थे, वे तिमिरजयी / अंधेरे की कहानी सुनाने में खो गये / सहारा टटोलते हुए दोनों दशक / ठोकरें खा खाकर लंगडे हो गये / अपंग और अपाहिज बच्चों की तरह / नंगी बदन / ठंड में काँपता

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.68

हुआ एक एक वर्ष / ऐन मेरी पलकों के नीचे गुजरा है / तुम्हारा आभारी हूं रहनुमाओं / तुम्हारी बदौलत मेरा देश / यातनाओं से नहीं / फूल मालाओं से दबकर मरा है।[1]"

बीस बरस की आज़ादी से यहां के लोगों को कुछ नहीं मिला, मिली सिर्फ आज़ादी[2]। उतने सारे बरसों बाद भारत की महान उपलब्धि यहां दिन-ब-दिन उग आनेवाली नयी नयी राजनीतिक पार्टियां है। अपने लक्ष्य में एकता रखनेवाले इन सारे दलों का उद्देश्य निश्चय ही जनता का हित नहीं। प्रत्येक राजनीतिक दल जनसेवा की आड में अपनी स्वार्थ पूर्ति करने की होड में है[3]। भ्रष्टाचार में एडी से चोटी तक डूबे इन राजनीतिक नेताओं द्वारा जनता का धन और जनशक्ति का खूब शोषण होता है। यहां नेताओं की मनमानी ही चलती है। भुखमरी को जन्म देकर वनमहोत्सव मनाने वाले इनके कारण यहां व्यक्ति स्वातंत्र्य पर गाज गिराया जाता है, क्रान्तिकारी लेखनी जेल भेज दी जाती है। स्वर्ण मुद्राओं की चपौती लेते हुए राजगुरुओं द्वारा मुनाफा खोरों को आशिष दिये जानेवाले वर्तमान लोकतन्त्र में करोडों गरीब मूकप्राणियों का बलिदान होता रहता है।

---

1. विफल वर्ष - दुष्यन्त कुमार
2. तारसप्तक - अज्ञेय की आज़ादी के बीस बरस कविता
3. भूखे / सारे दल भेडियों - से टूटते है / ऐसी - ऐसी बातें / और ऐसे - ऐसे शब्द सामने रखते हें / जैसे कुछ नहीं हुआ है / और सारे दल / पानी की तरह धन बहाते है।

स्वाधीन भारत में राजनीतिक नेताओं द्वारा पिछडी जातियों के उद्धार की अनेक योजनाओं का वादा किया गया । कुछ तो अवश्य बनी । लेकिन इनकी फायदा गरीबों तक कभी नहीं पहूँची । इनकी अबोधता से नेताओं ने खूब लाभ उठाया । देश की पिछडी जनता के नाम पर, इनके उद्धार की योजनाओं के नाम पर वोट खरीदते हुए इन जननायकों ने शासन पर अपना आसन जमाया[1] ।

भारत की आजादी के पीछे अनेकों का महनीय त्याग मौजूद है । लेकिन आज़ादी की पहली वर्षगाँठ में ही अपने त्याग की मूल्यहीनता जनता को मालूम हुआ । स्वातंत्र्य का सुफल संपन्नों और स्वार्थी नेताओं तक आकर रुक गया । स्वतंत्रता प्राप्ति के एक वर्ष बाद की देश की स्थिति का चित्रण दिनकर यों करते हैं -

आज़ादी खादी के कुर्ते की एक बटन / आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई / फैशनवालों के लिए नया फैशन निकला / मेटर में बाँधो तीन रंगवाला चिथडा / टोपी कहती है मैं थैली हो सकती हूँ / कुरता कहता है मुझे बोरिया ही कर लो[2] ।"

---

1. इनके तन का रस निचोड़कर / फूल फूल रही चमक - दमक की शहरी दुनिया / राजनीति के शोषक-शासक / रोगी, रोगी, धार्मिक नेता, पूंजीवादी प्रेत / विषमताओं के आराधक / इनका पिछडापन खरीदकर मौज उडाते / शासन पर अधिकार जमाते ।
"रोटियों की जंजीर" कविता -
2. नीम के पत्ते - पहली वर्षगांठ कविता-दिनकर, पृ.17

देश के कर्णधार मंत्रियों की जनसेवा उद्घाटनों, भाषणों तथा अधिनिवेशों तक सीमित है । उनके पास जन जीवन की जलती समस्याओं पर ध्यान देने का वक्त नहीं । जनता चाहे बेकार हो लेकिन सरकार व्यस्त है । व्यस्त देश के कर्णधार "व्यस्त मिनिस्टर, व्यस्त गवर्नर / व्यस्त कलक्टर की कोठी के चपरासी का कारबार है / उद्घाटन, भाषण अभिभाषण अधिवेशन सेशन, देशाटन / डेप्युटेशन, प्लान-कमीशन, उपचुनाव का हरदम सीज़न । वाले भ्रष्टाचारी सत्ताधारियों द्वारा देश की राजनीति कलुषित है ।

इस प्रकार प्रगतिशील कवियों ने शोषकों की कलई खोलकर उन्हें जनसमक्ष प्रस्तुत किया । ज़मीन्दार पूंजीपति ही नहीं वर्तमान राजनीतिज्ञों के जनशोषण से भी इन्होंने आम जनता को परिचित कराया और उनमें अपने अधिकारों के प्रति सचेतनता तथा वर्ग बोध जागृत कराने का भरसक प्रयास किया ।

4· शोषित वर्ग से संवेदना और जागरण का सन्देश

प्रगतिशील होने का पहला शर्त शोषित जनता के प्रति संवेदनशील रहकर उनकी तरफदारी करना है । शोषित के सुख दुःख, पीडा-दर्द, शोषण-दमन को आत्मसात करके इन कवियों ने यह पक्षधरता अपना सामाजिक दायित्व माना है । शोषितों से सीधा संबन्ध स्थापित करके इन्होंने श्रमिक वर्ग को अपने व्यापक अधिकारों से सचेत बनाने का प्रयास

किया । श्रमिकों से संवेदनशील कलाकार ही उसमें जागरण उत्पन्न कर सकता है। ये प्रगतिशील कवि श्रमिक वर्ग की समस्याओं और जीवन संघर्षों को अपनाकर उनके साथ ही रहे । वह स्वयं दीन-हीन-पीड़ित वर्ग का जीवन संबल बनकर उनसे निकटता स्थापित की और उनके विरक्त मन को नयी शक्ति प्रदान की[1] । वह श्रमिकों से इतना गहरा जुड़ गया कि उनके दुर्बल भग्न हृदय की व्यथायें, उनकी करुण कथायें कवि का अपना बन गया । "दीन" कविता में दीन का दुःख कवि निराला यों महसूस करते हैं -

सह जाते हो / उत्पीड़ित की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न / हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न / अन्तिम आशा के कानों में / स्पंदित हम सबके प्राणों में / अपने उर की तप्त व्यथायें / क्षीण कण्ठ की करुण कथायें / कह जाते हो / और जगत की ओर ताककर / कह जाते हो / दुःख, हृदय का क्षोभ त्याग कर / सहजाते हो[2] ।

ऐसा कवि अपनी कविता का मूल श्रमिकों के बीच ढूंढता है । अपनी मिट्ठी के पुतलों के शब्दों में कवि अपने कवित्व की खोज करता है । अतः उसकी भाषा, जीवन की भट्टी में सेंकी हुई है, उसकी कविता श्रमिक वर्ग को समर्पित है[3] । बहुसंख्यक सर्वहारा का पक्षधर कवि का लगाव केवल इस

---

1. जो दीन हीन पीड़ित निर्बल / मैं हूं उनका जीवन संबल / जो मोह छिन्न, जगत में विरक्त / वे मुझसे बने सशक्त ।
युगांत - पन्त, पृ.34

2. परिमल - निराला, पृ.122

3. अपनी मिट्टी के पुतलों के शब्दों में ही अपना कवित्व हमको न ज़रूरत आज देववाणी की, हम खुद ढालेंगे / जीवन की भट्टी में भाषा, जी चाहा, रूप बना देंगे । तारसप्तक - नेमीचन्द्र जैन, पृ.

वर्ग में है । इसलिये स्वाभाविक तौर पर वह श्रमिक वर्ग के जीवन से इतना जुड़ जाता है कि मुक्तिबोध के अनुसार -

विशाल श्रमशीलता की जीवित मूर्तियों के चेहरे पर
झुलसी हुई आत्मा की अनगिन लकीरें
मुझे जकड़ लेती हैं, अपने में अपना सा जानकर
बहुत पुरानी किसी निजी पहचान से ।[1]"

यही पहचान कवि नागार्जुन को अतितुच्छ, अतिसाधारण लोगों से प्रतिबद्ध रहने की प्रेरणा देती है[2] । अपने परिवेश में दिन-ब-दिन बढ़नेवाले अत्याचारों को देखकर जनता से प्रतिबद्ध कवि चुप नहीं बैठ पाता । अपने चारों ओर मानवता की सड़ी गली अवस्था की ओर वह समाज का ध्यान आकृष्ट करता है -

"यहाँ बिलखते लाल देख लो, और निरक्षर युवक कुमार
वंचित व्यथित युवतियाँ, कुम्हलाती कलियाँ सुकुमार
जग को जो भोजन देते हो, आज उन्हें भूखा देखो
और दूसरी ओर देख लो, धन-मद गौरव मद व्यभिचार ।[3]"

---

1. चान्द का मुँह टेढ़ा है - मुक्तिबोध, पृ.81
2. लेखनी ही है हमारा फार / धरा है पट, सिंधु है मसिपात्र / तुच्छ से अतितुच्छ जन की जीवनी हम लिखा करते - / कहानी व्यंग्य, रूपक, गीत ।
युगधारा - मित्र को पत्र - नागार्जुन, पृ.65
3. "कृषकों की अन्तरात्मा कवि के प्रति" कविता - नगेन्द्र शर्मा - प्रगतिशील कवितायें ﴾सं﴿ राजीव सक्सेना, पृ.170

ऐसी असामनतापूर्ण परिस्थिति में जनकवि हमेशा श्रमिक जन के साथ अपने को पाना चाहता है। उस वर्ग के उद्धार का भार वह स्वयं अपने कंधे पर ले लेता है[1]। अत: गरीबी और अज्ञान से होकर गुज़रनेवाले, सम्पन्नों के खेतों में काम करना अपना जीवनोद्देश्य माननेवाले गरीब कृषकों को अपनी अपार ताकत का परिचय देते हुए कवि मोहनलाल द्विवेदी कहते हैं -

"ये नभचुंबी प्रासाद भवन, जिनमें मंडित मोहक कंचन
ये चित्रकला - कौशल - दर्शन, ये सिंह पौर तोरण बन्दन
xx xx xx xx
वह तेरी दौलत पर किसान, वह तेरी ताकत पर किसान[2]।"

उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिकों की निर्णायक भूमिका है। लेकिन परंपरा से वे अपनी इस क्षमता से अनभिज्ञ है। ऐसे श्रमिक वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाते हुए समाजवादी आदर्शों का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ जो सामाजिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण मोड है। समाजवाद ने कृषकों में यह बोध उत्पन्न कराया कि जो खेत में काम करता है, वही उसका सही मालिक है। वास्तव में इस धरती का एकमात्र अधिकारी वह किसान है जो मिट्टी के संग साथ ही तपकर, गलकर, जीकर, मरकर अपना जीवन खपा देता है[3]। लेकिन विरोध की बात है कि अपने श्रम के पसीने से अनाज के दाने पैदा करके इन्हें आँसू के दानों से तृप्त रहना पड़ता है। यह नीति सचमुच खोटी है। इस अन्याय के विरुद्ध संसार भर की जनता अब जाग रही है। अगणित युगों से दमन-शोषण चक्र में पिसी,

---

1. गाओ / वह मज़दूर किसानों के स्वर कठिन हठी / कवि है, उनमें अपना हृदय मिलाओ / उनके मिट्टी के तन में है अधिक ताप / उनमें कवि है अपने विरचे मिलन के पाप जालाओं।
तारसप्तक - "स्वतन्त्रता दिवस" कविता - शमशेर बहादुर सिंह, पृ.108
2. भैरवी - "किसान" कविता, पृ.19
3. गुलमेंहन्दी - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.56

मूक मानवता मुक्ति का संदेश पाकर आज सहसा उठ रही है । वह अपने बंधन की शृंखलायें तोड़ने के लिये लालायित हो रही है । इस श्रम में प्रगतिशील कवि उनके साथ देते हैं । श्रमिकों को भू के यथार्थ अधिकारी मानते हुए पन्त उन्हें जागरण का आह्वान देते हैं -

"अग्नि स्फुलिंगों का कर चुंबन
जागृत करता दिग दिगन्त छन
जागो श्रमिकों बनो सचेतन
भू के अधिकारी है श्रमजन ।"[1]

श्रमिक की सबसे बड़ी एकमात्र संपत्ति उसका श्रम ही है। यह कोई उससे छीन नहीं ली सकता[2] ।"

दलित दमित वर्ग की मुक्ति में प्रमुख भूमिका श्रमिकों की ही है । उनके द्वारा ही उनका मोचन संभव होगा । अत: मुक्ति के कांक्षी श्रमिकों को इस उद्यम में सक्षम बनाते हुए शिवमंगल सिंह सुमन उन्हें उकसाते हैं -

आओ, उठो, करो तैयारी / बाकी अभी तुम्हारी बारी / आहुति लाओ / आज दीप सर दीप जलाओ / हाथ बढ़ाओ, लो मशाल, आगे बढ़ जाओ / दुनिया भर के पद दलितों का हाथ बढ़ाओ[3] ।

---

1. युगवाणी - पन्त, पृ.35
2. खो सकता है / मेरा तेरा / रत्ती रत्ती जोड़ सोना /
   हो सकता है / पूर्ण असंभव / का भी पूरा संभव होना /
   किन्तु नहीं श्रम / मेरा तेरा / इन हाथों का खो सकता है ।
   गुलमेंहदी - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.159
3. विश्वास बढ़ता ही गया - सुमन, पृ.31

श्रमिक जागरण और अपने परिवेश के प्रति उनकी पहचान मेधावी वर्ग के सामने गंभीर चुनौती है । अपने पैरों तले दबे मानव कीडों का संहार ताण्डव उसके लिये अपने साम्राज्य की समाप्ति की सूचना है । शोषण की हुकूमत को चेतावनी देते हुए बाल कृष्ण शर्मा नवीन कहते हैं -

सुन लो गर तुम में हिम्मत हो / नंगे भूखों का यह गाना / अब तक के रोनेवालों का विकट तराना मस्ताना / जिन को तुम कीडा समझे थे वे / तो चारों निकले मानव / जो रेंग करते थे अब तक / वे आज कर उठे हैं ताण्डव[1] ।"

किसान मजदूर के समान समाज का परंपरा से पीडित दूसरा एक वर्ग है नारी का । प्रत्येक युग में वह पुरुष द्वारा शोषित, दमित रही है । पुरुष की कामवासना की पूर्ति के परे समाज ने उसे कोई विशेष महत्व ही नहीं दिया । वह केवल नर की छाया रही[2] । गृह स्वामिनी का सुन्दर नाम ढोकर वह गृहसेविका से भी बदतर जीवन बिताती रही । पुरुष ने निम्न से निम्न, जघन्य से जघन्य काम उससे कराया था । युग युग की बन्दिनी नारी अपनी ही देह की कारा में सीमित होकर पशुवत जीवित रही[3] ।

कुलीन पतिव्रता नारी की स्थिति यह है तो विधवा की दशा बखान भी नहीं कर सकती । अनाचारों और अंधविश्वासों में जकडे समाज में विधवा हमेशा अपशगुन मानी जाती रही । वह इतनी घृणित रही कि कोई उस पर दृष्टि ही नहीं फेरता । निराला के शब्दों में -

---

1. हम विषपायी जन्म के - बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ.

2. पुरुषों की ही आंखों से नित देख देख अपना तन / पुरुषों के ही भावों से अपने प्रति भर अपनापन । युगवाणी - पन्त, पृ.60

3. वही, पृ.46-47

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन ।"[1]

संपन्न नारी समाज में दलित पीड़ित और अस्वतंत्र रही तो गरीबिन का क्या कहना ? संपन्न समाज में रनिया जैसी खेत मज़दूरिन का जीवन सामाजिक विषमता का उत्तम उदाहरण है । जब अमीर खाता है तो रनिया भूखी रहती है, जब वह रेशम पहनता है, रनिया चिरकुट पहनती है । अत: केदारनाथ के शब्दों में

"रनिया मेरी दु:खी बहन है, वह निदाघ में मुरझ रही है
मैं रनिया का सुखी बंधु हूं, चिर वसन्त में बिहंस रहा हूं ।[2]

लेकिन नारी की यह शोषित अवस्था धीरे धीरे परिवर्तित होती रही । युग युग से उसका सौंदर्य, उसकी कोमलता, उसका प्यार लुटाया जा रहा था । लेकिन अब स्थिति बदलने लगी । प्रगतिवादी कवियों ने समाज के नारी संबंधी परिवर्तित दृष्टिकोण को अंकित किया । पहले उसके तन मन को लूटनेवाला पुरुष समाज के लिये अब वह भोग की वस्तु मात्र न रही ।

"तुम नहीं हो भोग की वस्तु मुझ को अस्तु तुमसे
भीख मधु की मांगता, मन भी नहीं अलि ज्यों कुसुम
चाटुकारी से रिझाना हुई अवहेला तुम्हारी सुनो नारी
करूँ अभिनंदन तुम्हारा, मौन अब बिन कहे तुमसे[3] ।"

---

1. परिमल - निराला, पृ.110
2. युग की गंगा - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.40
3. मिट्टी और फूल - नरेन्द्र शर्मा, पृ.83

प्रगतिशील कवियों ने शोषण के विरुद्ध नारी की मुक्ति का समर्थन किया -

"मुक्त करो नारी को मानव / चिर बन्दिनी नारी को / युग युग की बर्बर कारा से / जननि, सखी, प्यारी को / छिन्न करो सब स्वर्ण पाश उसके / कोमल तन मन के वे आभूषण / नहीं दाम उसके बन्दी जीवन के।"[1]

नारी का स्वतंत्र अस्तित्व अब समाज को स्वीकृत हुआ। पहले के समान अब वह पुरुष की खरीदी चीज़ नहीं रही। आत्मविहीन, मस्तिष्कविहीन, हृदयविहीन गुड़िया की स्थिति के परे आज की शिक्षित नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व महसूसने लगी है। वह घूंघट से बाहर आ गयी है, घर की चहरदीवारी से, रसोई के बंधन से मुक्त हो गयी है। जो पहले प्रणय की रिक्राडिन के तौर पर पहचानी जाती थी, अब नर की सहचरी बन गयी है। अब वह समता का स्वातंत्र्य का नव इतिहास बन गयी है। परंपरा से शोषित नारी को अपनी इस नयी भूमिका का परिचय देकर त्रिलोचन ने कहा -

आज नारी संभल के चलना है
घर में अब मत रुको निकल आओ
xx xx xx
साथ निकलेंगे आज नर नारी
लेंगे काँटों का ताज नर नारी
दोनों संगी हैं और सहचर हैं
अब रचेंगे समाज नर नारी।[2]

---

1. युगवाणी - सुमित्रानंदन पन्त, पृ. 64
2. गुलाब और बुलबुल - त्रिलोचन, पृ. 138

इस प्रकार कुछ प्रगतिवादी कवियों ने शोषित नारी के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की है । लेकिन सभी कवियों ने मुख्यतः श्रमिक वर्ग में आयी नयी स्फूर्ति को ही अभिव्यक्ति दी है । नवचेतना को पहचानकर उसे काव्यबद्ध करनेवाले सारे के सारे कवियों ने मानव श्रम को उसकी अब तक की प्रगति का मूल आधार माना । इन्होंने श्रमरत मानव की शक्ति-संगठित शक्ति - को शोषक वर्ग के विरुद्ध मोड दिया और उसे प्रगति के लिये उपयुक्त कराने का भरसक प्रयास किया ।

5. श्रम पर विश्वास और श्रमिक संगठन का प्रस्तुतीकरण

भौतिकवादी प्रगतिशील कवि केवल मनुष्य श्रम को दुनिया के इतःपर्यन्त विकास का आधार मानते हैं । मानव शक्ति पर अडिग आस्थावान कवि मानव के परे किसी अलौकिक चेतना को मानने में तैयार नहीं । ईश्वरीय सत्ता को धिक्कारते हुए अंचल कहते हैं -

आज भी जन जन जिसे करबद्ध होकर याद करते
नाम ले जिसका गुनाहों के लिए फरियाद करते
किन्तु मैं उसका घृणा की धूल से सत्कार करता ।"

इनके अनुसार ईश्वर भी शोषक है और मन्दिरों तथा मस्जिदों में मनुष्य को मिटाने का हलचल हो रहा है । इन्हीं जगहों में नागफास लेकर युग के जड शोषक ईश्वर बैठा है । सच भी है कि धर्म और ईश्वर मनुष्य मनुष्य में असमानता का बीज बोते रहते हैं । धर्म के नाम पर

यहाँ नित्य ही अतिनिष्ठुर बातें चालू हो रही है । धर्मांध व्यक्ति द्वारा मनुष्य की भूख अनदेखा किया जाता है । भक्तों द्वारा मन्दिर के सामने पड़े नर कंकाल के सामने ईश्वर के अवतार कपियों को पुए खिलाये जाते हैं । धर्मपरायण समाज की स्थिति यह है कि

> झोली से पुए निकाल लिये
> बढ़ते कपियों के हाथ दिये
> देखा भी नहीं उधर फिरकर
> जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
> चिल्लाया किया दूर मानव ।[1]

लेकिन प्रगतिशील कवियों की दृष्टि में लक्ष्मा का अवतार जनसाधारण से बढ़कर कोई महान इस संसार में नहीं । वही व्याकुल मानवता की रक्षा कर सकता है । वह ईश्वर है, त्राता है और दानवता से रौंदे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है[2] । अन्न उपजानेवाले, महल बनानेवाले ये ही जग के निर्माता है और इन्हीं के ऊपर मानव जीवन निर्भर रहता है -

> निर्माण कर रहे वे जग का
> जो जोड़ ईंट, चूना पत्थर
> जो चला हथौड़े घन क्षण क्षण
> है बना रहे जीवन का घर
> जो कठिन हलों की नोकों से
> अविराम लिख रहे धरती पर

---

1. निराला रचनावली - दान कविता - खण्ड - 1, पृ. 287
2. तारसप्तक - नेमिचन्द्र जैन की कविता, पृ. 11

जो उपजाते फल, फूल, अन्न
जिन पर मानव जीवन निर्भर ।[1]"

मिट्टी ढोनेवाले, पैनी कुसी खेत के भीतर दूर कलेजे तक ले जाकर मिट्टी को जोतने वाले ये श्रमरत मनुष्य ही वास्तव में ईश्वर है ।

श्रमरत मानव के प्रति आस्थावान प्रगतिशील कवि श्रम को सर्वाधिक महत्व देते हैं । "एक साहित्यिक की डायरी" में गजानन माधव मुक्तिबोध ने मानव श्रम से अपना घनिष्ठ संबन्ध व्यक्त करके लिखा - "मैं तो सिर्फ मेहनत पर, अकारथ मेहनत पर, उस मेहनत पर जो अपना पेट भी नहीं भरा सकती, उस मेहनत पर जो बहुत सज्जन है, उस सहनशील श्रम पर लिखनेवाला हूं । मैं उस श्रम का चित्रण करना चाहता हूं जिसका बदला कभी नहीं मिलता ।[2]" इसलिये कवि श्रमरत मनुपुत्र पर विश्वास करना चाहते हैं ।[3] इन्हीं मनुपुत्रों पर अज्ञेय का लगाव यों फट निकलता है - वह जो मिट्टी गोड़ता है / कोदई खाता है और गेहूं खिलाता है / उसकी मैं साधना हूं / वह जो मिट्टी फोड़ता है / मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है / उसकी मैं आस्था हूं ।[4]"

---

1. युगवाणी - पन्त, पृ.13
2. एक साहित्यिक की डायरी - मुक्तिबोध, पृ.49
3. जिसका पथ विराट / वह छिपा प्रत्येक उर में / प्रति हृदय के कल्मषों के बाद / जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश / उस में भासता है एक तारक / जो कि अपने ही प्रगति पथ का सहारा / जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्रा / भीतिहीन विराट पुत्र / इसलिये प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूं ।
4. तारसप्तक - "मैं कहां हूं" कविता -अज्ञेय, पृ.314

समाज के दबे कुचले वर्ग से संवेदनशील प्रगतिशील कवि उनकी मुक्ति के अथक परिश्रम में लगा रहता है । मुक्ति के लिये उनके द्वारा किये गये हर श्रम को वह सराहता है । रूसी क्रान्ति में तानशाहियों पर सर्वहारा वर्ग की विजय पर मुग्ध कवियों ने रूस को श्रमिक वर्ग के त्राता के रूप में देखा और उसे शोषितों की मुक्ति का पथप्रदर्शक माना[1] । इन्हों ने श्रमिकों के संगठन को उनकी मुक्ति में अनिवार्य समझा । श्रमिकों को उकसाते हुए मुक्तिबोध ने बताया -

ओ दुष्ट आत्मन / कट जाओ / टूट जाओ, टूटने से जो विस्फोट शब्द होगा / गूंजेगा जग भर / किन्तु अकेले की तुम्हारी ही वह नहीं होगी कहानी[2] । इसके लिये संगठित श्रम अनिवार्य है । ऐसी संगठित शक्ति के सामने शोषण, दमन और अन्याय का साम्राज्य चूर चूर हो जायेगा । इसमें पहाड को भी उखाडने की ताकत मौजूद है और इनके सामने खडे होने का साहस दुनियां में किसी को नहीं होगा[3] ।" श्रमिक शक्ति का उत्तरोत्तर बढना इस सदी की आवश्यकता है । क्योंकि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि उनके शोषण की समाप्ति का कारण बन जायेगा । इसलिये मज़दूर के घर पुत्र जन्म होने पर कवि केदार कहते हैं -

एक हथौडे वाला घर में और हुआ
हाथी सा बलवान जहाज़ी हाथोंवाला और हुआ
सूरज सा इन्सान तरेसी आंखोवाला और हुआ
माता रही विचार अंधेरा हरनेवाला और हुआ

---

1. प्रलय सृजन - "रूस के प्रति" कविता - शिवमंगल सिंह सुमन, पृ.4,5
2. चांद का मुंह टेढा है - मुक्तिबोध, पृ.265
3. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल - डॉ.रामविलास शर्मा, पृ.110

दादा रहे निहार सबेरा करनेवाला और हुआ
जनता रही पुकार सलामत लेनेवाला और हुआ ।[1]

संगठित जनशक्ति के सदुपयोग पर सामाजिक प्रगति निहित रहती है । ओ काव्यात्मक 'फणिधर' कविता में मुक्तिबोध फणिधर को मणिप्राण धारण करने को कहते हैं जो स्वयं जनशक्ति का प्रतीक है[2] । इस संगठित श्रमिक शक्ति से याने ज़मीन के गड़े हुए देहों की खाक से, शरीर की मिट्टी से, धूल से ही मुक्ति का गुलाबी फूल खिलेगा । अत: जनसंगठन का आह्वान देते हुए त्रिलोचन कहते हैं - जिस समाज में तुम रहते हो / यदि तुम उसकी एक शक्ति हो / उसकी ललकारों में ललकार एक हो / उसकी अमित भुजाओं में दो भुजा तुम्हारी / चरणों में दो चरण तुम्हारे / आँखों में दो आँख तुम्हारी[3] ।
अपने अधिकारों के प्रति सचेत संगठित श्रमिक वर्ग को अब गुलामी से मुक्त होने का वक्त आ गया है । नवयुग उनकी प्रतीक्षा में खड़ा है[4] ।

---

1. प्रगतिशील काव्य धारा और केदारनाथ अग्रवाल,- सं॰रामविलास शर्मा, पृ॰110
2. ओ नगात्मे / इन सब रंगों को पिये / उन्हें विष में परिणत / करके भीतर / भोगो थर थर / भोगो जहरीला संवेदन / उससे अधिकाधिक जागृत / अधिकाधिक आक्रामक हो / सूंघते हुए वीरान हवा / तुम स्वप्न देखते हुए / मन के मन में विश्लेषण करते हुए / झाड़ियों से गुज़रो - चाँद का मुँह टेढ़ा है - मुक्तिबोध, पृ॰66
3. धरती - त्रिलोचन, पृ॰79
4. मैं शोषित दुनिया के / आज करोड़ों इन्सानों से कहता हूँ / मैं भूखों, नंगों, पददलितों / बेबस और निरीहों को / आह से कहता हूँ / अब और अंधेरे में / मन खोजो पथ अपना / अब और न देखे / अन्त की आँखों से सपना / खोलो पलकों को साथी / नया सबेरा / आज तुम्हारे स्वागत में है तैयार - जिजीविषा - महेन्द्र भटनागर, पृ॰37

लेकिन यह नयी व्यवस्था जनसंगठन के सक्रिय उपयोग से स्थापित हो सकेगी । इस केलिए शोषित वर्ग को शोषकों से अपना अधिकार छीन लेना चाहिए जो इन दो वर्गों के संघर्ष में परिणत होगा । श्रमिकों के अधिकारों का संरक्षण संघर्षात्मक मार्ग से भी संभव होगा । श्रमिक हितैषी प्रगतिशील कवियों ने समाज के इस विपन्न वर्ग को अपने हक के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी ।

6. वर्ग संघर्ष का आह्वान

अपने अधिकारों से सचेत श्रमिक वर्ग में जो जागरण आया, उससे उन्हें संपन्न शोषकों के अन्याय और दमन के खिलाफ संगठित होने की आवश्यकता अधिकाधिक महसूस हुई । साथ ही साथ उन्हें यह भी मालूम हुआ कि अपनी संगठित शक्ति में अब की सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने की क्षमता है । रूसी क्रान्ति की विजय से मार्क्सवादी सिद्धान्तों ने दुनिया को यह दिखला दिया कि शान्तिपूर्ण ढंग से शोषकों के अन्याय का दमन नहीं किया जा सकता, इसके लिये श्रमिक वर्ग को संघर्ष करना ही चाहिये । अत: मार्क्सवाद ने दुनिया भर के शोषितों को अपने अधिकारों की प्राप्ति केलिये विद्रोह के मार्ग पर अग्रसर होने का आह्वान दिया । मार्क्स के प्रगतिपूर्ण चिन्तनों से ओतप्रोत कवियों ने सामूहिक परिवर्तन के लिये वर्ग संघर्ष को प्रश्रय दिया । "युग की गंगा" संग्रह में केदारनाथ अग्रवाल ने कविता में जनता की वाणी मुखरित होने की अनिवार्यता पर ज़ोर देकर कहा "अब हिन्दी कविता न रस की प्यासी है न अलंकार की इच्छुक और न संगीत की तुकान्त पदावली की भूखी है अब वह चाहती है, किसान की वाणी, मज़दूर की वाणी और जन जन की वाणी ।"[1]

1. युग की गंगा - केदारनाथ अग्रवाल, पृ.8

अत: "जागरण ही प्राण मेरा / क्रान्ति मेरी जीवनी है / जागरण के क्रान्ति से मैं / क्षमाक्षम दूँगा दिशायें" / घोषित करनेवाले कवि की क्रान्तिवादिता "हम" कविता में व्यक्त है[1]।

श्रमिक वर्ग को संघर्ष के निकट लाते हुए प्रगतिशील कवियों ने दुनिया के कोने कोने के संघर्षरत मनुष्य को उनके सामने प्रस्तुत किया। अपने अधिकारों के लिये लड़नेवाली आफ्रीकी जनता[2] और मालिकों के विरुद्ध हुए मिश्र देश के काले गुलामों[3] से उन्होंने अपने चारों ओर के शोषित जनवर्ग को परिचित कराया। यही नहीं अपने देश में ही उच्च-वर्गीय जुल्मों के विरुद्ध शोषित जनता को संघर्ष की प्रेरणा देनेवालों की भी इन्होंने मुक्तकण्ठ प्रशंसा की। तेलंगाना के किसानों को साम्यवादियों द्वारा जमीन्दारों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति के लिये उभारा गया और सरकार की फौज भी उन्हें दबाने में असफल रही। इन क्रान्तिकारियों का अभिनन्दन करके कवि शील ने लिखा -

लगी है होड़ जुल्मों से हुआ बागी तिलंगाना
बगावत गा रही है, जिन्दगी का क्रान्ति गाना
कि जुल्म शासकों के चिह्न अब तो रह न पायेंगे
उगा है सूब धरती में नयी आशा झलकती है।
नये युग केलिये इन्सान में आह्वान जागा है
xx xx xx
हमारे देश में भी अब नया इन्सान जागा है।

---

1. युग की गंगा - केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 13
2. आफ्रीकी की काली मिट्टी लाल हो गयी आज / गोरे बोने की साज़िश विकराल हो गयी आज। प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन
3. ले आया भूकंप / पिरमिड डोल रहे xx xx खड़ा हो गया काला इन्सान / आज तो अपना सीना। बन्दनवार - देवेन्द्र सत्यार्थी

इस देश में कोटान्कोटि शोषित गरीब किसान विप्लव के वीर हैं[1]। उनके हड्डीमात्र शरीर में विप्लव की चिनगारी प्रज्वलित है। उन्हें चाहिए कि वे संघर्ष की चिनगारी को कभी बुझने न दे और उसे अधिकाधिक व्यापक बनायें -

आज़ादी की हर तडपन को
बारंबार जिलाये जा
अपनी कुटिया की चिनगारी से
सबने आग जलाया जा ।

शोषण की कारा श्रमिक वर्ग ही तोड सकता है और शोषित मानवता को मुक्त करा सकता है[2]। अपने इस मुक्ति संघर्ष में श्रमिक वर्ग को किसी की सहानुभूति नहीं, बल्कि सभी के सहयोग की ज़रूरत है । इस उद्यम में उन्हें कायरों का, दुर्बलों का सहयोग नहीं, निर्भीकों की तरफ्दारी अनुपेक्षणीय है । बालकृष्ण शर्मा नवीन की राय में -

भूखा देख तुझे गर उमडे आँसू नयनों में जन जन के
तो तू कह दे नहीं चाहिये हमको रोनेवाले जनके

---

1. हे जीर्ण बाहु / हे जीर्ण शरीर / तुझे बुलाता विप्लव वीर ।
अपरा - निराला, पृ. 13

2. दे तोड तिलस्मी शासन के शत चक्रव्यूह / दे जला खंडिरों के पीपल कर मुक्त / श्वान स्यारों के तन, चिमगादड तन में अब तक जो मानव बन्दी / तोड दे, द्वार शत रुद्ध किये जो खड़ी शिल्प सी अन्ध / शोषक की आवश्यकतायें, दे तोड तिलस्मी सत्तायें / हे महाश्रमिक -
मुक्तिबोध,

तेरी भूख, संस्कृति तेरी यदि न उभार सके क्रोधानल
तो फिर समझूँगा कि हो गयी सारी दुनिया कायार निर्बल।[1]

अत: शोषण के विरुद्ध संपूर्ण श्रमिक चेतना को जाग उठना चाहिये। श्रमिकों की मुक्ति का मार्ग मात्र उनके विद्रोह से खुला जायेगा। जितना अधिक वह संघर्षरत रहेगा, उतनी जल्दी बंधन की दीवारें टूट जायेगी।[2] जीवन की नयी ज्योति करोडों श्रमिकों की फौलादी ताकत की प्रतीक्षा में है। अत: शोषण का अंधकार हटकर समता का दीप जलाने के लिये रांगेय राघव गुलामों का उद्बोधन करते हुए कहते हैं -
ओ गुलामों / उठो, फिर से आ रही है ज्योति / फट रहा है अंधिरा
लो / जिस अंधेरों की कारा में / स्वप्न समता का रहे थे देख /
अपने हाथ में दीप धरकर।[3]

अब की सामाजिक व्यवस्था में मानव को मानव के सुख दु:खों की पर्वाह नहीं। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और व्यक्तिवाद पनप रहे हैं। आज की दुनियाँ इन शोषकों के नियंत्रण में है। वर्तमान जनजीवन को अपने काबू में रखनेवाली इन प्रतिगामी शक्तियों को परास्त करके स्वतंत्र वैषम्यहीन व्यवस्था कायम कराने का भारी उत्तरदायित्व श्रमिक वर्ग पर है। उनके द्वारा ही आज की स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन संभव होगा।[4]

---

1. हम विषपायी जनम के - बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ.493
2. मार हथौडा / कर कर चोट / लाल हुए काले लोहे को / जैसा चाहे वैसा मोड ×× थोडे नहीं अनेकों गढ ले / फौलादी नरसिंह करोड ×× लहू और पसीने से ही / बंधन की दीवारें तोड-केदारनाथ अग्रवाल
3. युग की गंगा के- रांगेय राघव
4. तुम बढो जिस तरह दावानल / कर दग्ध रूढि का अन्तराल / साम्राज्यवाद सामन्तवाद और व्यक्तिवाद / जो बांध रहे जीवन को, कर उन्हें नष्ट / तुम सामाजिक स्वतंत्र्य - साम्य को करो स्पष्ट -
   धरती - त्रिलोचन,

जो अपने श्रम से उत्पादन में सीधा और सक्रिय भाग लेता है वही उत्पादन का सही अधिकारी भी है । यही न्याय है । अपने श्रम से उत्पादित वस्तुओं पर एकमात्र श्रमिकों का अधिकार होना चाहिये । वे भूमि, अन्न, वस्त्र के ही नहीं शासन और संस्कृति के भी अधिकारी हैं । इस प्रकार वर्ग वैषम्यहीन सामाजिक व्यवस्था के लिये शोषित वर्ग का संघर्ष अनिवार्य है । क्रान्ति को प्रश्रय देकर कवि मुक्तिबोध कहते हैं -

> मेरे इस सांवले चेहरे पर, कीचड के धब्बे हैं दाग हैं
> और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है
> अग्नि विवेक की / नहीं नहीं वह वह तो है
> ज्वलन्त सरसिज ! / जिन्दगी के दल दल में धंसकर
> वक्ष तक पानी में फंसकर / मैं यह कमल तोड लाया हूं ।[1]

सदियों से शोषित जनता द्वारा अपने अधिकारों की यह पहचान एक आकस्मिक घटना नहीं । यह जागरण एक दिन अचानक मिटनेवाला भी नहीं । श्रमिकों के अनेक काल से दमित क्रान्तिकारिता का भयानक विस्फोट है संघर्ष । इसलिये यह आसानी से दबायी नहीं जा सकती । केरल की श्रमिक सरकार पर हमला करनेवालों को कवि चेतावनी देते हैं -

---

1. चांद का मुंह टेढा है - मुक्तिबोध

रोकेगी कब तक और हमें तासीर तुम्हारी देखेंगी
भूखे नंगी उठ बैठे है तकदीर तुम्हारी देखेंगी
केरल को मिटने से पहले खुद अपने मिटने की सोचो
जनता का दमामा बजता है, जागीर तुम्हारी देखेंगी ।

इस प्रकार श्रमिकों की संघर्ष चेतना किसी भी प्रतिलोम शक्ति के सामने घुटने व टेककर उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है । इसकी बढ़ाव के साथ साथ जीर्ण शीर्ण पुरातन मान्यताओं की दीवार टूट जायेगी और समाज में नवीनता का पदार्पण होगा । इस मुक्ति आकांक्षा को प्रज्वलित रखना सामाजिक प्रगति के लिये अत्यन्त जरूरी है । इस ओर संकेत करके पन्त ने कहा - गा कोकिल, बरसा पावक कण नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन / ध्वंस भ्रंश जग के जग बन्धन / पावक पग धर आये नूतन[1]।"

7· वर्गहीन समाज की परिकल्पना

वर्ग संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है, जो मार्क्सवाद का परम और चरम ध्येय है । इस वर्ग वैषम्यहीन समाज में वर्ण, वर्ग, अर्थ, जाति के नाम पर मानव मानव में कोई भेदभाव नहीं रहेगा । इनके नाम कोई किसी का शोषण भी नहीं करेगा ।
अत:

---

1 युगान्त - पन्त, पृ·12

मिलकर जन निर्माण करे जग
मिलकर भोग करे जीवन का
जन विमुक्त हो जन शोषण से
हो समाज अधिकारी धन का[1]।

ऐसी व्यवस्था में उत्पादन यंत्रों पर श्रमिकों का नियंत्रण होगा और उत्पादित वस्तुओं पर सभी का समान अधिकार भी रहेगा[2]। यहाँ संपन्न और विपन्न के भेद के बिना सब काम करेंगे, सब समान फल पायेंगे । उत्पादन का संपूर्ण नियंत्रण सरकार पर होगा यथा -

"सेठ और जमीन्दारों को नहीं मिलेगा एक छदाम
खेत, बाग, दूकान, मिलें, सरकार करेगी दखल तमाम
खेत - मज़दूरों और किसानों में जमीन बँट जायेगी
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडरायेगी[3]।"

वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था की कल्पना आधार हीन नहीं। क्योंकि निकट भविष्य में ही यह स्वप्न साकार होनेवाला है । युग युगों से किसानों और मज़दूरों के रक्त से सींची वाटिकायें जल्दी ही उजडनेवाली है । अतः इस स्वर्णिम प्रभात की भविष्यवाणी महेन्द्र भटनागर ने यों की -

तुम आज लिख लो / कि थोडे ही दिनों में / हजारों युगों की / पुरानी सडी / दासता की इमारत बडी / भूमि पर लोटती / भग्न बिखरी मिलेगी / अनेकों बरस से / गरीबों-किसानों / मज़दूरों व श्रमिकों के /: ताते रुधिर से / सनी वाटिका पूर्ण उजडी मिलेगी[4]।

---

1. ग्राम्या - पन्त, पृ.67
2. युगवाणी - पन्त, पृ.26
3. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.48
4. जिजीविषा - महेन्द्र भटनागर, पृ.47

इस प्रकार युग युग की जडता की समाप्ति करते हुए विषमता की श्रृंखलायें चूर चूर हो जायेगी और इससे समता की स्वर्ण रेखायें उग आयेगी । इस पुरानी जड शोषण संस्कृति के खण्डहर से नये युग की श्रमकर जनता की पदचाप सुनायी पड़ेगी[1] । ऐसी वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था की ओर हमें जल्दी ही जल्दी पहुँचाना है, जहाँ सब समानता और स्वातंत्र्य अनुभव कर सकें । निराला ने संपूर्ण दुनिया का ध्यान साम्यवादी समाज की ओर आकर्षित करके कहा -

जल्द जल्द पैर बढाओ आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला ।"[2]

इस प्रकार पन्त, निराला से लेकर सभी प्रगतिशील कवियों ने मेहनतकश वर्ग की जीवन समस्याओं को निकट से पहचानकर उनसे संवेदना प्रकट की । इन्होंने इस शोषित वर्ग को अपने अधिकारों से बोधवान बनाया और उन्हें जागृत करके संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर कराया । इन कवियों में नागार्जुन का उल्लेखनीय स्थान है । उन्होंने सर्वहारा वर्ग का पक्षधर रहकर अनेक बार अपनी जनवादिता की गवाही दी है । उनकी अधिकांश कवितायें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में श्रमिक वर्ग में जागरण उत्पन्न करानेवाली है ।

---

1. गत संस्कृति के मिटते दूहों पर / आश्वस्त सुनायी देगी फिर / गंगा की अविरल धारा सी / नवयुग की श्रमकर जनता की पदचाप नयी । रूपतरंग - रामविलास शर्मा, पृ.78
2. बेला - निराला, पृ.78

नागार्जुन के अब तक प्रकाशित कविता संग्रह बारह है जो निम्नलिखित है । युगधारा, तालाब की मछलियाँ, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आँखें, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पत्रहीन नग्न गाछ (मैथिली का रूपान्तर), पुरानी जूतियों का कोरस, रत्नगर्भा, ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने । इन में तालाब की मछलियाँ (1975) अनुपलब्ध है । फिर भी इस संग्रह की अधिकांश कवितायें अन्य संग्रहों में बिखरी पड़ी है । "युगधारा", "सतरंगे पंखोंवाली", "प्यासी पथराई आँखें" की विशिष्ट कवितायें इसमें आ गयी है । इन कविता संग्रहों के सिवा भस्मांकुर (खण्डकाव्य), गीत गोविन्द, विद्यापति के गीत (अनुवाद) आदि पद्यरचनायें भी उनके नाम से प्रकाशित है । नागार्जुन के संग्रहों में से चुनी हुई कुछ कविताओं को श्री. नामवर सिंह ने "प्रतिनिधि कवितायें" नाम पर प्रकाशित किये है जो उनकी उल्लेखनीय कविताओं का संकलन है ।

युगधारा

युगधारा नागार्जुन की कवि कलम का प्रथम हस्ताक्षर है । इसका प्रकाशन सन् 1953 में हुआ था । इसमें कुल मिलाकर 37 कवितायें है । इसमें एक ओर "शपथ", और तर्पण जैसी कवितायें है तो दूसरी ओर "प्रेत का बयान" जैसी व्यंग्य कवितायें है । "शपथ" और "तर्पण" में गांधीजी की हत्या से क्षुब्ध कवि की देशभक्ति और सजग राष्ट्रीयता का परिचय मिलता है । इस संग्रह की एकाध कवितायें कवि की निजी जिन्दगी पर संकेत देनेवाली है जैसे "रवि ठाकुर", "मित्र को पत्र" आदि । इसकी "जयति जयति बरसात", "बरफ पड़ी है" "तुम जागो, संसार जाये जाग" "बादल को घिरते देखा है", जैसी कवितायें प्रकृति वर्णन से भरपूर है तो

"जनवन्दना", "पक्षधर", "जनकवि", "अरुणोदय" आदि समाजवादी विचारों के प्रति कवि के आकर्षण का द्योतक है । "सन्त विनोबा", "स्वदेशी शासक", "बजट वार्तिक", "खाली नहीं और खाली", "भूस का पुतला" आदि में कवि देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का गंभीर और व्यंग्यात्मक विश्लेषण करते हैं ।

सतरंगे पंखोंवाली

सन् 1959 में प्रकाशित इस कविता संग्रह में 31 कवितायें है । यह कृति अपने पूर्ववर्ती संग्रह की अपेक्षा कला और शिल्प की दृष्टि से अधिक प्रौढ है । इस संग्रह की महान उपलब्धि प्रकृति सौंदर्य में सने प्रणय चित्र की सुन्दर अभिव्यक्ति है । "वसन्त की अगवानी", "नीम की दो टहनियाँ" आदि कवितायें प्रकृति के गंध से भरपूर है । कुछेक कविताओं में युगीन विषमता मूर्तित हुई है । "देखना ओ गंगा मैया", "खुरदरे पैर" आदि इस कोटि की कवितायें है जिनमें नागरिक और ग्रामीण जीवन की विषमतायें प्रत्यक्ष अभिव्यंजित हुई है । "यह कैसा होगा" और "तुम किशोर तुम तरुण" कवितायें कवि की विद्रोही चेतना के परिचायक है । "सिन्दूर तिलकित भाल" और "दन्तुरित मुस्कान" इस संग्रह की काफी लोकप्रिय कवितायें है ।

प्यासी पथराई आँखें

सन् 1959 में यात्री प्रकाशन, कलकत्ते से प्रकाशित यह संग्रह पुनः 1982 में अनामिका प्रकाशन द्वारा निकला । इसमें 38 कवितायें संग्रहीत है । युगीन विषमताओं और विसंगतियों पर चोट करनेवाले कवि

का रूप इसमें हम देख सकते है । प्रारंभ से ही शोषण, अन्याय और दमन के विद्रोही कवि इसमें आकर काफी आक्रामक बनता दिखायी पड़ता है । इसी कारण है कि इस संग्रह की अस्सी प्रतिशत कवितायें व्यंग्य की धार से पाठक मन में चोट पहुँचानेवाली है । अधिकांश कवितायें राजनीतिक व्यंग्य है । "आओ रानी हम ढोयेंगी पालकी", "भारती सिर पीटती है" "काली माई", "वे तुम को गोली मारेंगे" आदि कवितायें समकालीन राजनीतिक स्थिति पर गहरा व्यंग्य है । "लुमुम्बा" में नागार्जुन की विद्रोही चेतना साकार हो उठी है तो "प्यासी पथराई आँखें", "घिन तो नहीं आती है ?" "यह उन्मत्त प्रदर्शन" जैसी कविताओं में विषमतापूर्ण समाज में निम्न वर्ग से संवेदनशील कवि को हम देख सकते हैं । "शरद पूर्णिमा", "काली सप्तमी की चांद" "अब के इस मौसम में" आदि कविताओं में प्रकृति सौंदर्य छलकती रहती है । शहरी जीवन के दुःख दुरितों का अनावरण है - "आदम का तबेला", "विज्ञापन सुन्दरी" आदि कवितायें । "वे और तुम" इस संग्रह की एक बहुचर्चित कविता है ।

<u>खिचड़ी विप्लव देखा हमने</u>

सन् 1980 में प्रकाशित इस संग्रह में 56 कवितायें है । इसकी अधिकांश कवितायें भारत की राजनीतिक गतिविधियों का दस्तावेज़ है । आपातस्थिति और उसके बाद की भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के हर परिवर्तन का सूक्ष्म विश्लेषण व्यंग्यात्मक तौर पर इनमें हुआ है । "इन्दुजी क्या हुआ आप को", "जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की", "छज्जी छज्जी उड़ा दी छोकरों ने इमर्जेंसी की", "हुकूमत की नर्सरी", "जन्तावाले परेशान है", परेशान है कांग्रेज़ी", "इर्द गिर्द संजय के मेले जुड़ा करेंगे",

देवरस - दानवरस" "नुक्कट जिन्दाबाद" आदि राजनीतिक नेताओं और उनकी करतूतियों की गंभीर आलोचना है । इस संग्रह की "प्रतिबद्ध हूँ" कविता कवि की जनवादी प्रतिबद्धता को सूचित करनेवाली है । सामाजिक विषमता का सर्वांगीण वर्णन है "हरिजन-गाथा" नामक लंबी कविता । संपन्नों के अत्याचारों के शिकार गरीब, निम्नजातीय हरिजनों से कवि की संवेदना इस कविता में उमड पडी है ।

तुमने कहा था

यह संग्रह सन् 1980 में प्रकाशित हुआ । इसमें 52 कवितायें है । इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में नागार्जुन ने भारत की राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण किया है । कांग्रेसी मंत्रिमंडल को इन असंगतियों का दोषी ठहराते हुए वे अनेक राजनीतिक नेताओं की करतूतियों की व्यंग्यात्मक आलोचना करते हैं । "तुम रह जाते दस साल और", "शासन की बन्दूक", पा गये है", "प्रजातंत्र का होम", "देख लो, इनके कई कई माथ है ", "हो गये बारह महीने", वो अन्दर से त्रास करेंगे", "माई हियर ददुदू हमारे", "हुआ ! हुआ ! हुआ", "मगरों के आँसू बहाते है", "26 जनवरी, 15 अगस्त", "अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन" जैसी कवितायें उनके अचूक व्यंग्य बाण के कुछ नमूने मात्र है । लेनिन तुमको लाल सलाम", "मैं तुम्हें अपना चुंबन दूंगा" आदि कविताओं में क्रान्ति से सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा करनेवाले कवि को हम देख सकते हैं ।

हज़ार हज़ार बाहोंवाली

सन् 1981 में प्रकाशित "हज़ार हजार बाहोंवाली" सन् 1942 से 1980 के बीच लिखी 110 कविताओं का संग्रह है । कथ्य की दृष्टि से देखें तो इसकी अधिकांश कवितायें राजनीतिक है जो देश की तत्कालीन गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी है । "जन्म दिन शिशु राष्ट्र का" कविता में स्वतंत्र भारत की आज की स्थिति पर कवि चिन्तित होता दिखायी पड़ता है । इस संग्रह की अनेक कवितायें शासक कांग्रेसियों की जनविरोधी करतूतियों पर कवि के विद्वेष से फूट निकली है । सड़ी गली राजनीतिक स्थिति पर प्रहार करनेवाली "झंडा, "मैं हूं सबके साथ" "देखो सबने चिड़िया खाना" जैसी कविताओं के ज़रिये कवि यह व्यक्त करते है कि "भारतभूमि में प्रजातंत्र का अब बुरा हाल है ।" "लोगे मोल" कविता में गरीबों के शोषण और दमन पर कवि का दुःख वाणीबद्ध होता है । इस संग्रह की "बताऊँ" "अनुदान", "नेहरू" आदि कवितायें प्रधानमंत्री जवाहरलाल की नीतियों की कटु आलोचना है । "प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है" इस संग्रह की उल्लेखनीय कविता है । इसी संग्रह की "महाकवि निराला", "दधीचि निराला" "भारतीय जनकवि का प्रणाम" जैसी कवितायें निराला और गोर्की पर नागार्जुन की श्रद्धांजलि है । "देवदारु", "करवटें लेंगे बूढों के सपने" "पीपल के पीले पत्ते", "हजार हजार बाहोंवाली शिशिर" आदि प्रकृति प्रेमी कवि का परिचय देनेवाली है ।

पत्रहीन नग्न गाछ

मैथिली कविताओं का यह संग्रह सन् 1981 में हिन्दी में प्रकाशित हुआ । यह नागार्जुन की 52 कविताओं का आकलन है । मूल

मैथिली कविताओं का हिन्दी रूपान्तर सोमदेव ने किया है । इस रचना के लिये नागार्जुन 1968 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुए । इस संग्रह की अनेक कवितायें प्रकृति से अभिन्न संबन्ध रखनेवाली है । इसकी मुख्य प्रवृत्ति भी कवि का प्रकृति प्रेम है । साथ ही मानव जीवन की परिस्थितियों की ओर कवि संकेत करते हैं । प्रकृति के विभिन्न रूपों और भावों को ऋतुभेद के द्वारा कवि प्रस्तुत करते हैं । "माघ", "आधा फागुन बीता", "चैत", "आषाढ", "सावन", "थोडा-थोडा मध्यान्तर देकर", "अन्त श्रावण का यह मेघ", पत्रहीन नग्न गाछ" आदि कविताओंमें प्राकृतिक सुन्दरता के साथ नागार्जुन परिवर्तित ऋतुओं का मनुष्य जीवन पर प्रभाव का भी वर्णन करते हैं । इन सभी प्रकृति कविताओं में शैलीगत नूतनता दिखायी पडती है । "पसीने का गुण धर्म" श्रमरत मनुष्य पर कवि की आस्था घोषित करनेवाली है । "अरी बबुनी", "प्लास्टिक की लता", "टीटरकी आंच" जैसी कवितायें आधुनिक ज़िन्दगी पर किये गये व्यंग्य है । "कंकाल ही कंकाल" वर्तमान भारत की स्थिति का सजीव चित्र है तो "आश्चर्य में पडा हूं" कविता सरकारी शोषण रीतियों पर किये व्यंग्यबाण है ।

पुरानी जूतियों का कोरस

72 कविताओं का यह संकलन सन् 1983 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह की मुख्य प्रवृत्ति आज की राजनीतिक गतिविधियों का यथार्थ चित्रण है । अधिकांश कविताओं में स्वतंत्र भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का परिचय है । "अन्त पचीसी" इस संग्रह की सबसे

उल्लेखनीय कविता है जो वर्तमान भारत की राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का सांगोपांग वर्णन है । इसके अलावा "स्वतंत्र चिन्तन कांग्रेजी आला कमान का", "जी अकाल सहाय" आदि राजनीतिक क्षेत्र में चालू शोषण और विसंगतियों के परिचायक है । नागार्जुन ने समय समय के राजनीतिक नेताओं को अपने व्यंग्य बाण से चोट पहुँचाया है । जवहरलाल नेहरू की अनेक नीतियों के प्रति कवि के विरोध ने "पण्डितजी जानेवाले हैं रानी के दरबार में" कविता में व्यंग्यात्मक रूप धारण किया है तो "आखिर इन्सान है भाई मोरारजी", "दान दो दान दो", "मोर न होगा, उल्लू होंगे", "चलो चलो धरना दे चलकर, "भला और क्या चाहिए", "उम्मीदवार" जैसी कवितायें तत्कालीन राजनीतिक नेताओं पर कटु व्यंग्य करती है । इन राजनीतिक नेताओं में से नागार्जुन की तूलिका इन्दिरा गांधी को अधिक सताती दिखायी पड़ती है । इस संग्रह में इन्दिरा गांधी के शासन और उनकी नीति पर कवि की सख्त घृणा प्रकट करनेवाली अनेक कवितायें है। इसी संग्रह की "सिंधुनद" कविता भारत की प्राचीन इतिहास और संस्कृति पर कवि की आस्था और श्रद्धा व्यक्त करती है ।

रत्नगर्भ

यह सन् 1984 में प्रकाशित हुआ । इस संग्रह में आठ लंबी कवितायें संग्रहीत है - "महाभिनिष्क्रमण से पूर्व", "चन्दना", "युद्ध का अन्त", "कपिलवस्तु में", "भिक्षुणी", "राम और लक्ष्मण", "पाषाणी" और "रत्नगर्भ" । इन कविताओं में बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रति कवि का आकर्षण स्पष्ट झलकता है । "महाभिनिष्क्रमण से पूर्व", "चंदना" और "युद्ध का अन्त" जैन धर्म और दर्शनों के प्रति नागार्जुन के परम श्रद्धा का परिचायक है तो "कपिलवस्तु में",, "भिक्षुणी" और "रत्नगर्भ" भगवान

बुद्ध से संबन्धित कवितायें है । "पाषाणी" और "राम और लक्ष्मण" रामायण के दो प्रसंगों पर आधारित है । यही नहीं इन कविताओं के अनेक भागों में कवि मन का दार्शनिक भाव उभरकर आया है ।

ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या

सन् 1985 में प्रकाशित इस संग्रह के अठावन पृष्ठों में नागार्जुन की पैंतीस कवितायें संकलित है । वैविध्यपूर्ण विषयों पर अनेक छोटी छोटी कवितायें इसमें संग्रहीत है जो अपने बौने कलेवर में गंभीर समस्याओं का वहन करती है । "वो हमें चेतावनी देने आये थे", "लेनिन की समाधि पर", "रचो रचो मधुरगीतम्", "वहाँ नहीं हो आये है", "पुष्पदन्तजी", "आग ही आग तो हो", "उसने मुझसे पूछा" - आदि कवितायें हृदय का ही नहीं बुद्धि का भी स्पर्श करती है । "तीन सिरोंवाला बेताल" ही इस संग्रह की एकमात्र लंबी कविता है जो वर्तमान भारत की राजनीतिक स्थितियों का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करता है । कवि इस कविता में कोटि कोटि अन्नहीन, वस्त्रहीन भारतीयों की वोट पर विराजमान जननेताओं की खाल उधेड देते हैं । यही नहीं इसके "शबाश महान अभिनेत्री" भी राजनीतिक व्यंग्य है । "मेरी नवजात सखी" में कवि मन का संपूर्ण वात्सल्य उमड पडता है । "उषा की लाली", "शिखर की निशा", पर्वत बालयें गयी धूप !" जैसी कवितायें प्रकृति प्रेमी कवि का परिचय देती है ।

आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने

सन् 1986 में प्रकाशित यह संग्रह उनके अब तक प्रकाशित संकलनों में नव्यतम है। उनके 75 वीं वर्षगांठ में प्रकाशित इस संग्रह में तैंतीस कवितायें हैं। इसकी अधिकांश कवितायें 1981 और 1985 के बीच लिखी हैं। इसमें पर्वतीय ग्रामांचल ज़हरीखाल की प्रकृति और परिवेश पर लिखी कवितायें हैं। "यह तो वो नहीं है", "डियर तोताराम", "फहरोवाली बारिश", "कोहरे में शायद न भी देखेंगे", "सब कुछ कोहरे में", "शिखरों पर", "रातों रात भिगो गये बादल", "इनकी लीला", "रास बादलियों का", चांदी की हंसुली" आदि कवितायें इस प्रदेश के वातावरण से उपजी हैं। "शान्ति मैत्री" कविता वर्तमान भारत में होनेवाले शोषण और अत्याचारों का चित्रण है, तो "संग तुम्हारे, साथ तुम्हारे", "मैं ने देखा", "हमारा यह प्रतिनिधि", मैला आंचल", "आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने" जैसी कवितायें धरती और श्रम पर कवि की अडिग आस्था को परिचायक हैं।

भस्मांकुर

सन् 1971 में प्रकाशित भस्मांकुर नागार्जुन का खण्डकाव्य है। यह पुराण प्रसिद्ध कथा पर आधारित है। रचना की पृष्ठभूमि में नागार्जुन ने मूल कथा का संक्षिप्त परिचय दिया है जिससे स्पष्ट होता है कि इसके विषय का प्रेरणास्रोत कालिदास का "कुमारसंभव" है। महाबली तारकासुर जब देवताओं को सताने लगा तो देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना करने गये। ब्रह्मा ने बताया कि यदि शिवजी हिमालय की पुत्री पार्वती से

विवाह कर ले तो उनसे उत्पन्न पुत्र इस राक्षस का संहार कर सकेगा । लेकिन तपस्या में लीन शिवजी का ध्यान पार्वती की ओर आकृष्ट करना आसान नहीं था । इन्हें परस्पर आकर्षित कराने का भार कामदेव को सौंपा गया । इस काम में रति और वसन्त भी कामदेव की सहायता केलिये आये । इस प्रकार कैलाश पर्वत पर असमय वसन्त का आगमन होता है । अपने मन में शिव मिलन का सपना देखनेवाली पार्वती ध्यान मग्न शिव की परिचर्या के लिये आती है । शिव के मन में पार्वती के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है । अपने इस आकर्षण और उससे उद्भूत ध्यान भंग में क्रुद्ध शिवजी इसका कारण जानने के लिये चारों ओर देखते हैं तो लताकुंज की ओट में मदन दिखायी पड़ता है । रुद्र के कोपानल के सामने मदन भस्म हो जाता है । अपने पति के अन्त में विह्वल रति प्राणत्याग करना चाहती है । लेकिन आकाशवाणी से आश्वस्त होकर फिर प्रसन्न हो जाती है । इस पौराणिक कथातन्तु को नागार्जुन ने अपनी मौलिक भावना से सजाया है । परंपरागत शिव पार्वती संबंध पर नागार्जुन ने युग बोध की सार्थकता अभिव्यक्त की है । इसमें वसन्तागमन का वर्णन नागार्जुन के प्रकृति वर्णन में अनूठा स्थान रखता है ।

इस प्रकार नागार्जुन के प्रारंभिक संग्रहों में प्रकृतिपरक कविताओं का आधिक्य है तो परवर्ती कविताओं का मुख्य स्वर राजनीतिक व्यंग्य का है । लेकिन अपनी सारी की सारी कविताओं में समाज के प्रति खासकर शोषित श्रमिक समाज - के प्रति वे अपना दायित्व निभाते आये है । आज राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और पाखण्डी वृत्ति को निर्भीकता से उन्होने प्रस्तुत किया है ।

इस देश के करोडों दरिद्र आदमियों के दुःख को पहचानकर, उनके जीवन दुरितों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करके उन्होंने अपने को उनमें से एक माना और ऐसी निरीह जनता के शोषण में श्रम इकट्ठा करके सभी मूल्यों को नियंत्रित रखनेवाले संपन्नों मे सख्त घृणा प्रकट किया । हमारे देश की दुर्दशा है कि जननेता इन मुट्ठी भर संपन्नों के हाथ में है । यह नागार्जुन सह नहीं सके । आज के राजनीतिक शोषण के विरुद्ध उन्होंने तलवार उठायी और यह विद्रोह उनके अधिकांश संग्रहों की मुख्य प्रवृत्ति रही ।

ձձձձձձձձձձձձձ

छठा अध्याय

नागार्जुन की कविताओं में वर्ग - संघर्ष

छठा अध्याय

नागार्जुन की कविताओं में वर्ग - संघर्ष

नागार्जुन का हिन्दी साहित्य में आगमन इस सदी के चौथे दशक में हुआ था । आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण यह समय भारत की अस्वतंत्रता का समय था । अंग्रेज़ी साम्राज्य-वादका शोषण एक ओर था तो सामन्तवाद तथा पूंजीवाद द्वारा गरीब कृषकों और मज़दूरों का रक्त चूसना दूसरी ओर । शोषण और दमन की इस परिस्थिति में देश के कोने कोने में शोषण से मुक्ति का संघर्ष भी फूटने लगा था । ऐसी स्थिति में साहित्यकार तटस्थ या निष्क्रिय दर्शक के तौर पर दूर खड़ा नहीं पाता था । नागार्जुनने भी इन युगीन गतिविधियों से निकट संबंध स्थापित किया । उनका यह संबंध साम्राज्य-वादी, सामन्तवादी, पूंजीवादी शोषण में पिसती जनता से पक्षधरता व्यक्त करनेवाला था । नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व इन परिस्थितियों से गहरा जुड़ा है ।

सर्वहारा वर्ग के प्रति नागार्जुन की पक्षधरता अपनी निजी अनुभूतियों का परिणत फल है । उन्होंने जो देखा, जो अनुभव किया, उसी को काव्यबद्ध किया । अभाव में जनमकर, अभाव में पलकर, जीवन का अच्छा खासा भाग अभाव में ही बिताकर वे अपने जैसे दरिद्रों का हृदय आसानी से छू सके । थोड़ी प्रारंभिक कविताओं को छोड़कर नागार्जुन की नब्बे प्रतिशत कवितायें समाज के दो वर्गों को प्रस्तुत करनेवाली है - शोषित और शोषक वर्ग । ज़मीन्दारी शोषण में दबनेवाले किसान, पूंजीपति के दमन से परेशान मज़दूर ही नहीं वर्तमान राजनीतिक स्थिति में भ्रष्टाचारी सत्ताधीशों के अत्याचार में पीड़ित आम जनता भी इस शोषित वर्ग के अन्तर्गत आती है । लेकिन नागार्जुन की कविताओं में यह तीसरा वर्ग ही अधिक प्रमुख दिखायी पड़ता है । उन्होंने स्वतंत्र भारत के शोषित गरीब नागरिकों की पीडा अधिक मात्रा में अभिव्यक्त की । इन सारी की सारी कविताओं में शोषण से कवि का विद्वेष और शोषित निरीह जनता से सहानुभूति स्पष्ट झलकती है । इनमें कहीं भी शोषित और शोषक वर्ग का संघर्ष सीधा अभिव्यक्त नहीं हुआ है । उपन्यास के समान कविता में दो वर्गों का सक्रिय संघर्ष दिखायी नहीं देता । कविताओं में शोषित और शोषक वर्गों को प्रस्तुत करके शोषितों से सहानुभूति रखनेवाला कवि उनके साथ खड़ा रहता है और मेधावी वर्ग के ज़ुल्मों के विरुद्ध उन्हें संघर्ष के मार्ग पर अग्रसर कराता है । अपनी कविताओं के ज़रिये वे जनता में जागरण पैदा करते है और क्रान्ति की आकांक्षा व्यंजित करते हैं । इस प्रकार उनकी कविताओं में वर्ग-संघर्ष का आह्वान मात्र गूंजता है । वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर उदासीन कवि शोषण के विरुद्ध शोषित वर्ग से संवेदना स्थापित करते हुए उन्हें संघर्ष की प्रेरणा देते हैं । इस दृष्टि से देखें तो नागार्जुन की कवितायें वर्ग संघर्ष के निम्न लिखित आयामों से होकर गुज़रती हैं -

1. वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का विरोध
2. शोषण पर विरोध
3. शोषित वर्ग से संवेदना
4. जन जागरण की अभिव्यक्ति
5. वर्ग संघर्ष का आह्वान
6. साम्यवादी समाज की आकांक्षा ।

1. वैषम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का विरोध

नागार्जुन का काव्य संसार अनेक सामाजिक परिवर्तनों का साक्षी है । ढांचे के हर बदलाव के अनुसार शोषित और शोषक वर्ग भी परिवर्तित होते है । सामन्तवादी समाज में ज़मीन्दार और किसान के तौर पर वर्ग विरोध होता है तो पूंजीवाद में पूंजीपति और मज़दूर के तौर पर । भारत की आज की अवस्था में गरीब शोषित जनता का वर्ग शत्रु राजनीतिक नेता है । वर्तमान भारत में सर्वाधिक शोषण राजनीति के क्षेत्र में होता है और इसमें शोषित वर्ग यहाँ के गरीब है । नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक भ्रष्टाचारों से पीड़ित आम जनता की परेशानी काफी मात्रा में अभिव्यक्त हुई है ।

अपने जीवन की प्रारंभिक अवस्था में ही नागार्जुन सामाजिक अन्तर्विरोध से बखूबी परिचित थे[1] । साहित्यकार बनने का कारण भी कवि गरीबी को ही मानते हैं - उन्होंने स्वीकारा मेरे पास भी यदि / बाप दादों की उपार्जित भूमि होती / धन होता बखारों में / आम कटहल लीचियों के बाग होते / पोखरा होता मछलियाँ भरा /

---

1. हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद मालूम
   हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार
   सुविधा प्राप्त लोगों ने सदा ही समझा भू भार ।
   युगधारा - नागार्जुन, पृ.30

इसी से तो भाग आता इधर ही, हे मित्र बारंबार / कलम घिसकर कमा लेता रोज पैसे चार ।[1]"

नागार्जुन वर्ण, वर्ग और अर्थ के आधार पर मानव मानव के विभाजन का विरोधी है । उन्होंने देखा कि श्रेणीबद्ध समाज की सबसे दारुण समस्या भूख है । समाज का भूखा आदमी धन के असमानतापूर्ण केन्द्रीकरण की उपज है । इसलिये जहाँ एक ओर मनुष्य आम की गुठलियाँ चूर चूर कर खाता है वहाँ दूसरी ओर बाबू लोग घी के चहबच्चों में, अमरित की हौदी में नहा लेते हैं ।[2] भूख का अतिदारुण चित्र व्यंग्यात्मक तौर पर "प्रेत का बयान" कविता में उपस्थित है । तीस रुपये मासिक वेतन मिलनेवाले मास्टर के पत्नी बच्चेवाले परिवार को भूख ने अपहरण किया । कटमी की पत्तियाँ खाकर मास्टर की भी मृत्यु हुई तो वह यमराज के पास पहुँचता है । मृत्यु देवता के पूछने पर मास्टर का उत्तर वर्तमान भारत की सामाजिक स्थिति का अच्छा खासा परिचायक है । अपनी मृत्यु के बारे में वह कहता है -

तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं दुविधा नहीं
सरलता पूर्वक निकले थे प्राण
सह नहीं सकी आन्त पेचिश का हमला ।[3]

---

1. युगधारा - नागार्जुन, पृ.65
2. नागार्जुन, पृ. 65- युगधारा
3. नागार्जुन प्रतिनिधि कवितायें - संपादक नामवर सिंह, पृ.91

इस प्रकार भूख से सैकडों व्यक्ति रोज मरते हैं।[1] लेकिन यह भुखमरी यहाँ बीमारी की ओट में छिपाकर रखी जाती है।

आज की व्यवस्था में संपन्न और विपन्न के बीच की खाई उत्तरोत्तर बढती रहती है। एक ओर रेशम की चकाचौंध है तो दूसरी ओर शरीर ढकने के आवश्यक कपडों के अभाव में गरीब बाहर नहीं निकल पाता।[2] एक ओर संपन्न विलासपूर्ण जीवन बिताते है तो दूसरी जगह कंकालशेष अभावग्रस्त मनुष्य अन्न के लिये तरसते है। "नाहक ही डर गयी हुजूर" कविता में विरोध की भयानकता थोडी पंक्तियों में सीधा प्रस्तुत किया गया है। एस॰डी॰ओ॰ की गुडिया बीबी सपने में भुक्खड के हाथ बन्दूक देखकर घिघियाती है तो नौकर उसे समझाता है "नाहक ही डर गयी हुजूर ! / यह अकालवाला थाना पडता है काफी दूर।"[3]

नागार्जुन ने निभ्रांति दृष्टि से देखा कि वर्तमान भारत में संपन्न और गरीब के बढते फासले का प्रमुख कारण राजनीति का संपन्नों के साथ गठबंधन है। देश के ज़मीन्दारों और पूंजीपतियों के हितसंरक्षक नेता ही वास्तव में गरीबों को भुखमरी की स्थिति तक पहुंचाते हैं। राजाओं को अभयदान देकर जनसाधारण को ठगनेवाले शासक और जनता का सत्य आज भिन्न भिन्न है। स्वतंत्र भारत के प्रथम शासक कांग्रेजियों को नागार्जुन असमानता का पूरा उत्तरदायी मानते हैं। कांग्रेज़ी "महिमा" का बखान करके कवि कहते हैं -

---

1. मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
   लिखवा लेगा घरवालों से - वह तो था बीमार
   अगर भूख की बातों से तुम न कर सके इन्कार
   फिर तो खायेंगे घरवाले हाकिम की फटकार।
   हजार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ॰132
2. तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ॰57
3. हज़ार जहार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ॰133

"पेट पेट में आग लगी है, घर घर में है फाका
यह भी भारी चमत्कार है काँग्रेज़ी महिमा का
सूखी आन्तों की ऐंठन का हमने सुना धमाका
यह भी भारी चमत्कार है काँग्रेज़ी महिमा का ।[1]

भूख मिटाने के लिये मनुष्य अधम से अधम काम करने में तैयार रहता है । आज गरीब भारतीय की स्थिति यही है । अन्न वस्त्र के लिये तरसनेवाला भारतीय पूछ उठता है -

"यहाँ नहीं लज्जा का योग
भीख मांगने का है रोग
पेट बेचते हैं हम लोग
लोगे मोल ?
लोगे मोल ?[2]

यह प्रश्न निश्चय ही जी कचोटनेवाला है । निरीह निःसहाय भारतीय की इस पतित अवस्था का संपूर्ण उत्तरदायित्व आज की सड़ी गली राजनीति को है । महंगाई को पालनेवाले शासक क्षुधार्त जनता के सामने रेशम के कपडों में विचरण करते है । यह देखकर भारत के प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी पर सख्त घृणा से नागार्जुन कहते हैं -

"अधभूखे - अधनंगे डोलें हरिजन-गिरिजन वन में
खुद तो चिकनी रेशम डाटे उडती फिरो गगन में

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.131
2. वही, पृ.144

महंगाई की सूपनखा को कैसे पाल रही हो
शासन का गोबर जनता के मत्थ डाल रही हो ।"[1]

अस्सी प्रतिशत निरन्न, निर्वस्त्र भारतीयों में मुट्ठी भर लोगों के चेहरे पर ही लालिमा है । शासन की इस विचित्र रीति से नागार्जुन यह समझ पाये कि सामाजिक विषमता का प्रमुख कारण कुछ इने गिने व्यक्तियों के स्वार्थ, धनलिप्सा और अधिकार मोह है । अत: उन्होंने मनुष्य मनुष्य के आपसी संबंध में बाधक नृशंस, अमानवीय शोषण जहाँ भी देखा, चटपट उसका विरोध किया ।

2. शोषण पर विरोध

सामाजिक विषमता समय समय के मेधावी वर्ग के शोषण से उद्भूत होती है । प्रत्येक युग में शोषण का बागडोर संपन्न वर्ग के हाथों में होता है जो अपने धन की ताकत में समाज का नियंत्रण अपने ऊपर ले लेता है । इन शोषकों में साम्राज्यवादी है, सामन्त पूंजीपति है । समकालीन परिवेश में शोषक की भूमिका राजनीतिक नेताओं का है । नागार्जुन की कविताओं में शोषण के विभिन्न आयामों का समग्र चित्रण हुआ है । लेकिन इनमें सामन्तवादी और पूंजीवादी शोषण का ज़िक्र नाममात्र ही दिखाई पडता है । इस उद्यम में समकालीन कोई भी शासक उनकी दृष्टि से बच नहीं पाये । शोषक वर्ग के जुल्म और अत्याचारों का नागार्जुन ने सीधी अभिव्यक्ति नहीं की । इसके लिये उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया । अपने चुटकीले व्यंग्य से उन्होंने प्रत्येक समय की, हर बदलते शासन की नीतियों पर कठोर प्रहार किया । नेहरू से लेकर इन्दिरा गांधी तक के कांग्रेसी शासक और

---

1. तुम ने कहा था - नागार्जुन, पृ.52

जनता पार्टी के नेता भी उनके नफरत की आग से जल गये । आम तौर पर नागार्जुन की कविताओं में शोषण के प्रति विरोध के ये रूप दिखायी पडते हैं -

क. साम्राज्यवादी शोषण पर विरोध
ख. सामन्ती तथा पूंजीवादी शोषण पर विरोध तथा
ग. राजनीतिक शोषण पर विरोध ।

क. साम्राज्यवादी शोषण पर विरोध

अनादि काल से साम्राज्यवादी और विकसित देश के नायक अविकसित राज्यों से व्यापारिक संबंध स्थापित करके धीरे धीरे उसे अपने उपनिवेश बनाते आये है । विकास की सीढियों पर खडे इन राज्यों पर आर्थिक, राजनीतिक अधिकार जमाने के बाद उनकी प्रगति के ध्वंस के लिये साज़िश रचना अमेरिका जैसे साम्र ाज्य शक्तियों की नीति बन गयी है । इन साम्राज्यवादियों के शोषण और दमन में दुनियां के अनेक देशों में आम जनता युग युग से पिसती रहती है ।

अपने स्वार्थ के लिये अमेरिका जैसे विकसित देश दुनिया के अमुक राज्य के शासकों को सहायता देकर जन उभार का निष्ठुर दमन करते है । वियतनाम का नरसंहार अमेरिका के इस स्वार्थ के कारण संपन्न हुआ था । स्वातंत्र्य और समानता के लिये लडनेवाले वियतनामी युवकों पर अमेरिका का निर्दय आक्रमण दुनियां के अनेक राज्यों की कटु आलोचना का विषय बना । "लिबर्टी पूजक" अमेरिका के इस अमानवीय

व्यवहार पर नागार्जुन ने उसकी निन्दा की ।[1]" लेकिन अचरज की बात थी कि वियतनामी युवकों के सामने दुनिया के शासक अमेरिका को घुटना टेकना पडा । वियतनामियों ने प्रशान्त सागर को अमेरिका के लिये पानी का चुल्लू नहीं बनने दिया । सन् 1958 में लिखी "डालर रोया बिलख बिलख कर" कविता में नागार्जुन ने अमेरिका की पराजय पर संतुष्ट होकर कहा -

"हथियारों के उन बनियों की खाज जगाकर
डालर रोया बिलख बिलखकर
जाने कैसे रेट गिर गया
सौ सेठों का सेठ पिघर गया[2] ।"

स्वातंत्र्य के लिये आवाज़ उठानेवाली जनता साम्राज्यवादियों के सामने गंभीर चुनौती है । अपनी इच्छापूर्ति के लिये बाधक सभी प्रतिगामी शक्तियों को चौपट करने में ये कभी नहीं हिचकते । काले वर्ग की स्वतंत्रता के लिये आवाज़ उठानेवाले शान्ति प्रिय नेता मार्टिन लूथर किंग की हत्या[3] और आफ्रीकी जनता की मुक्ति के लिये गोरे शासकों से लडनेवाले जोमो केन्याता पर साम्राज्यवादियों का नृशंस अत्याचार[4] देखकर नागार्जुन चुप नहीं रह पाते ।

1· देवी लिबर्टी की लानत है सौ बार - हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·154

2· वही, पृ·158

3· वही, पृ·157

4· वही, पृ· 61

साम्राज्यवाद विकासशील राज्यों के साथ सौदे से प्राप्त धन शस्त्रों की होड में खर्च करके विश्व शान्ति के लिये खतरे के रूप में उत्तरोत्तर बढ़ता है । एशिया, आफ्रीका, लतीनी अमेरिका को अपनी तोपों का चारा बनाने के सपने देखनेवाले अमेरिकी शासक आइजनहावर को "अमेरिकी धन्नसेठों का चोबदार" कहकर नागार्जुन उस पर काली सौत निछावर करते हैं[1] । विकासशील राज्यों की प्रगति में बाधक साम्राज्यवादियों का तात्पर्य कभी भी उस राज्य के विकास से संबंधित नहीं । ब्रिटेन, अमेरिका जैसे साम्राज्य शक्तियों का उद्देश्य भारत जैसे देशों के उद्योग धंधों की उन्नति ज़रा भी नहीं । अपने संरक्षण में पलनेवाले इन देशों पर वे हमेशा अपना दबाव रखते हैं । ब्रिटीश साम्राज्यवादियों ने अनेक काल तक भारत को अपने शोषण का दुर्ग बनाकर रखा । लेकिन स्वतंत्र होने पर भी भारत माता अंग्रेज़ी शोषण की पकड से मुक्त नहीं बनी । अपनी पूंजी के संरक्षण के लिये यहाँ के धनिक को विदेशी साम्राज्यवादियों की छाँह की ज़रूरत थी । अत: स्वतंत्र भारत के शासक कांग्रेज़ियों और पूंजीपतियों ने मिलकर इस देश को विदेशियों के हाथ गिरवी रखा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत में ब्रिटेन की सलव्या ही बडी हुई । सन् 1950 में नागार्जुन ने "आओ" रानी हम ढायेंगे पालकी" कविता लिखी जिसमें ब्रिटीश साम्राज्यवाद का भार ढोनेवाली भारतीय राजनीति का व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण उन्होंने किया । इसके द्वारा उन्होंने यह आरोप लगाया कि स्वतंत्र भारत का प्रधान मंत्री ब्रिटेन की खुशामदी के लिये खडा है । साम्राज्यवाद की पालकी का भार करोडों गरीब भारतीय पर रखते हुए नेहरू को चित्रित करके कवि ने परोक्ष रूप में साबित किया कि स्वतंत्र भारत अब भी ब्रिटेन का संरक्षण चाहती है[2] । देशी शासक और

---

1. हज़ार जहार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.60
2. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ.57

विदेशी साम्राज्यवादियों के बीच का समझौता भारतीय के आत्माभिमान पर ठेस पहुँचाता है । भूखे भारतीय को अन्न, गेहूँ का प्रलोभन देकर अब भी साम्राज्यवादी शक्तियाँ उन्हें लूट रही है । अतः साम्राज्यवादी शोषण व भारतीय की आश्रयशीलता पर संकेत करके कवि ने लिखा -

"प्रभु कर दो वमन
होगा मेरी क्षुधा का शमन[1] ।"

साम्राज्यवाद के मुकाबले में भारत का पूँजीवाद अपना सौदा कभी पाट नहीं पाता । सन् 1977 में अमेरिकी शासक जिम्मी कार्टर के भारत आगमन पर कवि ने लिखा -

तुम आका हो
तुम मालिक हो
दुनिया भर के महाजनों का
हम तो भारी बुद्ध निकले
अपना सौदा पटा न पाये ।

अतः अमेरिका का स्वार्थ, सौदागिरी और युद्धमोह को ध्यान में रखकर सारे भारतीय के लिये नागार्जुन ने कहा -

"जाओ भस्मासुरी नृत्य का कहीं और करो रिहर्सल[2] ।"

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·146

2· खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ·116

भारत में नेहरू से लेकर के सभी शासक साम्राज्यवादी शक्तियों के आशीष के कांक्षी रहे हैं। "पण्डितजी जानेवाले हैं रानी के दरबार में" कविता में नागार्जुन ने नेहरू की इस नीति पर व्यंग्य करके कहा -

कामनवेल्थी दुनिया क्या है बूचड़ का बाजार है
प्रजातंत्र पर्दा है पर खूनी कारोबार है
चर्चिल ईडन - अटली बीवन पूरा गुट खूंखार है
पग पग पर आज़ाद हिन्द भी उनका बरखुदार है।[1]

"महाप्रभु जान्सन"[2], "भारतेन्दु"[3], "चले चले धरना दें चलकर"[4] जैसी कविताओं में भारत में साम्राज्यवादी शोषण पर अपना विरोध नागार्जुन ने दोहराया।

विदेशी साम्राज्यवाद से भारतीय राजनीति का गठबंधन यहाँ की आम जनता के निर्दय दमन का कारण बन जाता है। यह आश्रयशीलता जितनी बढ़ेगी सत्ताधारियों का विदेशी संबंध जितना दृढ़तर हो जायेगा, गरीब जनता पर शोषण का निर्मम दबाव भी उतना ही भयानक हो जायेगा। पी•एल•480 की सहायता, विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सहायता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। "बजट वार्तिक" कविता में नागार्जुन ने इस दुहरे जनशोषण पर व्यंग्यात्मक तौर पर कहा -

---

1• पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ•42-43
2• तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ•39
3• पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ•13
4• वही, पृ•60

गंगा यमुना के कछार में
आ आकर अंडे देंगी अब
दुनिया भर की जोंकें
रामराज्य की सरल प्रजा का तरल रक्त
कितना सस्ता है[1]।

धन वैभव की वृद्धि के लिये दुनिया के शान्ति प्रिय जनता को युद्ध में, बेचैनी में धकेलनेवाले साम्राज्यवादियों के विरुद्ध नागार्जुन तूलिका चलाते आये है। युद्धमोहि खूंखार साम्राज्यवादी शक्तियों के युद्धोन्माद के सामने वे हमेशा शान्ति के कांक्षी रहते है। पूरी आज़ादी का संकल्प दुहराते हुए कवि जनकल्याण और विश्व शान्ति कायम रखने का दृढ संकल्प लेते हैं -

नहीं जंग बाजों की साज़िश में हम हाथ बंटायेंगे
अमन - चैन कायम रखने की खातिर मर मिट जायेंगे[2]।"

साम्राज्यवाद के समान अपनी स्वार्थ लिप्सा में पलनेवाली शोषक शक्तियाँ है - सामन्तवाद और पूंजीवाद। मानव प्रगति के महाशत्रु सामन्ती तथा पूंजीवादी शोषण का भयानक असर व्यक्त करते हुए नागार्जुन ने इनके निर्मूल नाश पर ज़ोर दिया।

---

1. युगधारा-नागार्जुन, पृ. 100
2. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ. 51

ख• सामन्तवादी तथा पूंजीवादी शोषण पर विरोध

वर्ग विभक्त सामाजिक व्यवस्था का प्राचीन रूप है सामन्तवाद जिसमें भूस्वामी सामन्तों द्वारा भूमि पर काम करनेवाले गरीब कृषकों तथा खेत मज़दूरों का शोषण होता है । यह सामन्ती व्यवस्था भारत में अति प्राचीन काल मे प्रचलित थी । सामन्त भूस्वामी थे । उनके खेतों में काम करनेवाले खेत मज़दूर उस खेती से बंधित रहते थे । ये पुश्त-दर-पुश्त सामन्तों के लिये अन्न उपजाकर दयनीय जीवन बिताते थे । मालिकों के काम करने के लिये ही ये जन्म लेते हैं । "हरिजन गाथा" कविता में नागार्जुन ऐसे बंधुआ खेत मजदूर को प्रस्तुत करते है जो इस वर्ग की दयनीयता का परिचायक है -

पैदा हुआ है बेचारा
भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के घर में
जीवन गुजारेगा हैवान की तरह
भटकेगा जहाँ तहाँ वनमानुष जैसा
अधपेट रहेगा, अधनंगा डोलेगा ।"[1]

जब ये गरीब खेतिहर अर्धबुभुक्षित अर्धनग्न रहते हैं तब सामन्त आडंबरपूर्ण ठाठ की जिन्दगी बसर करते हैं । "विजयी के वंशधर" कविता का सामन्त गुलाबी धोती, सीप की बटनोंवाला रेशमी कुर्ता, मलमल दुपलिया, फूलदार टोपी, नेवले के मुँह सी मूठ की नफीस छडी के साज धाज से ईंटों के ढेर के बने रावण को मारने निकलते हैं । राम के वंशज कहलानेवाले ये कापुरुष नपुंसक मिट्टी के रावण को पीट पीटकर अपनी विजय

1• आज की कविता - संपादक प्रभारत मित्तल - "हरिजन गाथा" कविता से

घोषित करके जब लौट आते हैं तो छप्पन प्रकार के भोजन द्रव्य उसका स्वागत करते हैं[1]।"

ये सामन्त अंग्रेज़ों के ज़माने में ज़मीन्दार के नाम से जाने जाते थे। देश स्वतंत्र होने पर यहाँ के शासकों ने ज़मीन्दारी प्रथा के उन्मूलन की घोषणा की। लेकिन यह कागज़ में ही सीमित रहा। किसान शोषण की पकड़ से मुक्त नहीं हुए। सत्ताधीशों के आशीर्वाद से आगे भी ग्रामीण किसानों की भूमि छीनी गयी। इन अत्याचारों पर क्षुब्ध नागार्जुन ने कहा -

"लाखों लाख फिरे वे नंगन भूखे, मरे करोड़
कहाँ गया ज़मीन्दारी उन्मूलन को फर्मान ?
छिने जा रहे गाछी-गोचर-पोखर और श्मशान
गाँव गाँव में लूट मची है भारी बने लठैत[2]।"

ज़मीन्दारों के साथ शासक वर्ग के संबंध से किसानों का शोषण दुगुना हो जाता है। बीज, बैल, वर्षा के अभाव में परेशान कृषक अपनी खेती से जो थोड़ा सा दाना प्राप्त करता है वह भी कर्ज चुकाने में नष्ट होता है। अतः स्वतंत्र भारत के किसान "भूखे रहकर, आधा खाकर, दिन पर दिन दुबराते हैं। हड्डी छेद रहा है जाड़ा, बरबस दाँत बजाते हैं। दवा न कर पाने रोगों की, यम को पास बुलाते हैं / हरि इच्छा या राम भरोसे अपने को समझाते हैं[3]।"

1· युगधारा -"विजयी के वंशधर" कविता
2· वही, पृ·119
3· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·50

नवाबों, राजाओं और जमीन्दारों को देश का स्वतंत्र होना अधिक बुरा लगा । उनका विचार था कि देश की आज़ादी उनके मनमानेपन की आजादी के लिये विघात होगी । लेकिन स्वतंत्र भारत की स्थितियाँ इनके लिये अधिक अनुकूल बनी । शासक कांग्रेज़ियों के साथ होकर इन्होंने शोषण को और भी मज़बूत बनाया । भारत में शान्ति मैत्री के लिये आये रूसी यात्रियों को कवि हिटलर, मुसोलिनी जैसे तानाशाही सामन्तों का परिचय देकर कहते हैं -

यहाँ तुम्हें
ठौर ठौर पर
सामन्तशाही के गढ दिखायी पडेंगे
हम इन्हें कितना भी छिपायें
कितना भी ओझल रखेंगे तुमसे
अपने आप देख ही लोगे तुम तो
मुसोलिनी, हिटलर तो जो, फ्रांको के बच्चे
हिन्दुस्तान में ठौर ठौर पर मिलेंगे तुम्हें[1] ।

सामन्तवाद में जमीन्दार, किसानों का शोषण अपना अधिकार मानते हैं तो पूंजीवाद में पूंजीपति अपने कल कारखानों में श्रमरत आदमी का श्रमफल हडपकर पूंजी बढाते हैं । पूंजीवाद ने शहरों में अपने ऐश आराम, और आडंबरपूर्ण संस्कृति की अमिट छाप छोड दी । इस ने जीवन के नैसर्गिक सौंदर्य के स्थान पर एक नवीन कृत्रिम संस्कृति को जन्म दिया[2] । आडंबर इनके जीवन का अभिन्न अंग रहा, जिससे गरीबों से इनकी नफरत भी बढ गयी । "जयति नखरंजिनी" कविता में वोट करने आये शहर की

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने - नागार्जुन, पृ.49
2. "नयने फूला फूलाके" कविता - हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.171

फैशनेबिल लडकियाँ इस कारण लौट जाती है कि उनके सुन्दर नगों में काला धब्बा पड जायेगा । सौंदर्य पर इतना भी कलंक पडना उन्हें बर्दाश्त नहीं ।[1] "वाणिज्य पुत्र", "पैसा चहक रहा है" जैसी कवितायें भी उच्चवर्गीय विलासिता का वर्णन है ।

शोषक पूंजीपतियों के शोषण में पिसती जनता नगरों में गरीबी और गन्दगी में रहते हैं । "आदम का तबेला "कविता में महानगरों में कीडों के समान गरीब श्रमिक जनता की जिन्दगी का सांगोपांग वर्णन करके कवि ने कहा -

ढाई सौ प्राण सत्रह कोठरियों में घुटते रहते हैं
एक बंबा है, तीन लेट्रिन
देखकर पानी का मोर्चा
पसीने को आती शर्म[2] ।

इस प्रकार दम घुटकर जीनेवाले कोटि कोटि मानव है ।

सामन्तवाद और पूंजीवाद को अधिकाधिक पनपने का मौका भारत की वर्तमान स्थिति में मौजूद है । खादी के साथ मलमल के साठगांठ ने देश के श्रमिक जनता की दशा विकराल बना दी । बिड्ला, टाटा, डालमिया जैसे पूंजीपति सत्ताधारियों की छाया में शोषण दुगुना मज़बूत बनाया । यही नहीं अधिकांश तथाकथित जनसेवक सामन्तों और पूंजीपतियों मे उभरा । इनमें जमीन्दार, साहूकार, बनिया, व्यापारी जैसे सभी संपन्न थे

1· सतरंगे पंखोंवाली - नागार्जुन, पृ·37

2· प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ·18

जो "अन्दर अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी" रहे । ऐसे नेता धनिकों के संरक्षक ही रहे । यहाँ तक कि गरीबों के उद्धारक गांधीजी भी टाटा बिडला जैसे धनकुबेरों के महान अतिथि बने ।[1]

भारत की राजनीति जनशोषक जमीन्दारों और पूंजीपतियों से गहरी जुडी है । अन्योन्याश्रित इन वर्गों में एक के हित का संरक्षण दूसरे के अस्तित्व के लिये अनिवार्य है । इनके जनशोषण का विकराल चित्र नागार्जुन ने यों खींचा -

"हीरक जयन्ती के सुदुर्लभ क्षणों में
माननीय खाद्यमंत्री महोदय को
अकाल-ग्रस्त क्षेत्र के सेठों ने दी है थैली
एक लाख ग्यारह हज़ार एक सौ एक की
चांदी की थाल में पडा है चेक जय हिंद बैंक का ।"[2]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अब तक के सभी शासकों के समय स्थिति यही रही है । संपन्न के हितों के सामने ये गरीब को भूल गये । निशि दिन श्रीमन्तों के सुखों की रखवाली करके सेठों की लक्ष्मी के श्रृंगार करनेवाले मोरारजी के टैक्सों के भरमार से जनता परेशान है[3] तो इन्दिरा गांधी की कुटिल नीति भी उच्चवर्ग से परम प्रीति की है[4]। इनके द्वारा गरीबों के पेट काटकर सूट बूट की लाज निबाही जाती है और आम जनता को महंगाई के कारण जीना ही हराम हो गया है[5]।

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·120
2· वही, पृ·55
3· वही, पृ·127
4· वही
5· पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ·15

पूंजीवाद ने अपने हितसंरक्षक सभी को प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया। राजनीति ही नहीं धर्म और साहित्य के क्षेत्र भी इसके स्पर्श से अपवित्र हुए। भारत के धार्मिक आचार्यों द्वारा धनपतियों की इच्छा पूर्ति होती है। अपने स्वार्थ के लिये शासक वर्ग भी इनके गुणगान करते हैं। इन आचार्यों की सहायता से कवि, सुकवि बन जाता है, सुकवि आसानी से कविवर बन पाता है।[1]

पूंजीवादी समाज में पैसे की चकाचौंध में सभी मूल्य गायब हो जाते हैं। इसमें चाटुकारिता ही कला और साहित्य की श्रेष्ठता का मापदण्ड है। धनवैभव से कला और साहित्य मोल लिये जाते हैं। छः फैक्टरियों के मालिक पुष्पदन्तजी जैसे संपन्न पूंजीपति प्रजातंत्र, प्रगति, जनवाद, भारतीय संस्कृति, धर्म निरपेक्षता से लेकर कला और साहित्य पर भी अपनी खास कृपा रखनेवाले हैं।[2] ऐसे समाज में धनलोभी, पदलोभी साहित्यकार पूंजीपतियों के हितसंरक्षक बन जाते हैं। सरकारी आशीर्वाद भी इन्हें खूब मिलता है। फोर्ड फाउण्डेशन की मदद से आयोजित जानकी जीवन यात्रा" नागार्जुन को एक ऐसा पिकनिक लगता है जिसका जनजीवन से कोई वास्ता नहीं। कवि के अनुसार अभिजात अस्मिता का यह "रिहर्सल" संपन्नों के अनुकूल प्रचार का शंखनाद मात्र है। जनजीवन पर इसका प्रभाव नागार्जुन के शब्दों में -

उस वस्तुवादी खेतिहर ने मुझसे पूछा
कौन थे यह लोग ?
नहीं, बहाना नहीं, सच सच बतलाओ
कारों का काफिला ? खीर पकवान ? फोटो फिल्म ?[3]

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.18
2. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ.28
3. वही, पृ.53

इस प्रकार सामन्तशाहों और पूंजीपतियों के शोषण और दमन चक्र में पिसती जनता जीवन के हर क्षेत्र में राजनीति के अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप से और भी परेशान हो जाती है । वर्तमान समाज का सबसे बडा अभिशाप भ्रष्टाचारपूर्ण राजनीति है । राजनीतिक नेताओं के जनद्रोहमय करतूतियों से जनता न्याय से, अपने अधिकारों से वंचित रही । नागार्जुन ने राजनीतिक क्षेत्रमें होनेवाले शोषण का विस्तार से वर्णन किया ।

ग॰ राजनीतिक शोषण पर विरोध

भारत की स्वतंत्र राजनीति की शुरुआत सन् 1947 अगस्त 15 में हुई । इसके बाद सर्वाधिक शोषण राजनीतिक क्षेत्र में हुआ । काग्रेज़ी नेता स्वतंत्र भारत के शासन की गद्दी पर आरूढ हुए । शासन के इन भागीदारों में ज्यादातर संपन्न घराने के थे जो अपने वर्ग हित के संरक्षक साबित होने लगे । जनसाधारण का इनका कोई संबंध नहीं रहा । वर्ग भिन्नता के कारण शासक और जनता के विचार, सपने, इच्छा आकांक्षा सब अलग अलग रहे । साल बीतते बीतते यह अन्तर घटता नहीं, बढता नज़र आया। राजनीति के हर उथल पुथल को, हर परिवर्तन को नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से देखा, परखा और शोषक जननेताओं के खाल उखाडकर उन्हें जनसमक्ष प्रस्तुत किया ।

भारतीय जनता जिस आदर्श के लिये एकजुट होकर विदेशियों से लडी, आज़ाद भारत के काग्रेज़ी नेता ये सब भूल गये । कोटानुकोटि भारतीय के समान नागार्जुन को भी देश की स्वतंत्रता आनंददायक प्रतीत नहीं हुई । स्वतंत्र भारत के तथाकथित जनसेवक पूंजीपतियों और गुनाहगारों के साथ होकर संघर्ष का पथ छोडकर चल रहे हैं । ये सर्वहारा जनगणों की पीठ पर

लंबा छुरा झोंक देते हैं । यह सब देखकर शिशु राष्ट्र के जन्म दिन-स्वतंत्रता दिन मे भी उदासीन कवि कहते हैं कि आज यह राष्ट्र रेशमी तिरंगे पर लडखडा रहा है[1] ।

आज़ादी के पहले यहाँ कांग्रेज़ियों द्वारा समस्त सुन्दर रामराज्य का वादा दिया गया, जिससे बेचारी जनता को अपने साथ लेने में वे सफल हुए । लेकिन स्वतंत्राप्राप्ति के थोडे ही दिनों के अन्दर जनता की कल्पना निरर्थक साबित हुई । शोषण और दमन को शासनरीति बनाये नेताओं के सामने रामराज्य की कल्पना सबसे बडा व्यंग्य बन गया[2] ।

भारत अब जनता का न होकर मुट्ठी भर कांग्रेज़ियों का अखाडा बन गया है । बापू शिष्यों ने एक आडंबरपूर्ण संस्कृति को जन्म दिया है । गाँधीजी के नाम पर सुख सुविधायें बटोरनेवालों की संख्या दिन-ब-दिन बढती रहती है । राजनीति की यह भ्रष्टनीति देखकर कवि ने कहा -

तुम रजत रूप में कैद रही
जो नित्य करूँ मैं प्रणाम
फिर तो अपनी कोठी होगी
चमकीली होगी नयी कार[3] ।

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.44
2. खूब खुली इन दिनों यहाँ पर राम राज की पोल
   बन्दूकों ने पिया प्रेम से सर्वोदय का घोल ।
   वही, पृ 44
3. तुमने कहा था - "बतला दो बापू क्या थे तुम" कविता - नागार्जुन

स्वार्थी नेताओं के लिये त्याग का प्रतीक खादी अपनी स्वार्थसिद्धि का माध्यम बना । आज भारत में सर्वाधिक शोषण खादी की ओट में चल रहा है । खद्दरधारी ही स्वतंत्रता का प्रसाद भोग पाया ।[1] "मास्टर" कविता का माननीय शिक्षा मंत्री खादी की बहाव में सत्ता की कुर्सी पर आ अटके हैं । इनके शासन में गरीब मास्टरों को बिना वेतन काम करना पडता है । दुखस्त मास्टर का निवेदन,

आप बने शिक्षा मंत्री तो देहात के स्कूल ढह गये
हम तो करते रहे पढउनी, जेल न जाके यहीं रह गये
और आपका तो कहना क्या मुँह से बहे भारत की प्यारा
आदर्शों की छौंक मारकर अजी आपने हमें सुधारा[2] ।

समकालीन राजनीति का सही दस्तावेज़ है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दो तीन सालों को छोडकर बाकी समय देश का शासन कांग्रेसियों के हाथ रहा । लेकिन लंबे समय उन्हें सत्ता पर अवरोधित जनता के विश्वास का एक छोटा सा हिस्सा भी वे वापस नहीं दे पाये । हर चुनाव के पहले सुन्दर वादों में जनता को डुबोकर चुनाव जीतने बाद फिर जनद्रोहमय करतूतियों में लगे कांग्रेसियों के शासन पर "अभिभूत" होकर नागार्जुन कह उठते हैं -

---

1. गया यूनियन जैक, तिरंगे के दिन आये
चालाकों ने खद्दर के कपडे बनवाये
टोप झुका टोपी की इज्जत बढी सौगुनी
माल मारती नेतन की औलाद औगुनी - पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.14

2. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.168

पेट पेट में आग लगी है, घर घर में है फाका
यह भी भारी चमत्कार है कांग्रेज़ी महिमा का[1] ।

जीवन के हर क्षेत्र में राजनीति के व्यापक हस्तक्षेप से भारत की स्थिति इतनी विकराल है कि

गली गली में रोता मानव, मांग रहे हैं भीख
ऊपर ऊपर तैर रही है अब भी गांधी की सीख
लटक रही श्रमिकों पर अब भी छंटनी की तलवार
छूट दे रही अब भी धन्नासेठों को सरकार[2] ।

इस प्रकार कांग्रेज़ी शासन के भ्रष्टाचारों का सांगोपांग वर्णन नागार्जुन की कविताओं में मौजूद है । नेहरू से लेकर इन्दिरा गांधी तक के कांग्रेज़ी शासकों की जनविरोधी नीतियों को एक एक करके उन्होंने जनता के सामने प्रस्तुत किया । अत: नेहरू युग और इन्दिरा युग का अलग अलग अध्ययन तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों को जानने में पर्याप्त सहायक रहेगा ।

प्रथम कांग्रेज़ नेता का प्रजातंत्रीय शासन

स्वतंत्र भारत का प्रथम मंत्रिमण्डल पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में स्थापित हुआ । कांग्रेज़ की टिकट पर जीते नामी गला काटू, डाकू, चोर, कातिल, लुच्चा-लबार सभी शोषक मंत्रिपद पर आसीन हुए ।

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·131
2· वही, पृ·69

संपन्नों के हितरक्षक इन शासकों के समय गरीब जनता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया । संपन्न जमीन्दारों और पूंजीपतियों के साथ शासकों के मेलजोल से नेहरू के शासन काल में -

> सिकुड़ा सिकुड़ा सेठ है, श्रमिक है बुझा बुझा
> मालिक बुलन्द है, कुली मजूर पस्त है
> सेठ यहाँ सुखी है, सेठ यहाँ मस्त है
> मजूर की छाती में के ठो हाड है
> महल आबाद है, झोंपड़ी उजाड है
> गरीबों की बस्ती में, उखाड है, पछाड है[1] ।

जमीन्दारी उन्मूलन की घोषणा के बाद भी शासकों के आशीर्वाद से ज़मीन की बेदखली ज़ारी रही । जमीन्दार आगे भी गरीब खेतिहरों की भूमि हडपते रहे । यह खोखलेपन देखकर विनोबाजी द्वारा आयोजित "भूदान यज्ञ" नागार्जुन को हास्यास्पद लगता है । उनका दृढ विश्वास है कि जब तक जमीन्दारों को काँग्रेज़ का संरक्षण प्राप्त होगी तब तक यहाँ के गरीबों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा[2] ।

नेहरू के शासन काल में देश के सर्वांगीण विकास के लिये पंचवर्षीय योजनाओं का आरंभ हुआ । गरीब जनता के उन्नमन को लक्ष्य करके आयोजित इन पद्धतियों में विकास ऊपर से नीचे की ओर हुआ । अत: समाज की निचली श्रेणी तक इसका सुफल कभी नहीं पहुँच पाया । कृषि, उद्योग आदि की प्रगति को प्रमुखता देनेवाली इन योजनाओं के रहते

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ.80
2. काँग्रेज़ी जब नहीं बुनेंगी, बेदखली का जाल
   सबके उदय तभी होगा, तब सब होंगे खुशहाल ।
   युगधारा - "सन्त विनोबा" कविता - नागार्जुन,

गरीबों की स्थिति बदतर होती गयी । सन् 1953 में लिखी "तीस हज़ारी कार" कविता में देश की स्थिति पर नज़र डालकर नागार्जुन ने कहा -

मंडराती है यम की नानी खेतों में खलिहानों में
भूख-अकाल महामारी की फसल उगी मैदानों में
लूट पाट की होड मच गयी नरभक्ष हैवानों में
लटक रहा ताला गल्ले की सरकारी दूकानों में[1] ।

कृषि प्रधान देश भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्रमुखता दी गयी । भारत के कोटानुकोटि किसान इस योजना की ओर आकांक्षा की दृष्टि से देखते रहे । लेकिन लोकलक्ष्मी के सपने कभी साकार नहीं हुए । भारत के करोडों किसानों की निराशा पर क्षुब्ध नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक तौर पर कहा -

कागज़ की खेती होती है, कलम हुई हलफार
छोड रहे हैं, गाँव गाँव खेत मज़दूरों के परिवार
कृषि विकास की खबरें प्रतिदिन छाप रहे अखबार
अर्सेंबली की छत पर फसलें उगा रही सरकार[2] ।

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·125
2· वही, पृ·123

विकास की अनेक योजनाओं के बावजूद भी गरीबों की स्थिति जैसी की तैसी रही । मंत्री लोग बार बार अन्न की इफारत बताते चले । लेकिन गरीब की नसीब में भात अब भी सपना रह गया । जब गोदामों में अन्न भरा रहता है तब भी यहाँ पेट खाली ही खाली रह जाती है । अत: पंचवर्षीय योजनाओं की असफलता पर व्यंग्य करके नागार्जुन ने कहा -

पाँच वर्ष की बनी योजना एक दो नहीं तीन
कागज़ के फूलों ने ली है सबकी खुशबू छीन ।[1]

इस शासन में गरीबी और महँगाई से दम घुटी जनता के हर विद्रोह का निर्दय दमन हुआ । नेहरू ने रोजी रोटी के लिये, अपने अधिकारों के लिये आवाज़ उठानेवाली जनता का बन्दूकों से सामना किया । प्रजातंत्र में जनता के न्याय का संरक्षण नहीं हुआ । नेहरू के शासन काल में प्रगति का नारा सबसे पहले समाजवादियों द्वारा बुलन्द किया गया । इसलिये बाद में समता के लिये, स्वतंत्र्य के लिये जो भी आवाज़ उठाया वह कम्युनिस्ट कहलाकर जेल भेज दिया गया । बात बात पर समाजवाद का नारा रटनेवाले नेहरू के लिये अपना स्वार्थ, अपनी कुर्सी बनाये रखना सबसे महत्वपूर्ण था । इसके लिये शासन के प्रति जनता के हर विरोध का उन्होंने निर्दय दमन किया । दस हज़ार, दस लाख मरें, झंडा ऊँचा रहे हमारा" यही नेहरू की नीति थी[2] ।

नेहरू की यह दमनरीति नागार्जुन सह नहीं सके । टाटा, बिडला, डालमिया की ओर देखकर, मज़दूर किसान के सुख में विमुख नेहरू द्वारा गरीब जनता का दमन देखकर नागार्जुन ने कहा -

---

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·121

2· वही, पृ·82

हमें पिलाओ अनुशासन की बासी खट्टी छाछ
बात बात पर हण्टर मारो
कदम कदम से छोड़ो अश्रु गैस
गोली मारो, खून बहाओ
रहो ताकते बिड़ला, टाटा डालमिया की ओर ।

अतः नेहरू का पंचशील प्रेम नागार्जुन को खोखला दिखायी पड़ता है । दुनिया भर को पंचशील का अहिंसात्मक सिद्धान्त पढ़ाकर देशी जनता पर निर्दय आक्रमण करते देखकर नागार्जुन ने कहा -

बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील दशशील
ठोंक रहे हो घर में तरुणों के सीने पर कील ।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सोलह वर्षों तक नेहरू का शासन जारी रहा । इतने लंबे समय तक भारत में गरीबों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । अन्दर बाहर सभी ओर संकट और आतंक ही छाया रहा । देश गरीबी और बेचैनी की ओर बढ़ता रहा । नेहरू को इसका पूर्ण उत्तरदायी बताते हुए नागार्जुन ने पूछा -

लाख लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत ?
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहरों के खेत ?
किसके बल पर कूद रहे है सत्ताधारी प्रेत ?
कौन कहेगा आज़ादी के बीते तेरह साल ?[2]

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ. 80
2. वही, पृ. 120

भ्रष्टाचार पूर्ण शासन काल की एक एक घटना को प्रस्तुत करते हुए नागार्जुन ने नेहरू पर यह आरोप लगाया कि आज़ादी के भव्यभाल पर उन्होंने काला टीका लगा दिया । स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री द्वारा प्रजातन्त्र का गला घोंटते देखकर नागार्जुन ने उनसे पूछा -

बात भर है राम राज की, रावण के है काम
किस मुँह से लेंगे हम डमोक्रसी का नाम ?[1]

बदलती सत्ता की जनविरोधी नीति

नेहरू के पश्चात हर बदलती सत्ता में जनता का खूब शोषण और दमन हुआ । शासन के हर बदलाव के अनुसार जनविरोधी नीति भी बढ़ती गयी । नेहरू के बाद इन्दिरा गांधी के समय जनशोषण और जनता पर दबाव उसकी चरम सीमा पर पहुँचे । "गांधी टोपी हैट के प्रति" कविता में नागार्जुन नेहरू से लेकर इन्दिरा तक के शासन का क्रमिक विकास यों अंकित करते है -

बनी रही वर्षों बड़प्पन की ढाल
जाने कितना फिदा थे मुझ पे जवाहरलाल
शास्त्री के जमाने तक ठीक था हाल
अब लेकिन चिढ़ाती है इन्दिरा की शाल[2] ।

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.87
2. वही, पृ.149

भारत के अब तक के शासकों में इन्दिरा गांधी कवि के व्यंग्य और घृणा का शिकार अधिक रही । पग पग पर इन्दिरा शासन का उन्होंने विरोध किया । इन्दिरा गांधी का शासन सभी दृष्टि से आम जनता के लिये भारी आतंक का काल था । महंगाई और काला बाज़ारी से साधारण जीवन पूर्ण रूप से चौपट हो गया । धनिकों की मनमानी के लिये शासकों से खूब सहयोग मिलता रहा । भूखी जनता को देश भक्ति में डुबो दिया गया । संपन्नों की जनद्रोहमय करतूतियाँ बेहद हो गयी । इन परिस्थितियों के बीच देश में स्वतंत्रता की रजत जयन्ती मना रही है । 'घर से बाहर निकलेगी कैसे रजवन्ती' कविता में देश की तत्कालीन गतिविधियों का विस्तृत अध्ययन करने के बाद कवि आज़ादी की रजत जयन्ती को धिक्कारते हुए कहते हैं -

> नीचे निपट गरीबी, ऊपर ठाठ बाट की रजय जयन्ती
> शर्म न आती, मना रहे वे महंगाई की रजय जयन्ती
> अस्सी प्रतिशत दीन जनों की कष्ट कथा है रजत जयन्ती ।[1]

अधिकार में आकर थोड़े ही दिनों के अन्दर ही इन्दिरा गांधी का संपन्न हितैषी रूप प्रकट होने लगा । चुनाव में रुपया बहाने के लिये संपन्नों के सभी अनैतिक, गैरकानूनी आचारों को प्रोत्साहन देनेवाली रीति व्यापक बन गयी । धन के सामने जनतंत्र कुचल दिया गया । काले धन की बैसाखी पर टिकी इन्दिरा की पक्षधरता पर नागार्जुन ने यों संकेत किया -

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ.57

ठगों उचक्कों की मल्लिकाहुन
प्रजातंत्र की ओ हत्यारी
अबके हमको पता चल गया
है तू किन ठगों की प्यारी[1]।

सामन्तों और पूंजीपतियों की संरक्षक इन्दिरा को कवि ने "उच्च वर्ग की दुम" पुकारते हुए कहा कि इनके हाथों जनतंत्र की हत्या हो गयी है।[2]

इन्दिरा का शासन व्यापक दमन और आतंक का था। जनकल्याण के लिये पद्धतियाँ आयोजित करने के बदले अपने विरोधियों के दमन में उसने अधिक समय गंवा दी। इस समय सामन्तों और पूंजीपतियों के अत्याचारों से तंग आकर देश के कोने कोने में विद्रोह फूट निकले तो पुलीस की सहायता से उन्हें दबाकर इन्दिरा सामन्तों की रक्षा भी करती रही। देश भर में पुलीस के अत्याचार ज़ोरों पर पहुंचा जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है भागलपुर में कैदियों का अंधा बनाना[3]।

इन्दिरा गांधी ने पुराने सामन्तवाद को सुधारकर एक नये सामन्तवाद को जन्म दिया। इन नवसामन्तों को शासन का हिस्सेदार बनाकर कृषि के क्षेत्र में परिकल्पित सभी सुधारवादी पद्धतियों पर रोक लगा दी। देश के कोने कोने में सामन्तों के मनमानीपन से तंग आकर जनसंघर्ष हुए तो इन्दिरा की पुलीस ने उन्हें तुरन्त ही दबा दिया। सामन्तों

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.126
2. सामन्तों ने कर दिया प्रजातंत्र का होम
   लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम।
   वही, पृ 126
3. वही, पृ. 145

और सत्ताधीशों का मिला जुला दमनचक्र व्यापक नरसंहार में परिणत हुआ । हरिजन हत्या-काण्ड भी व्यापक हुआ । हरिजनों की हत्या में शासक ने सामन्तों को सहायता दी । इस पर दुःखी होकर नागार्जुन ने लिखा -

नियमित हरिजन वध के आगे
अश्वमेध की बात न करना
इस होली में भूमिहीन की
किस्मत का भुट्टा सिकता है[1] ।

शासक वर्ग जनता की परेशानी की ओर आँख तक नहीं उठाता । भूख से चिल्लाती जनता से देश की जेलें भर गयी । बात बात पर "जनता" "जनता" पुकारनेवाली इन्दिरा के प्रजातंत्र से तंग आकर नागार्जुन ने कहा -

तानाशाही रंगमंच पर प्रजातंत्र का अभिनय
देख रहा हूँ हिंसा का ही मैं असत्य से परिणय
सुनता हूँ चीख रहे है देवी तुम्हारी जय जय
देख रहा हूँ सभी लुटेरे घूम रहे है निर्भय[2] ।

इस आतंकपूर्ण राज में फौज की सहायता से जनता पर निर्मम दबाव की अनेक घटनायें हुई । बंगाल का चुनाव और रेलवे हड़ताल पुलीस दमन के दो उदाहरण मात्र है । "गरीबी हटाओ" जैसे क्रान्तिकारी

---

1. नागार्जुन,- पुरानी जूतियों का कोरस पृ 162
2. तुमने कहा था - पृ .51

नारे बुलन्द करके परिवर्तन के लिये लालयित जनता पर निष्ठुर आक्रमण करने की रीति पर नागार्जुन क्षुब्ध हुए -

पग पग पर तुम लगा रही हो परिवर्तन के नारे
जनयुग की मतरंगी छलना तुम जीती हम हारे[1]।

जनता के दमन में इन्दिरा गांधी नेहरू से भी आगे है। उसके शासन में शोषित जनता का हर विद्रोह निर्दय रूप में दमित किया गया। जयप्रकाश की संपूर्ण क्रान्ति पर इन्दिरा की लाठी पड़ी तो नागार्जुन ने लिखा -

जय प्रकाश की पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की
देवी प्रतिमा चण्ड को लिये साथ में
हुई अवतरित बन्दूकें है दसों हाथ में
लगे बैठने गद्दी पर हिटलर मुसोलिनी[2]।

इन्दिरा शासन का सबसे विकराल पक्ष आपात स्थिति की घोषणा के बाद प्रकट हुआ। इस आतंकपूर्ण तानाशाही ने आम जनता के तन, मन और धन पर ठेस पहुँचाये। भयानक शासन के विरुद्ध कोई कुछ नहीं बोल पाया। विरोध में उंगली उठानेवाले का नामोनिशान तक नहीं छोड़ा गया। हजारों की तादाद में जनता की हत्या हुई[3]। अत्याचारों की इस लंबी श्रृंखला में सुदृढ प्रशासन का मतलब था प्रबल पिटाई। बन्दूकें शासन का माध्यम बने[4]। 'अब तो बन्द करो हे देवी

---

1. नागार्जुन - तुमने कहा था - पृ 49
2. खिचड़ी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ.14-15
3. 'काली माई' कविता - प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ.36
4. संविधान की दुई रूपहली भद्रलोक घुमते हैं
देवी तुम्हारी स्टेनगणों से तरुणमुंड भूनते है - तुमने कहा था - पृ 52

यह चुनाव का प्रहसन 'कविता में नागार्जुन ने इन्दिरा को दस बाहोंवाली देवी के भयानक रूप में चित्रित किया । कारतूसों की माला पहनकर, हथगोला - पिस्तौल - स्टेनगण सज्जित इस चण्डी की प्रीति में फौजी अध्यादेश श्लोकों में गूंजता है । भारत का जनतंत्र धन और सेना के बल पर इतना रौंदा जाता है कि नोटों की गड्डियों और लाठियों बन्दूकों की विजय होती है । नागार्जुन के अनुसार -

तुम देवी दस बाहोंवाली, हम है बकरे बलि के
आज नहीं तो कल निश्चय ही भोग चढेंगे कलि के[1] ।

इस देश में आज चुनाव प्रहसन बन गया है । धन और फौज की सहायता से इतने पवित्र कार्य को निर्मूल्य बनाने का उत्तरदायित्व केवल इन्दिरा गांधी को है । साम दान दण्ड नीति से जनता पर दबाव रखकर संपन्न होनेवाले चुनाव पर जनता का विश्वास भी खो चुका है । नोटों की बहाव में चालू होनेवाले हर चुनाव में बोगस मतपत्रों से संदूकें बोझिल बन जाती है । अतः प्रजातंत्र पर खिल्ली उडानेवाले चुनाव के बारे में नागार्जुन ने कहा -

कागज़ का रुपया हंसता है
मतपत्रों की खींचतान में
गुण्डा गर्दी महायान है
प्रजातंत्र के हीनयान में[2] ।

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ.50
2. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.126

इन्दिरा के आतंकपूर्ण शासन से क्रुद्ध नागार्जुन ने उस पर गालियों की झडी ही बरसा दिया । एक जगह उन्होंने

"वह चुडैल है
देशी तानाशाही का पूर्णावतार है
महाकुबेरों की रखैल है
दिल में तो विष कन्या वही प्यार है
लोकतंत्र के मानचित्र को रौंद रही है ।"[1]

कहा तो जगह जगह पर "डायन"[2], "मादा अजगर"[3] "नफाखोर सेठों की माई"[4], "लोभ लोभ की पुतली"[5], "छलिया माई"[6] "काले बाजार की कीचड कोई"[7] "शिशु मुंड चबानेवाली बाघिन"[8], "कूटनीति की जादूगरनी"[9] "डेमोक्रसी की डमी"[10] जैसे अनेक घिनौनी उपमाओं में अभिव्यक्त किया ।

कथनी में जनता की संगिनी रहकर करनी में उन्हें ठगनेवाली इन्दिरा गांधी द्वारा जनहित के लिये आयोजित योजनायें नागार्जुन को ज़रा भी प्रभावित नहीं करती । इन पद्धतियों को वे संदेह की दृष्टि से देखते हैं । अत: जनकल्याण के लिये आयोजित क्रान्तिकारी कदम 20 सूत्रों

---

1. खिचडी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ.28
2. तुमने कहा था - नागार्जुन, पृ.50
3. पुरानी जूतियों कोरस - नागार्जुन, पृ.130
4. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन,
5. वही, पृ.135
6. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.135
7. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन,
8. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन पृ 36
9. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.165
10. वही, पृ.141

का प्रोग्राम नागार्जुन को इतना हास्यास्पद लगता है कि इसकी आलोचना किये बिना वे शान्त नहीं हुए ।

क्या उसी का तो अण्डा नहीं है
यह 20 वाला प्रोग्राम
पौष्टिक है सुलभ सुपाच्य है
आकार में भी अपेक्षाकृत
कुछ बडा ही तो है
बेचारी जनता को भला और क्या चाहिये ?[1]

इस दमननीति पर असंतुष्ट नागार्जुन इन्दिरा गांधी की शान्तिप्रियता को सबसे बडा मज़ाक मानते हैं । पेटी में पिस्तौल रखकर अधर में अमन चैन के बोल उतारनेवाली इन्दिरा पर व्यंग्य करके उन्होंने कहा -

जै जै जै जै जगत्तारिणी, अपने खानदान को तारो
अन्दर हो अशान्ति पर बाहर विश्वशान्ति के मंत्र उचारो[2] ।

इन्दिरा शासन की शोषण, दमन रीतियों का विकराल रूप प्रस्तुत करके नागार्जुन ने इस आतंकपूर्ण शासन के अन्त की भविष्यवाणी की । उनका दृढ विश्वास है कि अहंकारपूर्ण, जनद्रोहमय करतूतियों से परेशान जनता की प्रतिक्रिया भयानक होगी । इस शासन के विरुद्ध देश भर में उभरती असंतुष्टि एक न एक दिन ज़रूर फूट जायेगी । अत: इन्दिरा की

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.133
2. वही, पृ.161

मृत्यु के तीन साल पहले ही कवि ने चेतावनी दी "छविरानी के हत्यारे तो पैदा होते क्षण क्षण में।"[1]

नागार्जुन ने जनशोषक सभी शासकों की जनविरोधी नीतियों पर प्रहार किया। आपातकाल के बाद के चुनाव में इन्दिरा के शासन का तात्कालिक अन्त हुआ और जनता पार्टी शासन में आयी। बदली सरकार को हर भारतीय के समान नागार्जुन भी तत्परता से देखा। लेकिन महँगाई रोकने में, संपन्नों के अत्याचारों को नियंत्रित रखने में वे असफल साबित हुए। अतः जनता पार्टी के शासन के एक साल के बाद नागार्जुन ने परिवर्तित शासन का मूल्यांकन यों किया -

सादगी ईमान्दारी
गयी कुचली, गयी मारी
दुःखी है नर और नारी
हो गये बारह महीने
हो गये बारह महीने।

यही नहीं प्रधान मंत्री मोरारजी की अकर्मण्यता पर व्यंग्य करके कवि ने कहा -

मूत्र अपना पी रहे हो
दिव्य जीवन जी रहे हो
xx xx xx
जल रहे, भुन रहे हरिजन
दुखी पुरजन, दुखी परिजन।[2]

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ. 144
2. तुमने कहा था - "हो गये बारह महीने" कविता

राजनारायण जैसे मंत्रियों पर उपहास करनेवाले नागार्जुन की राय में जनता पार्टी की राज में हुई संपूर्ण क्रान्ति शासन का जादुई मंत्र, धन कुबेर का महामंत्र, ही मालूम पड़ा।[1]

भारत का राजनीतिक क्षेत्र स्वार्थ और अवसरवादिता का अखाड़ा है। हर बदलते शासन के अनुसार यहाँ के संपन्न की जेब भरता है। लेकिन इस अनुपात में गरीब की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता। इसलिये नागार्जुन ने दस प्रतिशत धनिकों की निन्दा करके नब्बे प्रतिशत की गरीब, शोषित पिछडवर्गीय जनता के साथ रहा। अधिकांश कविताओं में उन्होंने इस वर्ग के प्रति अपनी संवेदना प्रकट की।

3. शोषित वर्ग से संवेदना

नागार्जुन की रचना प्रक्रिया प्रारंभ से अब तक एक विषय में अपरिवर्तित रही है शोषितों के प्रति उनकी सहानुभूति और संवेदना के विषय में। कवि ने यह स्वीकार भी किया है "हम सर्वहारा के साथ है। अपनी राजनीति में, अपने साहित्य में हम गरीब किसानों के साथ है, गरीब मज़दूरों के साथ है हरिजन के साथ है। इनका उद्धार हो हम चाहते हैं।[2] अत: दलित वर्ग के लिये कलम लेनेवाले इस कवि के लिये बातें ही अपनी पूँजी, औजार और हथियार है।[3]

---

1. तुमने कहा था - "हो गये बारह महीने" कविता, पृ. 7।
2. साक्षात्कार - अगस्त-नवंबर 1986 - मनोहर श्याम जोशी के साथ
3. हजार हजार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ. 174 (बातचीत से।

नागार्जुन का लगाव हमेशा श्रमिक वर्ग से है जो अपने अधिकाधिक मेहनत के बावजूद भी शोषित रहती है । शोषितों से आस्था रखनेवाली उनकी कवितायें धनकुबेरों की विलासिता पर फट पड़ती है, वे उनपर फब्तियाँ कसती है, उपहास करती है[1] । संपन्न को धन पिशाच या कुबेर के छौने कहकर उनपर उपहास करनेवाला कवि श्रमिक के श्रम को सर्वाधिक महत्व देते हैं । श्रम के पुजारी नागार्जुन ने कहा अपने खेतों में अधिकतम आलू उपजानेवाले उस किसान के प्रति मैं अपना यह मस्तक उसी प्रकार झुका दिया करता हूँ । अपनी बगिया में सर्वोत्तम आम पैदा करने वाले उस किसान के प्रति मैं अपनी आन्तरिक श्रद्धा निवेदन करता हूँ[2] ।" बूढों को भी जीवन का अहसास भर देनेवाली भुरभुरी मिट्टी की सोंधी सुवास का आराधक नागार्जुन स्वयं कृषक पुत्र बनना चाहते हैं

मैं धरती का प्यारा शिशु हूँ
श्रम है जिसकी अपनी पूंजी ।

यही कवि समुद्र की उद्दाम तरंगों से कानाफूसी करनेवाला मछुआ बनना चाहते हैं[3] । "चौथी पीढी का प्रतिनिधि" कविता में श्रम के प्रति नागार्जुन की अडिग आस्था व्यक्त होती है । चौथी पीढी का तीन साला बच्चा श्रमिकों के परिवार का है जिसके रग रग में मेहनत की ललक है । उसके पिता और बाबा मज़दूर है तो माँ मज़दूरनी है । अपने नन्हे हाथों में खुर्पी लेकर अम्मी का अनुकरण करनेवाले नन्हे बच्चे के नन्हे मुख पर पसीने की बूंदें झलकते देखकर उस चौथी पीढी पर कवि मुग्ध हो

---

1. "प्लीज़ एक्स्क्यूज़ मी" कविता - प्यासी पथराई आँखें, पृ.3।
2. नागार्जुन का रचना संसार - विजय बहादुर सिंह
3. लवण उदधि का खारा पानी
   मुझसे बारंबार हारा है
   मैं भी तो इस पर बलि बलि जाऊँ
   आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने - नागार्जुन, पृ.12

जाते हैं।[1] इसी प्रकार कृषक वधु का श्रम उनके लिये अत्यन्त प्यारा है। गाँव की कृषक नारी की मेहनत पर तुष्ट कवि जनलक्ष्मी के आवास स्थान जनपद को जय बोलते हैं -

जय हो जय हो कृषक वधु की आँखों के उद्भास
जय हो जय हो जनपद की जनलक्ष्मी के आवास।[2]

नागार्जुन का हृदय-जनता-शोषित जनता से गहरा जुडा है। उनका संकल्प, उनकी आकांक्षा उनका स्वप्न सबके साथ यह जनता अटूट संबंध रखती है। इसलिये जनता के हर प्रश्न का उत्तर देना वे अपना दायित्व मानते हैं। अत: अपने को जनकवि घोषित करते हुए उन्होंने कहा

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ ?
जनकवि मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊँ ?"[3]

कवि की हैसियत से उन्होंने माना कि वे बिना हिचक से सामाजिक सत्य को जनता के सामने प्रस्तुत करें।

यह जनकवि अपनी मिट्टी से सीधा संबंध स्थापित करना चाहते हैं। अपनी धरती और यहाँ की मेहनतकश जनता के हर स्पन्दन को स्वीकारे बिना, उनकी अनुभूतियों को आत्मसात किये बिना कोई जनता-का

---

1. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने - नागार्जुन, पृ.47
2. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.71
3. युगधारा - नागार्जुन, पृ.71

कवि नहीं बन पाता । अतः इस धरती में ही अपनी जड़ें ढूंढते हुए नागार्जुन कहते हैं -

कैसे कहलाता कोई धरती का बेटा
आसमान में सतरंगी बादल पर चढ़कर
कैसे जनकवि धान रोपता ?[1]

नागार्जुन जीवन और साहित्य में श्रमिक, साधारण से अलहदा रहना पसन्द नहीं करते । यह सादगी स्वीकारते हुए कवि कहते हैं "मैं साधारण हूं, अपने को साधारण ही कहलाना पसन्द करता हूं । मैं तथाकथित विशिष्ट लेखकों की जमात में नहीं हूं । सामान्य की कोशिश मेरी हड्डियों तक रची बसी है ।[2] वे हमेशा सर्वहारा वर्ग का पक्षधर रहना चाहते हैं । अति साधारण जनता की पक्ष धरता अपना दायित्व मानते हुए उन्होंने दूसरे लेखकों के सामने यह मांग प्रस्तुत की -

साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा ।[3]

शोषित पीड़ित जनता के पक्षधर कवि को गरीब देश के धनिक, कोढी कुढब तन पर पड़े मणिमय आभूषण प्रतीत हुआ तो उसमें आश्चर्य की बात नहीं ।[4] "

1· युगधारा - नागार्जुन, पृ·80
2· आलोचना - अंक 56-57 - कृष्णा सोबती से बातचीत
3· युगधारा - नागार्जुन, पृ·74
4· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·54

शोषितों से नागार्जुन की संवेदना उनके स्वयं के अनुभव की उपज है । अपने अनुभूत जगत की कठिनाइयों और अपने आंखों के सामने देखे सत्य से वे अपरिचित नहीं रहे । अस्सी प्रतिशत गरीब श्रमिक हमेशा उनके लिये प्यारे रहे । इन्हीं की चर्चा वे लगातार करते रहे । खेत में काम करनेवाले किसान, खेत मजदूर, महानगरों में रिक्शा चलानेवाले, बोझा ढोनेवाले आदमी, बस, ट्राम के ड्राइवर, फेक्टरियों के चटकल मज़दूर धान कूटती ग्रामीण किशोरियां, फुटपाथ के भिखारी असहाय बुढापा व्यतीत करनेवाले वृद्ध, सामाजिक बर्बरता का अभिशाप ढोनेवाली नारी, जीवन की किसी भी मंज़िल का शोषित वर्ग उनकी सहानुभूति के पात्र रहते हैं ।

ज़मीन्दारों के अत्याचारों से पीडित गरीब खेतिहरों से नागार्जुन सदैव संवेदनशील रहते हैं । "हरिजन गाथा" कविता में इस वर्ग से कवि की सहानुभूति उमड पड़ती है । साथ ही साथ उसके भविष्य के प्रति कवि की आकांक्षा भी व्यक्त है । ज़मीन्दारी व्यवस्था में औसत कृषक की स्थिति ही शोचनीय है तो हरिजन का क्या कहना ? हरिजन दहन की पृष्ठभूमि में एक श्याम सलोने शिशु का जन्म होता है । जब वह गर्भ में था, तब उसके जनक की हत्या हुई थी । हरिजन बालक के जन्म पर उसके पास आये सन्त गरीबदास - जो स्वयं कवि ही है - बालक की हथेलियों पर हथियारों का निशाना देखकर कहता है कि वह अपने साथी संघातियों के साथ मिलकर धरती के जुल्मों का अन्त कर देगा । यह भविष्यवाणी कवि के चिरकाल का सपना है । वे इस बात पर आश्वस्त होते हैं कि इस नयी पीढी द्वारा परंपरा से शोषित जनवर्ग का उद्धार होगा।[1] इस जानकारी में कवि को जो आनंद अनुभूत होता है वह "गंगा मैया" की गोदी में कौडी तलाशनेवाले नंग धड़ंग बच्चों के पास

---

1. "हरिजन गाथा" कविता - आज की कविता (सं.) प्रकाश मित्तल

आकर सहानुभूति में परिणत होता है । भक्तों द्वारा फेंकी गयी कौड़ियों के लिये गंगा के अगाध जल में डुबकियाँ लेनेवाले छोटे बच्चों की खातिर कवि गंगा मैया से विनती करते हैं -

बड़े होंगे तो छोटे चतुर्भुज भी चलायेंगे चप्पू
पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा, इनके भी श्रम स्वेद जल से
मगर अभी इनको निराश न करना ।[1]

इसी तरह आदमी का भार ढोते हुए रिक्शा चलानेवाले मज़दूर का दयनीय रूप देर तक कवि की आँखों से ओझल नहीं होता । उनकी करुणा यों उमड़ पड़ती है

उस दिन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिवाइयाँ
खुब गयी दूधिया निगाहों में
धँस गयी कुसुम कोमल मन में ।[2]

नारी को तितली या कुत्तिया समझे जानेवाले समाज में दासी जीवन बितानेवाली नारियों के प्रति कवि की करुणा "दोन-बोतगा-जमुना गंगा आज हो रही एक" कविता में दृष्टव्य है[3] । जीवन के अस्तमय में सभी से परित्यक्त होकर भीख मांगकर जीने में अभिशप्त बूढ़ा आदमी कवि से अनदेखा नहीं रह गया । सड़क की ढलान पर, भीड़भाड़ से हटके कूड़े कच्चरों के बीच बुझी बुझी निगाहों से पड़ा बूढे की याद कवि के

---

1. सतरंगे पंखोंवाली - नागार्जुन, पृ.22
2. वही, पृ.21
3. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.68

मन को निरन्तर कचोटती रहती है[1]। यही दु:ख, यही सहानुभूति आक्रोश में बढ जाता है, "घिन तो नहीं आती है" कविता में। इसमें दलित शोषित वर्ग से कवि की सहानुभूति भद्र वर्ग के प्रति आक्रोश का रूप धारण करता है। लेकिन यह आक्रोश मीठे व्यंग्य में ढका है। कलकत्ता के ट्राम में बोझा ढोनेवाले, ठेला खींचनेवाले थके मांदे श्रमिकों के पास बैठने में विवश दूध सा धुला लिबासवाले भद्र व्यक्तियों से कवि पूछते हैं

जी तो नहीं कुढता है ?
घिन तो नहीं आती है[2] ?

इस में धनिकों की इस दुविधा को व्यंग्यात्मक ढंग में वे उपस्थित करते हैं।

सर्वहारा वर्ग के हितैषी नागार्जुन उन्हें अधिकाधिक दबोचनेवाली आज की राजनीति से नफरत करते हैं। इस पर सशक्त प्रहार करते हुए कवि कहते हैं "जब कभी मैं ग्रामांचल के किनारे बसी हुई, पिछवाडे गंदे नालों के इर्दगिर्द बसी हुई झुग्गियों की दुनिया में जाता हूँ तो सुविधा प्राप्त वर्गों द्वारा परिचालित राजनीति के प्रति मेरा रोम रोम नफरत से सुलग उठता है[3]। प्रत्येक जननेता मुट्ठी भर संपन्नों के हाथ का कठपुतला रहा। फलत: गरीब जनता देश की किसी भी क्रिया कलाप में कभी शामिल नहीं हो पाये। "काली माई" कविता में गरीबों पर राजनीति के निर्मम दबाव पर नागार्जुन ने कहा -

---

1. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ.28
2. वही, पृ.30
3. नागार्जुन का रचना संसार - विजय बहादुर सिंह पृ 11-12

हमको क्या, हम यों ही पिसते आये है
भारी कल के पुर्जे है, घिसते आये है
अस्सी प्रतिशत जनता की खातिर कृपाण है
बाकी लोगों की खातिर पुष्प बाण है[1]।

नागार्जुन जनता के लिये हितकर कोई भी सुधार को आनंद के साथ स्वागत करते हैं। उनकी पक्षधरता इस बात में स्पष्ट है। राजाओं के प्रिविपर्स समाप्त किये जाने की खबर उनके लिये आनंददायक था। युग युगों से गरीबों के शोषण में पले इस वर्ग के घमण्ड दंभ में यह सरकारी नियम ठेस पहुँचाने लायक था। इन्दिरा गांधी की अनेक नीतियों के विरोधी नागार्जुन को उसका निर्णय उचित मालूम पडा। "ताशों में ही बचे रहेंगे अब तो राजा रानी" कविता में कवि का आनंद यों छलक पड़ता है -

किस पर हुक्म चलायेंगे अब राजा रानी
नहीं मिलेगा इन्हें कहीं चुल्लू भर पानी
हाय हाय कैसे बेचारे डूब मरेंगे
दीपक-तारा ध्वजपट ओढे हाँ इनके महबूब मरेंगे[2]।"

इस धरती के कोटानुकोटि श्रमिक के संगी साथी नागार्जुन को मिट्टी बेहद प्यारा है, वह भी शोषित जनता के संघर्ष की धरती। भोजपुर कविता में जनसंघर्ष की भूमि को पुण्यभूमि मानते हुए कवि कहते हैं -

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.106
2. वही, पृ.106

चमत्कार है इस माटी में
इस माटी का तिलक लगाओ
इसको करो वन्दना
यही अमृत है
यही चन्दना
यही तुम्हारी वाणी का कल्याण करेगी ।[1]

यही मृत्तिका जनकवि में प्राण भरेगी अतः कवि धरती पुत्र के जीवन संग्राम को अंकित करना चाहते हैं । इसके लिये वे स्वयं धरती से इतना गहरा संबंध स्थापित करने का इच्छुक रहते हैं

हम भी अब हल बैल संभाले रचना पचना छोड़े
काफी गोद लिया कागज़, आओ अब धरती कोड़ें
खिला चुके आकाश कुसुम, मिट्टी से नाता जोड़ें
अन्न नहीं है इधर, इधर आओ अपना रुख मोड़े ।[1]

इस प्रकार कवि जनसंघर्ष को वाणी देना चाहते है । अपनी इस इच्छा के सामने कोई भी प्रलोभन उन्हें लुभाता नहीं । अपना सारा जीवन, अपना संपूर्ण साहित्य इस उद्यम के सामने न्योछावार करनेवाला कवि इस विषय में किसी भी प्रकार के समझौते के लिये तैयार नहीं । वे दृढ संकल्प लेते हैं -

अपने को बेचूँगा नहीं
चाहे दुःख झेलूँ अकथ ।[2]

---

1. ऐसे भी हम क्या ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ.21
2. युगधारा - नागार्जुन, पृ.14

शोषकों के विरुद्ध शोषित वर्ग से सहानुभूति रखनेवाले कवि नागार्जुन शोषण के प्रति इनमें जागरण पैदा कराते हैं और इन्हें संघर्ष के मार्ग में अग्रसर कराते हैं । शोषण के प्रति जनता के जागरण की व्यापक अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में हुई है ।

4 जनजागरण की अभिव्यक्ति

जनता कवि नागार्जुन कवि के तौर पर अपनी भूमिका से भली भान्ति परिचित है । उन्होंने कहा "कविता का मुख्य लक्ष्य जन-जागरण है । कलायें अरसों से धनपतियों और राजाओं की गुलामी करती आ रही है । किन्तु आज उसका धर्म इस गुलामी को छोड़कर जनजीवन के प्रति समर्पण का भाव प्रकट करना है[1] । जनता के प्रति अपना दायित्व वे अच्छी तरह पहचानते हैं । अतः नागार्जुन जनता के साथ रहकर उनके सुख दुःखों का सम्भोगी बनना चाहते हैं । "रवि ठाकुर" कविता में वे यही इच्छा प्रकट करते हैं -

मन मेरा स्थिर हो
नहीं लौटूं, चीर चलूं
कैसा भी तिमिर हो
प्रलोभन में पड़कर, बदलूं नहीं रूख
रहूं साथ सबके झेलूं
साथ सुख दुःख ।[2]

---

1. विजयबहादुर सिंह से बातचीत - नागार्जुन का रचना संसार - पृ 48
2. युगधारा - नागार्जुन, पृ.14-15

जनता से संबद्ध कवि जनता पर होनेवाले हर जुल्म के विरुद्ध उसको संरक्षण देते हैं । शासकों के साथ होकर जनता को उन्होंने कभी नहीं ठगा । अतः नागार्जुन ने कहा -

जनकवि हूँ क्यों चाटूँगा थूक तुम्हारी ?
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी ?[1]

नागार्जुन की कवितायें जनजागरण की व्यापक अभिव्यक्ति करनेवाली है । साम्राज्यवादी, सामन्तवादी, पूंजीवादी तथा राजनीतिक शोषण के शिकार जनता में उभरी नयी चेतना को पूरी ईमान्दारी के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया । उन की कविताओं में जनजागरण के निम्न लिखित आयाम दिखायी पड़ता है ।

क· साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध जनजागरण
ख· सामन्ती तथा पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध जागरण
ग· राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जन जागरण
घ· सांप्रदायिकता तथा प्रान्तीयता के विरुद्ध शोषित जनता की जागृति
ङ· परंपरा से शोषित नारी का जागरण ।

क· साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध जनजागरण

साम्राज्यवादी शक्तियाँ परंपरा से अपनी धनलिप्सा और अधिकार वांछा से दुनिया भर के अविकसित, गरीब राज्यों के शोषण करती आ रही है । लेकिन उनके नृशंस शोषण और अमानवीय अत्याचारों से दुनिया भर के करोडों जनता अब जाग रही है । इस जनजागरण से

1· प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ·16

साम्राज्यवादी अब भयभीत हो रहे हैं । गोरे साम्राज्यवाद की अनीतियों से लड़कर उनके रूह कंपानेवाले आफ्रीकी नेता लुमुम्बा के ज़रिये नागार्जुन साम्राज्यवादी अत्याचार के विरुद्ध उभरती जन नेता का परिचय देते हैं । अन्तिम दम तक गोरे साम्राज्यवाद से लड़कर वीर मृत्यु प्राप्त लुमुम्बा संसार भर के शोषित जनता के लिये प्रेरणादायक है । उनकी शहीद होने पर कवि कहते हैं -

तुम मर कर भी अमर रहोगे, लोगे ही प्रतिशोध
कालनेमि को भस्म करेगा जन जन का यह क्रोध
कोटि कोटि काले कण्ठों की सुन सुनकर ललकार[1]
यह देखो गोरे दनुजों पर भय का चढा बुखार ।

यह जनजागरण आफ्रीका तक सीमित नहीं । संपूर्ण दुनिया का शोषित वर्ग जाग गया है । "छेदी जगन" कविता में व्यापक जनजागरण पर संकेत करके कवि ने कहा -

आफ्रीका में, मलाया में, अरब में, ईरान में
मिश्र, बर्मा, हिंद, पाकिस्तान में
श्राद्ध होने जा रहा है अब ब्रिटीश साम्राज्य का[2] ।

उपनिवेशों में होनेवाले स्वाधीनता संग्राम से ब्रिटीश महलों में कुहराम मच रहा है । "जयति कोरिया देश" कविता में नागार्जुन ने अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करनेवाली कोरिया की जनता को अंगार का विशेषण देकर उनकी जागृत चेतना का अभिनंदन किया -

---

1· प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन, पृ·16
2· पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ·29

तुम हो वे अंगार कि जिनसे डालर है बेपर्द
तुम हो वे अंगार कि जिनसे ज़ालिम है भयभीत
x x x x x x
तुम हो अंगार कि जिन पर बलि यह संसार
तुम हो अंगार कि जिनसे आग मांगती भीख ।[1]"

"नेपाल का नौजवान" कविता में भी कवि ने साम्राज्य-वादियों के अधिकार मोह के विरुद्ध उभरती जनचेतना को वाणी दी[2] ।

इस प्रकार व्यापक जनजागरण का चित्रण करके नागार्जुन ने साम्राज्य वादी शोषण में पिसती दुनिया भर की शोषित जनता को संग्राम के पथ पर आगे बढने का आह्वान दिया -

मित्र तुम आगे बढो
आप अपने देश की किस्मत गढो
दे रही आशीष तुमको
दिवस की भास्वर दिशायें[3] ।

ख· सामन्ती तथा पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध जागरण

भारत अनेक काल तक अंग्रेज़ों का उपनिवेश था । अंग्रेज़ी आधिपत्य के समय भी यहाँ भूस्वामी सामन्तों का अधिकार कायम था,

---

1· युगधारा - नागार्जुन, पृ·102
2· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·59
3· पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ·29

जिन्होंने शासक वर्ग से मिलकर भारतीय जनता का खूब शोषण किया। अंग्रेज़ों से निकट संबंध देशी सामन्तों केलिये जनशोषण आसान बना दिया। लेकिन समाजवादी विचारों के व्यापक प्रचार से शोषित कृषकों और मज़दूरों में नयी जागृति उत्पन्न हुई। भूस्वामी सामन्तों के अमानवीय शोषण में पिसती कृषक जनता और कल कारखानों में दिन रात यंत्रों के समान मेहनत करनेवाले मज़दूर वर्ग को समाजवादी सिद्धान्तों ने अपने ओर आकर्षित किया। देश भर के श्रमिक जनता "कमानेवाला खायेगा" जैसे क्रान्तिकारी नारों पर एकदम प्रभावित हुई। किसान जान गये कि धरती का सही मालिक वह है जो उसमें काम करता है। अपने कठिन श्रम के फलभोक्ता ज़मीन्दारों के अन्याय और शोषण से वे धीरे धीरे परिचित होने लगे। "लाल भवानी" कविता में समाजवादी आदर्शों पर अधिष्ठित जनजागरण पर कवि संकेत करते हैं। ज़मीन्दारी ज़ुल्मों के विरुद्ध उभरती शोषित जनता की नवचेतना .उस के उन्मूलन पर तुली है -

सडी लाश है ज़मीन्दारियाँ, इनको हम दफनायेंगे
गाँव गाँव के पाँतर पाँतर को हम भू-स्वर्ग बनायेंगे
ज़मीन्दार है बदहवास हमने उनको ललकारा है।

जिसका जोग, उसकी धरती, यही एक बस नारा है।[1]

यही नहीं अपने अधिकारों के प्रति सचेत किसान उन्हें शोषकों के हाथों से वापस लेने में उद्यत है -

ऊबड खाबड बालूवाली परती बंजर या ऊसर
कैसे भी हो, धरती निर्भर रही जोतनेवालों पर

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ 48

सदियों तक लूटता रहा है, जमा किया है खायेगा
दो पैसे भी जमीन्दार क्यों मुआवजा पायेगा ।"

अपनी धरती और उसमें काम करनेवाले श्रमिकों की मुक्ति कवि के चिरकाल की इच्छा है । इसलिये जमीन्दारी उन्मूलन केलिये कवि स्वयं उद्यत होते हैं -

समझ गया हूँ इस धरा धाम क्या महत्त्व है
समझ गया हूँ कैसे जनकवि जमीन्दारों के उन अमलों को
मार भगाता[2] ।

अतः महज कृषकों को नहीं, मजदूर को नहीं सभी शोषित जनता को कवि संगठित होकर अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये सुसज्जित करते हैं -

बैलों के साथी हलधर, तुम हँसियावाले आओ
खान श्रमिक तुम भूत सरीखे काले काले आओ
आओ छटनी के शिकार ! तुम निपट निराले आओ
आओ तुम बेकार पंगु तुम, बैठे ठाले आओ[3] ।

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.50
2. युगधारा - नागार्जुन, पृ.80
3. पुरानी जूतियों का कोरस, पृ.58

ग. राजनीतिक शोषण के विरुद्ध जनजागरण

सदियों से विदेशियों के अधीन शोषण और दमन के शिकार रही भारतीय जनता आज़ादी के बाद भी शोषण से स्वतंत्र नहीं हुई । स्वतंत्र भारत में राजनीतिक नेता आम जनता के शोषक बने । जनशोषण और दमन इनके द्वारा बेखटके ज़ारी रहा । इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी आम जनता का सपना सपना ही रह गया । जनता की वोट पर सत्तारूढ कांग्रेज़ी जनसेवकों की जनविरोधी करतूतियां देखकर नागार्जुन चुप्पी साध नहीं सके । शासक वर्ग के हर अन्याय पर वे जनता को खबर देते रहे । उन्होंने पूछा "तिकडम या झूठ मूठ के वायदे करके या जातिवाद क्षेत्रवाद आदि के लुभावने नारे उछाल उछालकर जैसे तैसे वोट बटोरनेवाले विजयी संसद के प्रति मेरे अन्दर यदि अश्रद्धा छलकती दिखायी पडे तो क्या आप मुझे पागल करार दोगे ?[1] अतः पग पग पर घोर जुल्म और भ्रष्टाचार में पले हर परिवर्तित सरकार द्वारा जनता पर होनेवाले अन्याय उनसे अनेदेखा नहीं रहा । नयी नयी कारों में नित्य नयी मालाओं में सजधजकर विचरण करनेवाले युगावतार मुख्यमंत्री से वे पूछ उठते हैं -

बतलाओ प्रभु, कृषकों का बेडा होगा कब पार ?[2]

इसका उत्तर भी कवि स्वयं ही दे देते हैं । युग युग का दुखिया किसान अब आगे पराजित होने में तैयार नहीं । उनकी जागृत चेतना अन्याय के सामने घुटना नहीं टेकेगी । अतः सत्ताधीशों को ललकारते हुए संगठित कृषक वर्ग की हुंकार अब गूंज उठी है -

---

1. विजयबहादुर सिंह के साथ बातचीत से - नागार्जुन का रचना संसार
2. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ 123

नहीं नहीं सो कैसे होगा, क्यों माने हम हार ?
नभ से संबद्ध जनता का गूंज गया हुंकार
मत समझो इन नारों को बच्चों की चीख पुकार
दूर दूर से आये हैं हम मनवाने निज अधिकार[1] ।

दांत निपोड़कर वोट भिक्षा मांगनेवाले राजनीतिज्ञों की असलियत जनता अब भली भान्ति पहचान गयी है । देश भक्ति और जनसेवा के डींग मारनेवाले कांग्रेजी शासकों का, टिकटों के लिये आपसी झगडा जनता अब अपने आंखों के सामने देख रही है । "आओ तुमको भली भान्ति पहचान गये है हम" कविता में राजनीतिक खोखलेपन कवि जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं -

खद्दरधारी घडियालों की पल्टन तिनरंगा
चबा गयी
सत्य अहिंसा की प्रतिमा को दीक्षा की मेंढकी खा गयी[2] ।"

सोशलिज्म के परम पुजारी नेहरू द्वारा बात बात पर रूस चीन का नाम लेते देखकर नागार्जुन अचंभे में पड जाते हैं । सोशलिज्म के इस वक्ता के जनदमन पर कवि उनसे पूछते हैं -

पुलीस खींचती इसी तरह क्या वहां छात्रों की खाल
इसी तरह क्या चीफ मिनिस्टर वहां बहाता खून ?

---

1. हजार हजार बाहोवाली - नागार्जुन, पृ.123-124
2. वही, पृ.63

इसी तरह क्या वहाँ जिबह होता रहता कानून ?
इसी तरह क्या वहाँ मिनिस्टर गँवा बैठता होश ?[1]

राजनीतिक नेताओं ने सुन्दर सपनों में डुबोकर जनता को भुला दिया। लेकिन अब वह अपने अधिकारों से सचेत होकर जाग गयी है। नेताओं की असलियत वह अब पहचान चुकी है। जनता का दृढ संकल्प -

झूठ मूठ सुजला-सुफला के गीत न हम अब गायेंगे
भात-दाल-तरकारी जब तक नहीं पेट भर पायेंगे।
में यह जागृत चेतना स्पष्ट झलकती है[2]।

इन तथाकथित जनसेवकों के जनद्रोहमय आचारों से दम घुटी जनता चेतवानी देती है -

खबरदार नफाखोरों, तिकड़म बाजों खबरदार
अवाम के जोहन में जहर घोलनेवालों खबरदार
महज निजी कुर्सी के रखवाले खबरदार
इन आँखों में धूल न झोंकों।

अत: उनकी आकांक्षा और क्षोभ यों फूट निकलती है

बनाये रखोगे आखिर कब तक
अपने घर आँगन को नरक
रखे रहोगे गिरवी आखिर कब तक
देसी परदेसी धन्नासेठों के हाथ[3]।

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ 48
2· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·49
3· वही, 'रखे हैं दिन रात' कविता

शोषण और दमन की समाप्ति के लिये अब देश की नयी पीढी सजग होकर आगे आ रही है । कवि इन युवकों को गरीब जनता के संकट मोचक मानते हैं । अतः इन पर आस्थावान कवि का दृढ विश्वास है कि वे ही जनता में व्याप्त अज्ञान अंधकार को मिटाकर जन जन में जागरण पैदा कर सकते हैं । अतः वे उनकी अगवानी की प्रतीक्षा करते हुए कहते हैं -

तुम किशोर, तुम तरूण
तुम्हारी अगवानी में
खुरच रहे हम राजपथों की कोई फिसलन
खोद रहे जहरीली घासें
अपने स्वप्नों को पूरा करने की खातिर
तुम्हें नहीं तो और किसे हमें देखें ।

अतः उन्हें जागृत करते हुए कवि कहते हैं -

निबिड अविद्या से मन मूर्छित
तन जर्जर भूख प्यास से
व्यक्ति व्यक्ति दुःख दैन्य ग्रस्त है
दुविधा में समुदाय पस्त है
लो मशाल अब घर घर को आलोकित कर दो[1] ।"

इस युवा पीढी से कवि आकांक्षा करते हैं कि वे क्षुधा, अशिक्षा, रोग, रूढि का संहार करने की हाथियार अपनायें । अतः प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध युवा पीढी का यह सवाल न्याय है, जो उसमें आये जागरण का परिचायक है -

---

1. सतरंगी पंखोंवाली - नागार्जुन, पृ.30

सुख की सरगम की थिरकन क्या
महलों को ही होगी नसीब
माँग रही तरुणाई वो हथियार
क्षुधा अशिक्षा रोग रूढि की पल्टन का
जो कर डाले संहार[1] ।

घ· सांप्रदायिकता तथा प्रान्तीयता के विरुद्ध शोषित जनता की जागृति

धर्म, संप्रदाय, प्रान्तीय जोश आदि जनता की प्रगति में बाधक तत्व है । ये मनुष्य को आगे बढाने के बदले पीछे हटाते हैं । रूढियों अनाचारों में जकडी जनता स्वातंत्र्य, प्रगति और समानता के लिये आवाज़ नहीं उठा पाती । इन अभिशापों से मुक्ति पर ही मनुष्य की मुक्ति निहित रहती है । नागार्जुन ने समय समय पर इन प्रतिगामी शक्तियों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया और इनके प्रति जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास किया । 2

अलौकिक, असीम सत्ता पर विश्वास मनुष्य को प्रगति के पथ से विचलित कराता है । समाजवाद ने धर्म और ईश्वर के प्रति जनता के परंपरागत विश्वासों को परिवर्तित किया । भाग्यवाद - जो ईश्वर पर बेहद आश्रयशीलता की उपज है - को भी सामाजवाद ने धिक्कारा । एक ओर अन्न वस्त्र के लिये तरसनेवाली जनता और दूसरी ओर संपन्न की विलासिता देखकर ईश्वर पर कवि का क्रोध भभक उठता है । वे जान लेते हैं कि ईश्वर तटस्थ नहीं, संपन्न का पक्षपाति है । बुभुक्षितों के दुखों पर अनदेखा करके, उसके कराह अनसुना करके क्षीर सागर में शेष नाग

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·138

2· नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी - पृ -51

शैया पर लेटे भगवान कवि के लिये घृणित है और वे ऐसे भगवानकी अन्त्येष्टि करना चाहते हैं -

मन करता है
मैं उस अगस्त्य सा पी डालूँ
सारे समुद्र को अंजलि से
उस अतल वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखायी दें
उस महामृतक को ले आऊँ
फिर इस तट पर
अन्त्येष्टि करूँ[1] ।

धनिकों का हितैषी भगवान के सामने किसी भी हालत में सिर झुकाना वे नहीं चाहते । अत: ईश्वर को धिक्कारते हुए कवि कहते हैं -

बाबा वैद्यनाथ तुम हो गये सचमुच पत्थर
कभी भी नहीं तुम्हारे लिये झुकेगा मेरा सिर[2] ।

ईश्वर के प्रति यह अनास्था मात्र कवि का नहीं । समाजवाद से प्रभावित हर एक का विचार है । अन्य अनेकों के समान पाषाणधर्मी ईश्वर से अधिक कोटि कोटि मनुष्य का त्राता, अन्नहीन, आश्रयहीन, मनुष्य का साथी स्टालिन कवि के लिये वन्दनीय है[3] ।

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ.32
2. पत्रहीन नग्न गाछ - नागार्जुन, पृ.35
3. हज़ार हज़ार बाहोंवाली -"साथी स्टालिन" कविता, पृ.35

सांप्रदायिकता और प्रान्तीयता के संकुचित दायरे में जनता को सीमित रखकर उन्हें प्रगति से वंचित रखनेवाले, कवि की राय में जनशत्रु है। महाराष्ट्र के शिवसेना के अगुआ प्रान्तीयतावादी बाल ठाकरे को कवि ने महाराष्ट्र का सबसे भारी रोग बताया। इसी प्रकार संप्रदायवादी देवरस को भी उन्होंने मानवरस पीनेवाले दानवरस कहा।[1]

नागार्जुन की प्रगतिवादी वृत्ति संप्रदायवादियों के विरुद्ध निरन्तर सजग है। गांधीजी की हत्या के उत्तरदायी संप्रदायवादी दैत्यों को मानवता के महाशत्रु घोषित करके कवि ने कहा -

हिन्दु-मुस्लीम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि जब तक खाली होगी -
संप्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक खण्डहर न बनेंगी
तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा।[2]"

अपनी रचना धर्मिता इन प्रतिगामी शक्तियों के उन्मूलन के लिये वे निरन्तर उपयुक्त कराते रहे।

ड. परंपरा से शोषित नारी का जागरण

शोषण के विरुद्ध जन चेतना को जगानेवाले, शोषकों पर निरन्तर संघर्ष करनेवाले नागार्जुन ने परंपरा से प्रताडित नारी समुदाय की

---

1. खिचडी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ.112
2. युगधारा - नागार्जुन, पृ.50

विवशता पर भी ध्यान दिया । प्राचीन काल से समाज में नारी उपभोग वस्तु मात्र बनकर रही है । अभिशप्त नारी जीवन की पीडा को समझने के लिये नागार्जुन नारी जन्म स्वीकारने में भी तैयार रहते हैं । उन्होंने कहा "मैं चाहता हूं कि इस बार मुझे स्त्री का जन्म मिले । इसलिये कि मैं उसकी गुलामी और सामाजिक यातना का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकूं ।"[1] नागार्जुन की यह इच्छा असंभव ही दिखायी देती है । लेकिन "पाषाणी" कविता में अहल्या के माध्यम से पीड़ित शोषित नारी की निःसहाय स्थिति का वर्णन वास्तव में आंखों को गीला करनेवाला है । अपने पातिव्रत्य पर पति का संदेह पल पल उसके हृदय को जलाता रहता है । पाषाणी अहल्या को भगवान श्रीराम द्वारा मोक्ष मिलता है । असहाय नारी जीवन पर अपनी सहानुभूति कवि ने श्रीराम के द्वारा व्यक्त की है । श्रीराम की उक्तियों में नारी के प्रति समाज के परिवर्तित दृष्टिकोण का पुट है । कवि की इच्छा राम के मुंह से यों फूट निकलती है । अहल्या को सान्त्वना देकर राम कहते हैं-नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर

नहीं करेगा वह दूसरा विवाह
सदा रहेगा एक पत्निव्रतशील
नहीं करेगा सपने में भी अम्ब
क्रयक्रीत दासी का भी अपमान ।[2]

नागार्जुन हमेशा नारी की स्वतंत्रता के इच्छुक है । यह उनकी कविताओं में स्पष्ट देखने को मिलता है । विज्ञापन सुन्दरी में "रमा लो मांग में सिन्दूरी छलना फिर बेटी विज्ञापन लेने निकलना / तुम्हारी चाची को यह गुर कहां था मालूम" कहते वक्त आधुनिक नारी की स्वतंत्रता और स्वावलंबन पर कवि अभिमान का अनुभव करते हैं ।[3]"

---

1. - विजयबहादूर सिंह से बातचीत साक्षात्कार अंक-81-84
2. रत्नगर्भ, पृ.59
3. प्यासी पथराई आंखें - नागार्जुन, पृ.17

इस प्रकार शोषण के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करके अपनी जागृत चेतना से प्रवंचना के महल गिराकर नवरचना के लिये लालायित जनता को नागार्जुन क्रान्ति के पथ पर अग्रसर कराते हैं ।

5. संघर्ष का आह्वान

अपने अधिकारों से सचेत शोषित जनता हर जगह और हर समय शोषक मेधावी वर्ग से संघर्ष करती आ रही है । जागृत शोषित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जाता है और इन अधिकारों की प्राप्ति के लिये संगठित होता है । वर्ग बोध की जागृति से शोषित जनता संगठित होने की आवश्यकता अधिकाधिक महसूस करने लगी है । उच्चवर्ग के अत्याचारों का वह अकेले सामना नहीं कर सकती । इसके लिये संगठन की ज़रूरत है । ऐसे संगठित जनशक्ति ही दुःख दुरितों से उनको मुक्त करा सकती है । अतः श्रमिक संगठन के प्रभाव पर नागार्जुन ने कहा -

मैं न अकेला कोटि कोटि है मुझ जैसे तो
सबको ही अपना अपना दुख है वैसे तो
पर दुनिया को नरक नहीं रहने देंगे हम
कर परास्त छलियों को, अमृत छीनेंगे हम[1] ।

विश्व भर की संगठित जनशक्ति शोषक वर्ग से मुठभेड के लिये लालायित रहती है । दुनिया के कोने कोने के संघर्षरत श्रमिक शोषित वर्ग को नागार्जुन ने सराहा है । उनके लिये क्रान्ति कोई नूतन कार्य नहीं ।

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ. 16

उनकी मैथिल भूमि संघर्ष की भूमि है । कवि के अनुसार बीहार ससुराल नहीं मायका है संघर्ष का । अत: संग्राम से परिचित कवि ने विश्व भर के संघर्षरत जनता को अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया ।

नागार्जुन देश, काल, जाति की सीमायें लाघकर संघर्षशील मनुष्य की तरफदारी करते हैं । अमेरिकी साम्राज्यवाद से निर्भीक लडनेवाले वियतनाम के वीरों का स्तुति गान करनेवाले शिशुओं पर कवि मुग्ध हो जाते हैं । इन शिशुओं से भविष्य में विप्लव की आशा करते हुए कवि कहते हैं -

निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगी
बेबस विप्लवियों का कालिख यह धो देंगी
फिरकाबंदी - जातिवाद का झाडेंगी यह भूत
निबिड विषमता को मिटायेंगी नवयुग के शिशु दूत ।[1]"

जन संघर्ष की अभिव्यक्ति कवि अपना निजी दायित्व मानते हैं । वे जानते हैं कि करोडों मेहनतकशों के साथ आस्था बंधी हुई है । कोटि कोटि पददलित जनता नित्य संघर्ष के पथ पर आगे आती रहती है जो हार मानना नहीं जानती । इनके साथ होते हुए नागार्जुन कहते है -

नयी सृष्टि रचने में तत्पर
कोटि कोटि कर चरण
देते रहे अहरह स्निग्ध इंगित

---

1. युगधारा - नागार्जुन, पृ.40

और मैं अलसा अकर्म
पडा रहूँ चुपचाप ?[1]

अन्याय से विरोध का हर संघर्ष नागार्जुन के लिये बेहद प्यारा है । गोरे शोषकों के विरुद्ध आफ्रीका की काली जनता का नेतृत्व करनेवाले जोमो केन्याता नागार्जुन के लिये प्यारा है । नव आफ्रीका के इस नये नेता का जीवन ही वर्ण, वर्ग, के नाम पर मनुष्य मनुष्य के शोषण के विरुद्ध संघर्ष की गाथा है । स्वाधिकार के लिये उनका यह संघर्ष संपन्न और गरीब गोरे और काले की खाई मिटाने के लिये है । अतः इस योद्धा से कवि अनुरोध करते हैं -

छिन्न करो साम्राज्यवाद के नाग पाश को
ईसा के इन तथाकथित चेलों की पैशाचिक बर्बरता का
सम्मूल उच्छेद करो
ढाहो औपनिवेशिक कारा की दीवारों के घेरे को
श्वेत और अश्वेत को श्रमिक जन साधारण को एक करो[2] ।

समाजवादी विचारों का हामी नागार्जुन कृषक मज़दूर जैसे श्रमिकों को देश का सही मालिक मानते हैं । उनका दृढ विश्वास है कि इस श्रमिक वर्ग के द्वारा ही शोषकों की मुक्ति संभव होगी । इन्हें संघर्ष की प्रेरणा देकर कवि ने कहा -

---

1. सतरंगे पँखोंवाली - नागार्जुन - पृ. 15
2. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ. 52

आओ खेत मज़दूर और भूमिदास नौजवान
आओ खादान-श्रमिक फैक्ट्री वर्कर नौजवान
हाँ तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे आगामी युगों के
लिबर्टर

यूरोप, एशिया, अमेरिका, आफ्रीका के कोटि कोटि श्रमिकों को निर्मोही, महारुद्र की संज्ञा देकर उनसे शोषक वर्ग के उन्मूलन की आकांक्षा कवि प्रकट करते हैं -

हे महारुद्र, हे निर्मोही
हे शाश्वत मल के महाकाल
मानवता के दूषित, गलित अवयवों पर
प्रलयात वह्नि बन बरस रहे
हो रहा तुम्हारे लोहित नील स्फुलिंगों से
त्रिभुवन का तम तोम हरण।[1]

सामाजिक परिवर्तन के लिये चलनेवाले हर अभियान को नागार्जुन प्रोत्साहन देते हैं। संघर्ष के लिये वे युवकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। कवि ऐसे संघर्ष शील युवशक्ति की खोज में है। वे इनके लिये कुछ भी करने को तैयार हैं। इन युवकों पर बलिहारी होकर नागार्जुन कहते हैं -

---

1. युगधारा - जनवन्दना कविता - नागार्जुन

आगामी युगों के मुक्ति सैनिक कहाँ हो तुम
निपीड़ित शोषित मानवता के उद्धारक कहाँ हो तुम
आओ सामने आओ बेटे
मैं तुम्हारा लूँगा
मैं तुम्हें अपना चुंबन दूंगा[1] ।

नागार्जुन की संघर्ष चेतना इतना दृढ़तर है कि वे देश की तरुण शक्ति के द्वारा शोषक वर्ग की प्रवंचना, कुटिल नीति की समाप्ति की आकांक्षा करते हैं । उनका पूरा भरोसा है कि हत्यायें करने, करवाने की, ठंडी फाँसियाँ देने दिलवाने की चुपचाप जहर घोलने घुलवाने की कारागार की नारकीय कोठरियों में मानवता को गलाने गलवाने की एक एक साज़िश वे ही खत्म कर सकते हैं[2] ।

अन्याय के विरुद्ध संघर्षशील जनता को नागार्जुन हमेशा प्रश्रय और प्रोत्साहन देते हैं । तेलंगाना में जमीन्दारों के विरुद्ध किसानों को भड़काने के अभियोग में बारह क्रान्तिकारी युवक पकड़ी गयी और उन्हें फाँसी की सजा दी गयी । इन युवकों के धैर्य पर गर्व रखते हुए कवि कहते हैं कि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष चलाये इन वीरों की यदि फाँसी हुई तो संघर्ष ज़ोर पकड़ेगा और राज्य भर में अशान्ति व्याप्त होगी । अतः इनके बहुमूल्य जीवन पर आस्था रखते हुए कवि कहते हैं -

यदि तुम्हें फाँसी पड़ी तो क्या कहेंगे फिर
हमारे राष्ट्रपति या प्रमुख मंत्री
विश्व की श्रमशील जनता से ?
हे तिलंगी वीर बारह, तुम्हारे ये प्राण है अनमोल

---

1. तुमने कहा था - नागार्जुन - पृ. 93
2. वही - नागार्जुन, 94

इनका अन्त हम होने न देंगे
कोटि कोटि कण्ठों का निषेधी स्वर सुनायी दे रहे हैं
मुझे आशा ही नहीं विश्वास है दृढ
बारहों तुम फिर हमारे बीच जल्दी लौट आओगे[1]।

संघबद्ध जनता नागार्जुन में हमेशा आवेग भराती है। यह भीड थोडे लोगों की हो या लाखों की तादाद की, कवि में जोश भराती है। महतर यूनियन का, अधिकारी वर्ग से अपनी मांग मनवा लेने की खुशी में कवि भी शामिल होते हैं[2]।

संघबद्ध जनता क्रान्ति की सूचना देती है। "लो देखो अपना चमत्कार कविता में वर्ग संघर्ष केलिये जनता का बढता योगदान कवि यों अंकित करते हैं -

गोबर, महगू, बलचनमा और चतुरी चमार
सब छीन ले रहे स्वाधिकार
आगे बढकर सब जूझ रहे
रहनुमा बन गये लाखों के
त्रिशंकुपन छोड इन्हीं का साथ दे रहा मध्यवर्ग[3]।

संगठित जनशक्ति के सामने शोषक वर्ग अधिक समय तक नहीं टिक पाता। भूखे मनुष्य का विद्वेष अधिक समय तक दबाया नहीं जा सकता।

1· पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ·25
2· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·64
3· पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ·9-10

यह जनवादी क्रान्ति परम अकिंचन मेहनतकश जनता के द्वारा ही संपन्न होगी जिसे उसकी परम आवश्यकता है । देश भर की भूखी जनता अन्न की माँग कर रही है जो उसका अधिकार है । भूख और गरीबी अकिंचन जनता को संघर्ष के पथ पर पहुँचाता है -

जन जन में विद्रोह भरेगी अन्न ब्रह्म की माया
गुर्बत का मैदान चरेगी अन्न ब्रह्म की माया । [1]

नागार्जुन जनता की भलाई के लिये आयोजित हर संघर्ष का पूरे दिल से सहमति देते हैं । लेकिन राजनीतिक नेताओं का विद्रोह केवल कुरसी केलिये होनेवाले खेल मात्र है । इन्दिरा गांधी के शासन के विरुद्ध एकत्रित विरोधी शक्तियाँ जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सक्रिय आन्दोलन चलाया। इस विद्रोह का उद्देश्य इन्दिरा को कुरसी से निकालना मात्र था । जनता को धोखा देनेवाले ऐसे छद्म संघर्ष पर क्रुद्ध होकर नागार्जुन ने व्यंग्यात्मक तौर पर कहा -

मिला क्रान्ति में भ्रान्ति विलास
मिला भ्रान्ति में शान्ति विलास
मिला शान्ति में भ्रान्ति विलास । [2]

राजनीतिक नेताओं की अन्याय पूर्ण नीतियों पर नागार्जुन विद्रोह का बवंडर ही छोड देते हैं । सन् 1954 में नेहरू के शासन में पुलीस द्वारा छात्र संघर्ष का गोली से दमन वे सह नहीं पाये । प्रजातंत्र में इस

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.54
2. खिचडी विप्लव देखा हम ने - नागार्जुन, पृ-29

तानाशाही पर वे क्षुब्ध हुए । शोषक शासकों को चेतावनी देकर उन्होंने कहा कि नगरों तक सीमित नहीं रही बल्कि देहातों में फैल गयी है विप्लव की यह आग । दमन के प्रति जनता के इस प्रतिशोध में कवि भी भाग लेते हैं -

क्यों कर बुझने दूं मैं अपना वाजिब क्रोध ?
बच्चों के हत्यारों से पब्लिक लेगी प्रतिशोध
इस पवित्र प्रतिशोध यज्ञ में मैं हूं सबके साथ
क्यों गूंगा होऊं, बतलाओ झुकने दूं क्यों माथ ?[1]

इन्दिरा गांधी के भयानक शासन के विरुद्ध जनता का धैर्य भी कवि की प्रशंसा का पात्र बन गया । फौज की सहायता से बन्दूक की नोक में हुए इस शासन में क्रान्ति की कोकिला कूक उठी । लेकिन

बाल न बांका कर सका शासन की बन्दूक[2] ।

जनता की अदम्य संघर्ष चेतना सत्ताधारी वर्गों द्वारा दमित नहीं रखी जा सकती । सभी बन्धनों को तोडकर वह बाहर निकल आयेगी । प्रत्येक शासक के अत्याचारों पर जनता का प्रतिशोध उसी वक्त प्रकट होता है । अन्याय के खिलाफ आवाज उठानेवाली जनता खेतों में, कारखानों में पुतली घरों में, चाबागानों में, वर्कशाप में, स्कूल, कालेज, गांव, शहर, गली, मोड में संगठित हो रही है । उनकी क्रान्तिकारी भावना दबाना आसान नहीं है । जनता चाहे निहत्थी ही क्यों न हो, शासक वर्ग को पराजित कर

---

1. हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ 85
2. तुमने कहा था - नागार्जुन 46

सकती है । इन्दिरा गांधी के आतंक राज के बाद हुए चुनाव में जनता की प्रतिक्रिया इस बात पर ज़ोर देती है । इस चुनाव में भारतीय जनता ने गोली बन्दूक की हुकूमत को ठुकरा दिया । नागार्जुन ने इसे आनेवाले महान संघर्ष की शुरूआत मानकर कहा -

इस चुनाव के हवन कुंड में
जन मन की ज्वाला लपकी है
आनेवाला है जो आगे
यह उस विप्लव की धमकी है[1] ।

इन्दिरा की यह पराजय शोषण, दमन और विकराल दण्ड नीति की पराजय है । अत: आगे भी अगर तबाही, लूट और दमन होंगे तो जनता बर्दाश्त नहीं करेगी, वह हथियार उठायेगी । जुल्म और पशुता पर उनका प्रतिशोध भयानक होगा । शोषकों को कवि चेतावनी देते हैं -

तुम्हारा यह मारक खेल
अभी कुछ समय और चलेगा
लेकिन याद रखो
हम तुम्हारी बिरादरी के
एक एक सदस्य का वध करेंगे
तुम मुनाफालोभी
तुम स्वार्थ के नारकीय कीडे
इस जंगल का एक एक बिरवा तुम्हारे समूचे वर्ग के लिये
प्रतिहिंसा का महारुद्र प्रमाणित होगा[2] ।

---

1. खिचडी विप्लव देखा हमने - नागार्जुन, पृ.88
2. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ.22

मार्क्स के समाजवादी आदर्शों का समर्थक नागार्जुन शोषण का अन्त अहिंसात्मक उपायों से संभव नहीं मानते । इसलिये जनता पर होनेवाले हर जुल्म का वे हिंसा से उत्तर देना चाहते थे । संघर्ष की भूमि कवि के लिये बेहद प्यारी है । सशस्त्र क्रान्ति की भूमि में वे विनाश का स्वर, हिंसा का गंध ढूंढते हैं -

यही धुआं में ढूंढ रहा था
यही आग में खोज रहा था
यही गंध मुझे चाहिये
बारूदी छर्रे की खुशबू
ठहरो ठहरो इन नयनों में इसको भर लूं[1] ।

शोषित वर्ग के उद्धार के लिये होनेवाली हिंसा की हर घटना नागार्जुन तत्परता से देखते हैं । अपनी कला को वे विद्रोह का सबसे सबल हथियार मानते हैं । इस शास्त्र के सहारे वे वर्ग शत्रु पर फूट पड़ते हैं । अत: नफरत की भट्टी में शोषकों को जलानेवाला कवि विश्व भर की शोषित जनता की खातिर क्रान्ति का सूर्य जगाना चाहते है -

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का
जन-मन में ऊर्जा भर दे मैं उद्गाता हूं उस रवि का[2] ।

अपनी रचनाकारिता का परम लक्ष्य कवि जनता में क्रान्ति भावना जगाना मानते हैं और साहित्य में इस प्रवृत्ति को प्रश्रय देते हैं ।

1· ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ·20
2· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन, पृ·11

दुर्दम, अनमनीय, क्रान्तिदर्शी, विश्व सर्वहारा के अ - कपट बंधु, जनचेतना का अक्षय धारा लू - शेन से कवि विनती करते हैं -

कलम से काम लो गदा का, तमंचा का
ढीली न पडे डोर प्रत्यंचा का
जहरीले सांपों पर दया नहीं करना
दुष्टों पर हमदर्दी उसांस नहीं भरना।[1]

जनता के भरोसेमन्द दोस्त की भूमिका अदा करनेवाला नागार्जुन अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये शासकों के साथ खडे होनेवाले तथाकथित बुद्धि-जीवियों को जनसंघर्ष के महाशत्रु मानते हैं। ऐसे मौकापरस्त, स्वार्थी साहित्य जीवियों तथा बुद्धिजीवियों को आग लगाने का आह्वान कवि देते हैं -

पतित बुद्धिजीवी जमात को आग लगा दो
वर्ग शत्रु तो ढेर पडे है
उनकी ही लाशों से अब तुम
भूमि पाटते चलना।

उनका दृढ विश्वास है कि जनवादी कवि की मृत्यु कभी नहीं होगी। जब तक दुनिया में संघर्षशील जनता होगी तब तक उसकी भूमिका ताज़ी ही रहेगी। अत: अपनी यह जनवादिता पर कवि कहते हैं -

---

1. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या - नागार्जुन, पृ.24

मैं न अभी मरनेवाला हूं
मर - मर कर जीनेवाला हूं[1] ।

शोषण के विरुद्ध शोषित वर्ग का संघर्ष, जाति, वर्ण, वर्गहीन तथा शोषणमुक्त समाज की संरचना की ओर उन्मुख कराता है । स्वातंत्र्य, शान्ति और प्रगति के लिये विद्रोह करनेवाली जनता को उसके मार्ग से हटा नहीं सकता । संघर्षशील जनता की संख्या बढती ही रहती है । यह विश्वमानवता की प्रगति के लिये शुभ समाचार है । प्रगतिपथ पर आगे बढती जनता को अंकित करके कवि कहते हैं -

शान्तिपूर्ण सुखमय जीवन की खातिर यह संघर्ष हमारा
कैसे भला रुकेगी युग गंगा की धारा
यह सचेत तरुणों की टोली बढी आ रही
शुभ स्वतंत्रता शान्ति प्रगति के गीत गा रही[2] ।

व्यक्ति के स्वातंत्र्य और उसके सर्वांगीण विकास की कल्पना साम्यवादी व्यवस्था में ही पूर्ण होगी । अत: नागार्जुन वर्ग संघर्ष के बाद के साम्यवादी समाज की आकांक्षा करते हैं ।

6• साम्यवादी समाज की आकांक्षा

साम्यवादी समाज की परिकल्पना मार्क्सवादी सिद्धान्तों की अन्तिम कडी है । वर्ग संघर्ष का चरम लक्ष्य भी ऐसी व्यवस्था की स्थापना है जिसमें सर्वहारा का अधिनायकत्व होगा और वर्ग वर्ग और अर्थ की

1• आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने - नागार्जुन, पृ•13
2• प्रतिध्वनि - नागार्जुन, पृ 102

दृष्टि से मानव-मानव का शोषण नहीं होगा । दबी कुचली जनता का जिगरी दोस्त नागार्जुन ने साम्यवादी समाज पर अपनी आकांक्षा व्यक्त की है । वे इस समाज की परिकल्पना यों करते हैं -

व्यक्ति व्यक्ति के हेतु सुलभ होंगे
अवश्य मौक्तिकाभरण
सुख सुविधा सबके हेतु सहज
सब सक्षम होंगे प्रबुद्ध
आबालवृद्ध वनिता - सारे कर्तव्यनिरत निर्माणशील ।

साम्यवादी सिद्धान्तों का व्यावहारिक पक्ष पहले पहल रूस में दिखायी दिया । रूसी जनता ने शोषक तानाशाहियों के विरुद्ध लड़कर यह जीत अपनायी थी । लेनिन के नेतृत्व की सोवियतभूमि में सर्वहारा वर्ग की इच्छा पूर्ण हुई । खेत, कल-कारखानों का अधिकार उनपर काम करनेवालों को मिला । नागार्जुन, लेनिन को विश्वभर की शोषित जनता के त्राता के रूप में देखते हुए उनके नेतृत्व की सोवियत भूमि पर विचार करते हैं -

तुम्हीं ने यह दिन
हमें दिखलाया
वह मंत्र सिखलाया
कि हम छाती ताने
कल कारखाने
आप ही बनाते
आप ही चलाते

---

1. -- युगधारा - नागार्जुन, 'जनवज्रांगना' कविता

लाल झण्डा फहराते
करते है काम
लेते है विश्राम
स्वयं उत्पादक, स्वयं विभाजक[1] ।

वर्गहीन समाज की सबसे बडी शर्त है श्रम के आधार पर अर्थ विभाजन । इसमें सब समान रूप से काम करेंगे, उत्पादन का समान वितरण होगा । सभी व्यक्ति काम के समान अधिकारी होंगे और दाम के भी । ऐसी व्यवस्था कवि का सपना है जिसमें -

मग्न रहे सभी निज काम में
सुलभ रहे सबको स्वगत श्रम फल
रह जाये कोई नहीं व्याकुल विकल
परस्पर सभी हो निश्छल
पैशाचिक प्रतिस्पर्धा से[2] ।

अर्थ विभाजन की विषमता को मिटाकर संपत्ति के सही और समान विभाजन से ही सामाजिक समत्व स्थापित कर सकता है । अपने देश में यह सामाजिक व्यवस्था कायम करने का इच्छुक नागार्जुन के मत में रूस के समान इस देश में भी -

सब स्वतंत्र हो, सभी सुखी हो, सबका हो कल्याण
व्यक्ति व्यक्ति विकसे, समाज का होवे नवनिर्माण
नहीं खडी हो नगर नगर में बेकारों की फौज

---

1. पुरानी जूतियों का कोरस - नागार्जुन, पृ.27
2. ι. वही - नागार्जुन, पृ. 20

बहुतों की छाती पर बैठे चन्द न मारे मौज
पंगु नहीं रह जाये कहीं रत्ती भर भी श्रमशक्ति ।[1]

जनता का अपना कवि नागार्जुन उसकी सर्वांगीण प्रगति का सदा इच्छुक रहे हैं । अतः वर्गसंघर्ष के द्वारा साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना अपनी जनता के प्रति कवि की सबसे बडी आकांक्षा है । नागार्जुन सिद्धान्तः मार्क्सवादी है । लेकिन उनकी मार्क्सवादिता कोरे सैद्धान्तिक तौर पर न होकर व्यावहारिक है । मार्क्सवादी सिद्धान्तों का सबसे सक्रिय पक्ष उनकी कविताओं में उभरकर आया है । वर्गबद्ध समाज से वर्गहीन समाज की ओर उनकी काव्य यात्रा इसका सबल सबूत है ।

ééééééééééé

1· हज़ार हज़ार बाहोंवाली - नागार्जुन,

उपसंहार

उपसंहार

गत पचास वर्षों से नागार्जुन साहित्य सेवा में निरत है। अपनी इस लंबी साहित्य साधना के अन्तर्गत उन्होंने कवितायें लिखी, उपन्यास, निबंध लिखे और अनुवाद किये। इस अविराम यात्रा के बीच जीवन के विभिन्न स्तरों के लोगों को उन्होंने देखा, उनसे संबंध स्थापित किया और प्रेरणा ग्रहण की। नागार्जुन की रचना प्रक्रिया उनकी व्यापक अनुभूतियों की सच्ची अभिव्यक्ति है।

साहित्यकार नागार्जुन अपने परिवेश की उपज है। उन्होंने जो कुछ देखा, समझा सब अपने घर में ही था। परिवार की परिस्थितियों ने उनके रचनात्मक व्यक्तित्व को उत्तरोत्तर विकसित किया। जीवन की विसंगतियों से स्वयं जूझकर उन्होंने विषमतापूर्ण समाज मे संवेदना स्थापित की। निम्न स्तर में जीवन बिताकर, काशी के विद्वन्मण्डली के पाण्डे पुरोहितों के साथ रहकर, सिंहल में जैन बौद्ध धर्मो से प्रभावित होकर निम्न से निम्नतर जनता से आत्मीयता स्थापित करके नागार्जुन राजनीति तक आये। तत्कालीन सामाजिक और

राजनीतिक क्षेत्र में होनेवाले भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग के प्रति वे सजग रहे । उन्होंने देखा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी परिस्थिति पूर्ववत रही । यदि पहले शोषण का हिस्सा विदेशी शासकों का था तो अब देशी शासक और अधिकारी वर्ग शोषण के हकदार बन गये । जनसाधारण का जीवन निरर्थक सा है । मनुष्य की तरह जीने का अवसर ही उन्हें नहीं मिलता । व्यवस्था मनुष्य का सारा अधिकार हड़प लेती है । इसका विरोध करनेवाला कोई नहीं । इस प्रकार समाज की असंगतियों को आत्मसात करके नागार्जुन प्रारंभ में ही विद्रोही बन गये । युगीन परिस्थितियों ने उनकी विद्रोही चेतना को अधिकाधिक प्रज्वलित किया ।

भारत में स्वतंत्रता संग्राम का समय प्रगतिवादी विचारों के विपुल प्रचार का भी समय था । मार्क्सवादी चिन्तन के प्रसार से उस समय जनवादी विचारधारा विशेष रूप में उभरकर आयी । इस विचार-धारा को लेकर प्रगतिवादी साहित्य का विकास भी राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हुआ । मार्क्सवाद समाज में केवल दो वर्गों को मानता है, शोषित और शोषक । उत्पादन की प्रक्रिया में परस्पर संबद्ध रहनेवाले इन दो वर्गों की रुचि परस्पर विरुद्ध है । इसलिये इनमें अन्तर्विरोध भी है । वर्गों के बीच का विरोध द्वन्द्व का कारण बन जाता है । जब तक यह वर्ग वैषम्य रहेगा तब तक सामाजिक प्रगति भी संभव नहीं होगी ।

मार्क्सवाद का साहित्यिक आयाम-प्रगतिवाद-यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति है । इसका यथार्थ मानव का यथार्थ है । समाज और मानवता के कल्याण के लिये शोषणमुक्त वर्गहीन समाज की स्थापना इसका चरम लक्ष्य है ।

अतः जीर्ण एवं पुरातन वर्तमान को नष्ट भ्रष्ट करके नूतनता लाने की प्रवृत्ति इसमें प्रमुख है । इसके लिये प्रगतिवाद में क्रान्ति की अपेक्षा है ।

नागार्जुन प्रगतिवादी साहित्यकार है । प्रगतिवाद ने उनमें सुप्त विद्रोही चेतना को जागृत किया । उनकी सभी रचनाओं में प्रगतिवादी मान्यतायें मार्मिक रूप में अभिव्यक्त है । साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और पूंजीवाद का उन्होंने विरोध किया, निर्भय होकर अवहेलना की । युग वैषम्य, मानव प्रेम, राष्ट्रीयता, व्यक्तिगत संपत्ति का ध्वंस, विद्रोह और क्रान्ति के जीवन्त स्वर उनकी रचनाओं में मुखरित है । उनकी सभी रचनाओं में यथार्थनिष्ठ निजी दृष्टि परिलक्षित होती है ।

प्रगतिवादी साहित्यकार नागार्जुन धरती और श्रम के गायक हैं । मिथिलांचल उनकी प्रेरणा भूमि है, जिसकी पृष्ठभूमि में उन्होंने ग्रामीण जीवन में व्याप्त सभी ज्वलन्त समस्याओं की अभिव्यक्ति की । गाँव की वास्तविकता को उजागर करने के लिये शिक्षा व्यवस्था, भाषा, सडे गये आचार विचार और रूढि रीतियों से लेकर तरह तरह के पर्व त्योहार तक का विस्तृत वर्णन उन्होंने किया । उन्होंने श्रमिक वर्ग को अपने संपूर्ण साहित्य का विषय बनाया । उनके उपन्यास और कविता उपेक्षित वर्ग के प्रति संवेदना और सद्भाव से प्रेरित है ।

मार्क्सवाद से प्रभावित नागार्जुन क्रान्ति के सशक्त वक्ता है । उनकी कृतियों में क्रान्ति की सही और सफल अभिव्यक्ति हुई है । वे पीडितों के विद्रोह को हमेशा वाणी देते रहे । स्वत्वहीन, दलितों के सच्चा सलाहकार नागार्जुन अपराजित कृषक वर्ग का लेखक है । उनके उपन्यासों में उठते हुए कृषक आन्दोलनों का सफल अंकन हुआ है । अपने समशीर्ष उपन्यासकारों में नागार्जुन ने ही प्रेमचन्द के समाजवादी यथार्थवाद की परंपरा को विकसित किया । प्रेमचन्द ने कृषक-जमीन्दार संघर्ष की शुरुआत अपने

उपन्यासों में की तो नागार्जुन ने इस आयाम को प्रौढ और परिमार्जित रूप दिया । यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, भगवतीचरण वर्मा जैसे अन्य प्रगतिवादी उपन्यासकारों ने संघर्ष को बराबर प्रमुखता देते रहे । "रतिनाथ की चाची", "बलचनमा", "वरूण के बेटे" आदि उपन्यास जमीन्दार के विरुद्ध कृषक तथा गरीब मछुओं का संघर्ष प्रस्तुत करते है तो "बाबा बटेसरनाथ में साम्राज्यवाद के विरुद्ध आम जनता के संघर्ष का सर्वांगीण चित्रण है । "इमरतिया", "दु:खमोचन" जैसे उपन्यासों में नागार्जुन पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध मजदूरों के विद्रोह पर ज़िक्र करते हैं । यही नहीं उनके उपन्यासों में समकालीन राजनीतिक भ्रष्टाचारों, धार्मिक रूढि रीतियों और नारी शोषण के प्रति भी जागृत जनता का विरोध अभिव्यक्त हुआ है । लेकिन नागार्जुन के उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता यह है कि उनमें शोषकों के विरुद्ध शोषित वर्ग के संघर्ष का क्रियात्मक पक्ष प्राप्त होता है । "रतिनाथ की चाची" तथा "बाबा बटेसरनाथ" का कृषक वर्ग शोषक ज़मीन्दारों के विरुद्ध हथियार उठाते है । इन उपन्यासों में बिहार नहीं, संपूर्ण देश बोल रहा है । अपने स्वत्व के प्रति सचेत तारावरण, बलचनमा जैसे किसानों के द्वारा नागार्जुन ने खुले आम घोषित किया कि भूमिहीन किसान जाग रहे हैं, और उनमें राजनीतिक बोध उत्पन्न हो गया है । अत: वह अपना शासन कायम कर सकता है । यह श्रमिक शासन ही सही शासन है जिसमें संपूर्ण मानवता की प्रगति संभव है । नि:संदेह कहा जा सकता है कि कृषक ज़मीन्दार संघर्ष की जितनी क्रियात्मक अभिव्यक्ति नागार्जुन के उपन्यासों में हुई उतनी समकालीन किसी भी उपन्यासकार की कृतियों में नहीं पायी जाती ।

नागार्जुन रूढियों और परंपरा पर विश्वास नहीं रखते । वे ईश्वरीय सत्ता का भी विरोध करते हैं । ह्रासशील तत्वों का विरोध करके उन्हें मिटाने का स्वर वे बुलन्द करते है । नवीनता और आधुनिकता की

स्वीकृति तथा सामाजिक विकास का प्रबल आग्रह उनमें है । इसलिये शोषित प्रपीड़ित जनता को रूढ़ी, अंधविश्वास, धर्म भीरूता, कायरता और शोषण की परिस्थितियों से उबारने की भरसक कोशिश वे करते हैं । रूढ़िग्रस्त समाज में शोषित नारी की मुक्ति का आह्वान उनकी रचनाओं में है जो उनकी प्रगतिशीलता का प्रमाण है । उनके उपन्यासों की नारी रूढ़िग्रस्त सामाजिक व्यवस्था में अपने शोषण करनेवालों के विरुद्ध विद्रोह करती है । और स्वतंत्र तथा स्वावलंब जीवन बिताती है । नारी विषयक दृष्टिकोण में भी अपने समय के अन्य प्रगतिवादी उपन्यासकारों में नागार्जुन भिन्न रहते हैं । यशपाल के समान उनकी नारी उच्छृंखल या आधुनिक नहीं बल्कि वह श्रमशील है, अपने श्रम के द्वारा समाज में स्थान प्राप्त करती हुई सभी शोषक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करती है ।

नागार्जुन जनवादी कवि है । उनकी प्रमुख विशेषता यह जनवादिता है जो उन्हें औरों से अलग रखती है । कविता में उनका जनवादी स्वर स्पष्ट मुखरित है । जनता के सुख दुःख, आशा, आकांक्षा, आस्था, भ्रान्ति, जय पराजय, आक्रमण पलायन निष्कपट रूप में उन्होंने अंकित किया । अन्याय और अत्याचार पीड़ित जनता उनके लिये हमेशा प्रिय रही । जनवादिता के पीछे जनहित की उनकी प्रबल कामना काम कर रही है । उनकी कवितायें स्वतंत्रतापूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत के जन-संघर्षों का सही दस्तावेज़ है । आज़ादी के बाद अब तक की कोई भी घटना इनसे छूट नहीं हो पायी है । विषय की दृष्टि से उनकी कवितायें दो तरह की हैं - राजनीतिक तथा प्रकृतिपरक । कविता के धरातल पर वे जिस मात्रा में जनवादी है, उसी मात्रा में प्रकृति प्रेमी भी है । प्रकृति को उन्होंने आलंबन, उद्दीपन के रूप में ही नहीं, वर्ग चेतना के वाहक के रूप में भी उपस्थित किया । "खिला है यह अनोखा फूल", "मुर्गे ने दी बांग" जैसी कवितायें इसका प्रमाण है ।

नागार्जुन की राजनीतिक कवितायें आर्थिक विषमता, अन्याय, शोषण का कालुष्य, अत्याचार का विरोध, संघर्ष और वर्गहीन समाज की स्थापना तक की सभी समस्याओं पर विचार करती है । समसामयिक राजनीति का नग्न चित्र इनमें अंकित है । उनके राजनीतिक कविताओं के दो आयाम है - एक तमाम शोषक वर्ग के विरोध का और दूसरी शोषित जनता के संघर्षों में पक्षधर की भूमिका का । शोषक वर्ग पर निर्दय आक्रमण करनेवाला कवि मेहनतकश जनता की तबाह ज़िन्दगी और उनके राजनीतिक संघर्षों पर कवितायें लिखते हैं । ये शोषकों पर सीधा प्रहार करते है । सुविधाभोगी मौकापरस्त राजनीतिज्ञों की कटु आलोचना करनेवाली कवितायें नेहरू से लेकर राजीव गांधी तक के कांग्रेज़ियों की रीतियों पर व्यंग्य करती है । प्रत्येक शासक के अन्याय और अत्याचारों से समय समय पर वे जनता को सूचना देते रहते हैं ।

शोषितों के पक्ष में लिखनेवाले अन्य अनेक कवि हुए हैं । लेकिन जनता को उसके जीवन और संघर्ष को आत्मसात करके उनसे इतनी निकटता स्थापित करते हुए केवल उनके लिये लिखनेवाले अकेले कवि नागार्जुन ही है । जनजीवन का हर दिन, हर क्षण, घट घटना उनकी कविता का यथार्थ है । उनका समूचा कृतित्व जनता के स्वप्नों और संघर्षों की महागाथा है ।

समकालीन सारे कवियों में से नागार्जुन की विशेषता उनका चुभनेवाला व्यंग्य है । व्यंग्य उनकी कविता की आत्मा है, जो उन्हें जनप्रिय बनाता है । वे अपने तीखे व्यंग्य के लिये विख्यात है । उनका व्यंग्यबाण जिस पर पड़ता है, वह तिलमिला उठता है । आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उन्होंने व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से देखा, राजनीति के हर उतार चढाव को व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने प्रस्तुत किया ।

नागार्जुन की व्यंग्यपरक कवितायें उनकी प्रखर राजनीतिक चेतना का प्रमाण है। समकालीन राजनीति उनके इस हथियार का निरन्तर लक्ष्य रही। ये, सत्तारूढ शासकों के भ्रष्टाचारों से ऊबकर दलित गरीब जनता के प्रति करुणा से उपजी है। उनकी कविता वर्तमान विडंबना और राजनीतिक पतन का उल्लेख करती है, साथ ही साथ सत्तंध राजनीतिक नेताओं और चुनावोन्मुख जनतंत्र पर क्रोध की आग बरसाती है।

अपने समकक्ष प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन की विशेषता अनुभूति की प्रखरता है। उनकी कविता अपनी निजी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। निराला के बाद अनेक प्रगतिवादी कवियों ने शोषित किसान मज़दूर और अन्य उपेक्षित वर्ग की पीडा का चित्रण करके उनमें वर्गबोध पैदा करने का प्रयास किया। ऐसे कवियों में नागार्जुन रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल की कोटि में आते हैं। इनके समान नागार्जुन ने भी किसान-मज़दूर जीवन समस्याओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया। लेकिन इन कवियों की अपेक्षा नागार्जुन में संवेदना का स्तर अधिक ऊंचा दिखायी पडता है। जहाँ केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं की वर्ग चेतना उनकी सहज सहृदयता का परिणाम है वहाँ नागार्जुन की संवेदना उस वर्ग में रहकर प्राप्त हुई। अपने गाँव के कृषकों को जमीन्दार के विरुद्ध हुए संघर्ष में नेतृत्व करके नागार्जुन ने इस शोषित वर्ग से पहले ही आत्मीयता स्थापित की। अतः दलित वर्ग के प्रति उनकी संवेदना आरोपित या कृत्रिम नहीं, वरन् यथार्थ और स्वाभाविक है जिसका अन्य कवियों में अभाव है। प्रत्यक्ष राजनीति में वामपंथी विचारवाले नागार्जुन राजनीतिक शोषण के प्रति भी जनता को जागरूक रखने में समर्थ है। अनुभूति की तीव्रता और प्रखर संवेदना नागार्जुन को अपने समकालीन कवियों में समुन्नत बनाती है।

नागार्जुन की हर रचना के पीछे एक देशभक्त है जो किसी भी हालत में अपने देश को, अपनी जनता को शोषक वर्ग के हाथ गिरवी नहीं रखने देता । वे मात्र अपनी जनता के लिये लिखते है । चाटुकारी जनसेवियों के समान नागार्जुन धन, सम्मान या पद प्राप्त करना नहीं चाहते । जनता के इस कवि ने अभी तक अपने को खरीदने बेचने नहीं दिया है ।

उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रभावित नागार्जुन की कृतियों में वर्ग संघर्ष उसके विभिन्न आयामों में, सबसे सक्रिय रूप में अभिव्यक्त हुआ है । उन्होंने भारतीय परिवेश में मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष के पहलू को उभारने का सफल प्रयास किया है ।

ªªªªªªªªªªªªªª

पुस्तक - सूची

पुस्तक-सूची

नागार्जुन की रचनायें

उपन्यास

1. इमरतिया — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1987
2. उग्रतारा — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1987
3. कुम्भीपाक — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1987
4. दुःखमोचन — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1966
5. नयी पौध — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1984
6. बलचनमा — किताब महल, इलाहाबाद, 1987
7. बाबा बटेसरनाथ — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1985
8. रतिनाथ की चाची — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985
9. वरुण के बेटे — राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1987
10. हीरक जयन्ती — आत्माराम एण्ड संस, नयी दिल्ली

कविता

11. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1986
12. ऐसे भी हम क्या ! ऐसे भी तुम क्या ! — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985
13. खिचड़ी विप्लव देखा हम ने
14. तुम ने कहा था — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1980

15· पत्रहीन नग्न गाछ — संभावना प्रकाशन, हापुड़, 1981

16· पुरानी जूतियों का कोरस — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1983

17· प्यासी पथरायी आँखें — अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982

18· युगधारा — यात्री प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1982

19· रत्नगर्भ — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984

20· सतरंगे पंखोंवाली — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984

21· हज़ार हज़ार बाहोंवाली — राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981

निबन्ध

22· अन्नहीनम क्रियाहीनम — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1983

23· बम भोलेनाथ — वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1987

अन्य रचनाएं

उपन्यास

24· कर्मभूमि — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1975

25· गोदान — प्रेमचन्द
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1932

26· गंगा मैया — भैरवप्रसाद गुप्त
राजकमल, दिल्ली ।

27· जय यौधेय — राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद, 1956

28· झूठा सच - खंड 2 — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1963

29· दादा कामरेड — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ

30· देश द्रोही — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1961

31· पार्टी कामरेड — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1963

32· प्रेमाश्रम — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1962

33· बीज — अमृतराय
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद

34· मनुष्य के रूप — यशपाल
विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1961

35· मशाल — भैरव प्रसाद गुप्त
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

36· रंगभूमि — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1962

37· विषाद मठ — रांगेय राघव
किताब महल, इलाहाबाद, 1962

38· विस्मृत यात्रि — राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद

39. सत्ती मैया का चौरा — भैरव प्रसाद गुप्त
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

40. सिंह सेनापति — राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद

41. हुजूर — रांगेय राघव
किताब महल, इलाहाबाद

कविता
-----

42. अपरा — निराला
साहित्यकार - संसद, प्रयाग, 1963

43. कहे केदार खरी खरी — केदारनाथ अग्रवाल
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1983

44. गुलमेंहदी — केदारनाथ अग्रवाल
हिन्दी ज्ञान मंदिर, बंबई ।

45. गुलाब और बुलबुल — त्रिलोचन
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1985

46. ग्राम्या — सुमित्रानन्दन पन्त
भारती भण्डार, प्रयाग, पांचवां संस्करण

47. जिजीविषा — महेन्द्र भटनागर
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

48. चान्द का मुंह टेढा है — मुक्तिबोध
भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी

49. तार सप्तक (सं) — अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

50. तीसरा सप्तक — (सं) अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी

51. दूसरा सप्तक — (सं) अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

52. धरती — त्रिलोचन
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977

53. धूप के धान — गिरिजा कुमार माथुर
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1958

54. निराला रचनावली (खंड - 1) — राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

55. निराला रचनावली (खंड - 2) — राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

56. परिमल — निराला
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ ।

57. पिघलते पत्थर — रांगेय राघव
भारतीय भवन, आगरा

58. प्रतिनिधि कवितायें — (सं) नामवर
राजकमल पेपर बैक्स, नयी दिल्ली, 1986

59. प्रलय सृजन — शिवमंगल सिंह सुमन
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ।

60. फूल नहीं रंग बोलते हैं — केदारनाथ अग्रवाल
हिन्दी ज्ञान मन्दिर, बंबई ।

61.	बेला	निराला निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग
62.	भैरवी	सोहनलाल द्विवेदी इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1951
63.	मिट्टी और फूल	नरेन्द्र शर्मा भारती भण्डार, प्रयाग ।
64.	मेरी कवितायें	भगवतीचरण वर्मा राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1974
65.	मैला आँचल	फणीश्वर नाथ रेणु राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1963
66.	युग की गंगा	केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी ज्ञान मंदिर, बंबई, 1947
67.	युगवाणी	सुमित्रानन्दन पन्त भारती भण्डार, प्रयाग
68.	युगान्त	सुमित्रानन्दन पन्त भारती भण्डार, प्रयाग, द्वितीय संस्करण
69.	विश्वास बढ़ता ही गया	शिवमंगल सिंह सुमन आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1967
70.	हम विषपायी जनम के	बालकृष्ण शर्मा नवीन भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1964
71.	हुँकार	रामधारी सिंह दिनकर उदयाचल, पटना

समीक्षात्मक ग्रन्थ

72· आईने के सामने — [सं] मोहन राकेश
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1965

73· उपन्यासकार नागार्जुन — बाबू रामगुप्त
श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1985

74· एक साहित्यिक की डयरी — मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी ।

75· कुछ विचार — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1965

76· नया हिन्दी काव्य — डा॰ शिवकुमार मिश्र
अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, 1962

77· नागार्जुन — [सं॰] सुरेशचन्द्र त्यागी
आशिर प्रकाशन, सहारनपूर, 1984

78· नागार्जुन का रचना संसार — विजयबहादुर सिंह
[illegible], 19[illegible]

79· नागार्जुन की कविता — [सं] अजय तिवारी
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1990

80· नागार्जुन जीवन और साहित्य — प्रकाशचन्द्र भट्ट
सेवासदन प्रकाशन, रामपुरा, मध्यप्रदेश, 1974

81· नागार्जुन:मेरे बाबूजी — शोभाकान्त
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ।

[illegible] कानपुर

82. प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास - प्रकाश चन्द्र शर्मा मेहता
साहित्य सदन, देहरादून ।

83. प्रगतिवादी काव्य साहित्य - कृष्णलाल हंस
हिन्दी अकादमी, भोपाल, 1971

84. प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल - डॉ. रामविलास शर्मा
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986

85. प्रेमचन्द एक मार्क्सवादी मूल्यांकन - ज्ञानेश्वर वर्मा
ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, 1986

86. प्रेमचन्द विरासत का सवाल - शिवकुमार मिश्र
पीपल्स लिटरेरी, दिल्ली, 1981

87. बाबा नागार्जुन नरेन्द्र कोहली
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1987

87. अ. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास - एन. रवीन्द्रनाथ
वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1979

87. आ. साहित्य साक्षात्कार - रणवीर रांग्रा पूर्वोदय प्रकाशन
दिल्ली

88. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

89. हिन्दी साहित्य की जनवादी परंपरा - प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त
किताब महल, इलाहाबाद ।

90. हिन्दी की प्रगतिशील कवितायें - (सं) राजीव सक्सेना
राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1986

91 ·Anti-Duhring - Engels
Progress Publishers, Moscow-1977.

92 ·Art and Social life - G.V. Plekhnov
People's Publishing House, Bombay-1953.

93 ·Capital(Vol I) - Karl Marx
Foreign language Publishing House, Moscow-1954.

94 ·Dialectical and Historical Materialism - J. Stalin
Mass Publications, Calcutta-1974.

95 ·Dialectical Materialism Vol. III - Maurice Cornforth
National Book Agency, Calcutta.

96 ·Fundamental of Marxism-Leninism - Clemens Dutt (Ed.)
Foreign Language Publishing House, New Delhi-1956.

97 ·Illusion and reality - Christopher Caudwell
People's Publishing House, New Delhi-1956.

98 ·Literature and Art - Marx Engels
Current Book House, Bombay-1956.

99 ·Manifesto of the Communist party - Marx-Engels
Progress Publishers, Moscow-1977.

100· On Art and Literature - Mao-Tse-Tung
Foreign Language Press, Peking-1959.

101· On dialectical materialism - Marx, Engels, Lenin
Progress Publishers, Moscow-1977.

102· On Historical materialism - Marx, Engels, Lenin
Progress Publishers, Moscow-1972.

103· On Literature - Maxim Gorky
Foreign Language Publishing House, Moscow.